देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
December 2025
Vol.-22, Issue-6

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

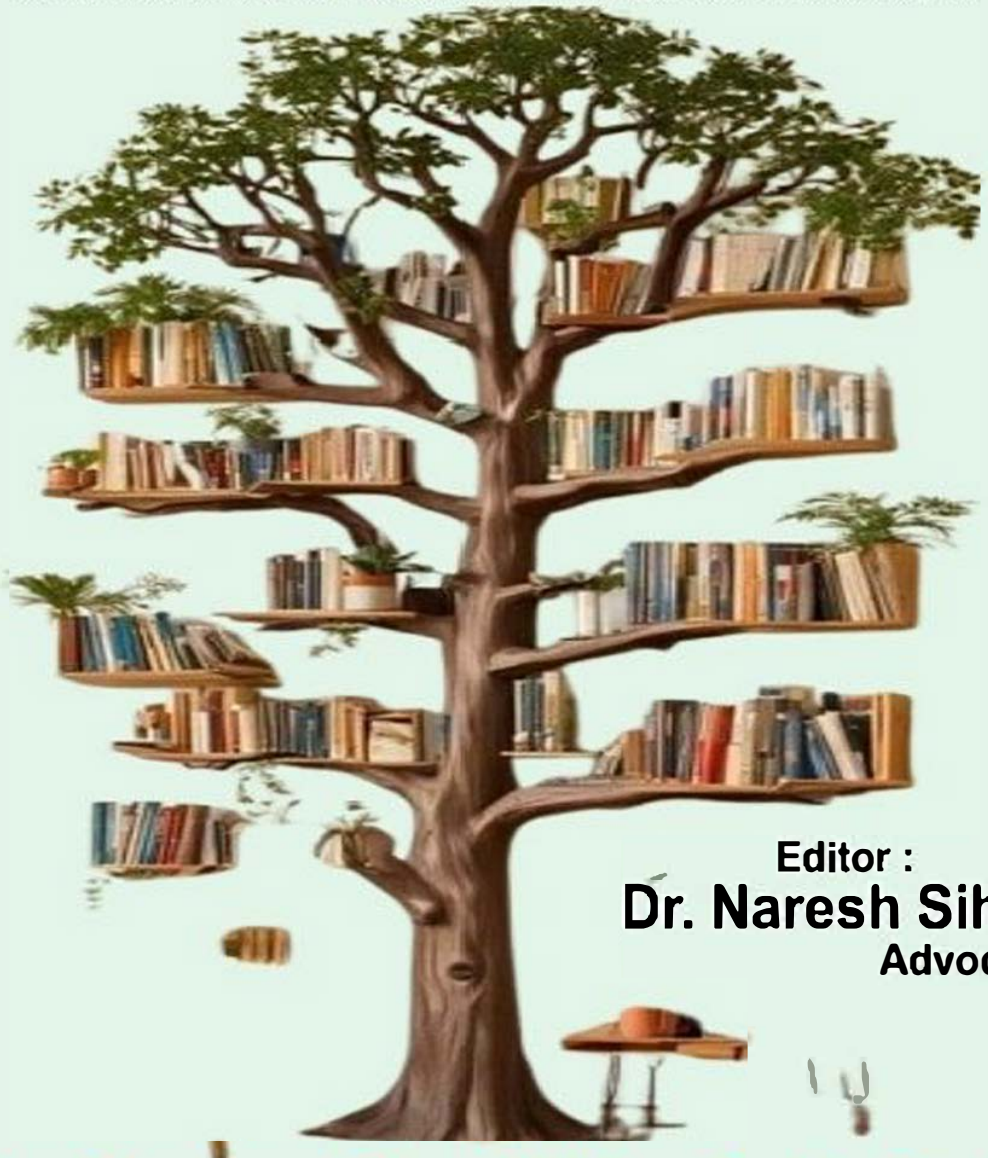

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 ISSUE-6 (दिसंबर 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

अनुक्रमणिका-दिसंबर 2025

क्र०	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	संपादकीय	डॉ० नरेश सिहाग	09-10
2.	कृषक चेतना के संवेदनशील कथाकार मुंशी प्रेमचंद	राहुल प्रसाद	11-14
3.	बाढ़ और सूखा : स्थायी रोकथाम और प्रबंधन	सलोचना यादव	15-18
4.	वाल्मीकिरामायणेऽपाणिनीयप्रयोगाणां पाणिनीयेतरव्याकरणदृशा विमर्शः	प्रतीक कुमार तिवारी	19-22
5.	सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं में नारी की मनोदशा	डॉ. राम मनोहर उपाध्याय, श्रीमती रजनी	23-26
6.	भारत के हिंदी भाषी प्रदेशों के समाज पर भाषा, संस्कृति और पुस्तकालयों का प्रभाव : एक मूल्यांकन	डॉ. देवेंद्र कुमार शर्मा	27-30
7.	समकालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त वृद्ध महिला की समस्याएं	पुष्पा सी. वी. , प्रो. डॉ. वि. के. सुब्रमण्यन	31-36
8.	Agricultural Productivity and its Regional Imbalances of Eastern Rajasthan	Naresh Kumar Meena	37-39
9.	मंजुल भगत के उपन्यासों में नारी की भूमिका	Anjaly Prakash, Dr. Sreeja G.R	40-43
10.	समकालीन हिंदी उपन्यासों में ट्रांसजेंडर	आर्या कृष्णन, Dr.Sreeja G R	44-47
11.	सहरिया जनजाति का जीवनदर्शन एवं सांस्कृतिक बोध	सपना कुमारी वर्मा, डॉ उर्विजा शर्मा	48-51
12.	क्षेमेन्द्र साहित्य में प्राप्त चित्रकला : एक अध्ययन	टीना कुमारी	52-54
13.	युग चेतना : अर्थ और अवधारणा	देवांश बैरागी	55-58
14.	CONDTIONS OF WOMENS IN MEDIEVAL INDIA-AN ANALYSIS	ARUNA NAGUL , Dr. ABHISHEK AGRAWAL	59-64
15.	हिंदी एकांकी साहित्य के विकास में डॉ. रामकुमार वर्मा का योगदान	डॉ. दिलचंद राम	65-69

16.	झारखण्ड आंदोलन के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक भूमिका का अध्ययन (1912–2000)	देवेन्द्र महतो	70-74
17.	Agricultural productivity and its Regional Imbalances of the world	Naresh Kumar Meena	75-79
18.	डिजिटल युग में भारतीय भाषाएँ और ज्ञान परंपरा	डॉ. रेखा. जी	80-84
19.	साहित्यिक परिदृश्य की खोज: भारत में मधु कांकरिया के लेखन और समकालीन महिला लेखकों का तुलनात्मक विश्लेषण	दिनेश परमार, डॉ.एन.के.पटेल	85-90
20.	रमेश बक्षी के कथा साहित्य में प्रकृति की यथार्थवादी अभिव्यक्ति	नीतु एन. एस.	91-95
21.	प्रभाकर द्विवेदी के यात्रा-वृत्तांतो में सामाजिक जीवन	बबिता	96-98
22.	"छत्तीसगढ़ के लोकनाट्यों का पारम्परिक स्वरूप"	डॉ. हेमपुष्पा नायक	99-101
23.	आदिवासी / ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन	डॉ. सुकन्या चल्ला	102-105
24.	भारत में महिला संगीत शिक्षा का स्वरूप और परिवर्तन:- प्राचीन काल से वर्तमान युग तक	डॉ० श्रुति मिश्रा	106-108
25.	उदय प्रकाश की कहानियों में हाशिए के लोगों की आवाज़: दलित, स्त्री और श्रमिक चेतना	स्मृति, डॉ० सुशील कुमार राय	109-113
26.	21 वीं सदी के नवनिर्माण में हिन्दी साहित्य की भूमिका	पिंकी, प्रो० योगेन्द्र प्रताप सिंह	114-117
27.	संसदीय कार्य दिवसों में गिरावट और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व पर उसका प्रभाव	धर्मेन्द्र कुमार	118-121
28.	साहित्य में नैतिक मूल्य: विविध आयाम	शिवलाल अहिरवार	122-127
29.	वैश्वीकरण के युग में संस्कृत नीतिकाव्यों की प्रासंगिकता	हिमांशु कुमार	128-131
30.	PARENTING EFFECTS ON CHILDREN	Alka Pradhan	132-135
31.	मानवता की धरोहर भारतीय ज्ञान परंपरा	राहुल कुमार	136-139
32.	'पूर्णता की चाहत' में अधूरेपन से संघर्ष करती स्त्री	मोनिका	140-144

33.	कबीर का तत्कालीन दर्शन और वर्तमान समाज की दिशा	डॉ० सुनील कुमार	145-150
34.	माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप	पूजा रानी	151-155
35.	आधुनिकता, दाम्पत्य-संबंध और अस्तित्व-संघर्ष : 'आधे-अधूरे' का समकालीन परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण	डॉ० सीमा दुबे	156-158
36.	संगीत स्वास्थ के लिए वरदान है	डॉ० राजेश कुमार मिश्रा	159-161
37.	ਪੰਜਾਬੀ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਦੀ ਦਸ਼ਾ ਤੇ ਮੁਕਤੀ ਦੀ ਨਿਸ਼ਾਨਦੇਹੀ	ਅਮਨਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ, ਡਾ. ਸੰਦੀਪ ਸਿੰਘ	162-167
38.	प्रवासी महिलाओं का साहित्य	जितेन्द्र	168-172
39.	Youth and Political Participation in the Digital Era	Deepika Singh	173-179
40.	कमल कुमार के कथा-साहित्य में स्त्री चेतना के बदलते स्वर	प्रियंका मिश्रा	180-182
41.	झुंझुनू जिले में उच्च शिक्षा की स्थिति : एक समीक्षात्मक अध्ययन	उमा शंकर	183-187
42	शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियों में निम्न वर्ग का यथार्थ	टेकराम, डॉ. अभिनेष सुराना	188-192
43	बुद्धिलाल पाल की कविता और सामाजिक चिंतन	युगेश कुमार देशमुख, डॉ. पन्नलाल यादव	193-200
44	हिन्दी भाषा एवं समाज में योगदान : महर्षि दयानंद सरस्वती	साक्षी शर्मा, डॉ. सुनीता मच्छिन्द्र मोटे	201-206
45.	वंचित वर्ग की बालिकाओं के शैक्षिक सशक्तिकरण में कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की भूमिका	हरि शंकर प्रसाद	207-209
46.	महिला सशक्तिकरण में बिहार सरकार की योजनाएँ	डॉ० श्वेता कुमारी	210-212
47.	प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों का अध्ययन	आरती कुमारी, प्रो० श्याम रंजन प्रसाद सिंह	213-215
48.	Examining the Professional Commitment of Teacher Educators with Reference to their Existing Teaching Span	Prativa Tiwari	216-221
49.	India–Sri Lanka Relations in the Indian Ocean Region: Challenges, Constraints, and a Way Forward	Anwith G Kumar	222-225

संपादकीय

दिसंबर 2025 का यह अंक आपके हाथों में है। वर्ष का अंतिम पड़ाव हमेशा हमें दो दिशाओं में ले जाता है—एक ओर पीछे मुड़कर देखने का अवकाश और दूसरी ओर आगे की राह का चिंतन। **बोहल शोध मंजूषा** के इस अंक को तैयार करते हुए यही अनुभव बार-बार मन में उभरा कि शोध और साहित्य की यह यात्रा सिर्फ काग़ज़ पर दर्ज शब्दों की नहीं, बल्कि समाज की संवेदनाओं, संघर्षों और संभावनाओं की यात्रा भी है।

पिछले एक दशक में शोध-लेखन के प्रति युवाओं का झुकाव बढ़ा है, परंतु इसके साथ-साथ चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं—डेटा की विश्वसनीयता, संदर्भों की प्रामाणिकता और शोध पद्धति की शुद्धता इनमें सबसे प्रमुख हैं। **बोहल शोध मंजूषा** इन सभी पहलुओं पर हमेशा दृढ़ता से कार्य करती आई है और आगे भी यही संकल्प हमारा पथप्रदर्शक रहेगा। इस अंक के लेखों में भी सामाजिक, साहित्यिक और बहु-विषयक शोध का ऐसा संतुलन देखने को मिलेगा जो ज्ञान-विस्तार की इस आवश्यकता को सार्थक बनाता है।

साहित्य और समाज: एक अविभाज्य संवाद

इस अंक में शामिल अनेक शोध लेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि साहित्य सिर्फ़ शब्दों का सौंदर्य नहीं, बल्कि समाज का दर्पण है—कभी तीखा, कभी स्नेहिल, कभी प्रश्नांकित और कभी मार्गदर्शक।

शोध और नैतिकता: हमारी प्राथमिकता

आज जब शोध क्षेत्र में "कृत्रिम बुद्धिमत्ता", "डाटा जनरेशन", "प्लैजियरिज़्म" और "औपचारिकता-आधारित लेखन" जैसे विषयों पर गंभीर चिंताएँ उठ रही हैं, तब शोध-नैतिकता का महत्त्व कई गुना बढ़ गया है।

हमारा प्रयास हमेशा रहा है कि—

- साहित्यिक और सामाजिक मूल्यों का सम्मान हो,
- शोध मौलिक हो,
- संदर्भ स्पष्ट और सत्यापित हों,
- और लेखक शोधकर्त्ता के रूप में अपनी जिम्मेदारी को ईमानदारी से निभाएँ।

यह संपादकीय इस बात पर ज़ोर देता है कि शोध की दुनिया में नैतिकता सिर्फ़ नियम नहीं, बल्कि एक आंतरिक संस्कार है, एक सत्यनिष्ठा है जो शोध को अर्थ देती है।

नए युग की दिशा: डिजिटल शोध और वैश्विक संवाद

दिसंबर 2025 का समय शोध के लिए नए दिशाबोध लेकर आया है। अब शोध स्थानीय नहीं रहा; यह वैश्विक विमर्श का हिस्सा बन चुका है। ऑनलाइन जर्नल, ओपन एक्सेस प्लेटफ़ॉर्म, डिजिटल रिपॉजिटरी और AI-सहायक अध्ययन ने शोध को नई गति दी है।

पर यह सुविधा जितनी बड़ी है, उतनी ही बड़ी ज़िम्मेदारी भी है—

- स्रोतों की सत्यता पहचानना
- संदर्भों की तुलना करना
- डिजिटल कंटेंट को समझना

- और समालोचनात्मक दृष्टि को जीवित रखना

इस अंक के कई लेख इसी डिजिटल युग के शोध कौशल को नए सिरे से परिभाषित करते हैं।

हमारा साहित्यिक और शोध परिवार: एक निरंतर बढ़ती परंपरा

बोहल शोध मंजूषा अपने पाठकों, लेखकों, शोधार्थियों और समीक्षकों के प्रति हृदय से कृतज्ञ है। आपके सहयोग से ही यह पत्रिका एक प्रामाणिक मंच बन पाई है। हर अंक के साथ नए लेखक जुड़ते हैं, नए विचार आते हैं और नई दिशा मिलती है।

इस दिसंबर अंक में प्रकाशित लेख विविध विषयों को समेटे हुए हैं—

- समकालीन कविता और कथा का नवीन सौंदर्य
- सामाजिक विमर्शों का विश्लेषण
- भारतीय चिंतन परंपरा के नए अर्थ
- साहित्य में नई संकेत प्रणालियाँ
- और शोध पद्धति पर नए दृष्टिकोण

यह सभी लेख हमारे समय और समाज की चेतना को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

आने वाला वर्ष: उम्मीदों और संकल्पों का वर्ष

2026 का स्वागत हम शोध और साहित्य की नई रोशनी के साथ करना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य है—

- शोध की गुणवत्ता को और सुदृढ़ करना
- नई पीढ़ी के शोधार्थियों को प्रोत्साहित करना
- बहुविषयी अध्ययन को स्थान देना
- और वैश्विक विमर्श से हिंदी जगत को जोड़ना

हम यह भी संकल्प लेते हैं कि बोहल शोध मंजूषा सामाजिक सरोकारों, शोध-नैतिकता और साहित्यिक चेतना को अपनी केंद्रीय धुरी बनाए रखेगी।

समापन: शब्दों से आगे की यात्रा

संपादकीय केवल भूमिका नहीं, बल्कि एक संवाद है—शोधकर्त्ता और समाज के बीच इस अंक को समर्पित करते हुए मन में एक ही विश्वास है कि—

ज्ञान की यात्रा अनंत है,
शोध उसका माध्यम है,
और साहित्य उसकी आत्मा।

आशा है कि दिसंबर 2025 का यह अंक आपके अध्ययन, शोध और चिंतन को नयी दिशा देगा, नयी प्रेरणा देगा और भविष्य के लिए नयी संभावनाएँ खोलेगा।

आपके सहयोग, विश्वास और स्नेह के लिए हार्दिक धन्यवाद।

– संपादक
बोहल शोध मंजूषा

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 11-14
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृषक चेतना के संवेदनशील कथाकार मुंशी प्रेमचंद

राहुल प्रसाद
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,
जानकी देवी मेमोरियल महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय

हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के महत्त्व एवं उनकी उपस्थिति का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि जब उपन्यासों एवं कहानियों के काल विभाजन की बात की जाती है तो समय का विभाजन प्रेमचंद के नाम से ही किया जाता है | एक कथाकार के रूप में प्रेमचंद ने बारह उपन्यास एवं तीन सौ से अधिक कहानियों का सृजन किया है। प्रेमचंद ने ग्रामीण समाज के किसान एवं मजदूर वर्ग को अमीर सामंत एवं साहूकारों के द्वारा शोषित होते देखा, जिसने उनके हृदय को गहरे तक आहत किया। गरीबों के दुःख दर्दों से प्रेमचंद का गहरा सरोकार होने का मुख्य कारण यह भी रहा कि उन्होंने स्वयं गरीबी की मार झेली है। डॉ. रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक **प्रेमचंद और उनका युग**' में लिखते हैं 'जिस प्रकार गोदान में होरी कर्ज के बोझ के तले दबा हुआ था उसी प्रकार प्रेंचंद के ऊपर भी कर्जा चढ़ा हुआ था' प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य संवेदना से उपजा हुआ साहित्य है। आचार्य हजारी प्रसाद लिखते हैं " प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पद-पद पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबर्दस्त वकील थे, गरीबों और बेकसों के महत्त्व के प्रचारक थे |"[1] प्रेमचंद ने उपन्यास एवं कहानियों के माध्यम से ही नहीं अपितु अपने विचारों, जो कि उनके लेखों एवं निबंधों में देखने को मिलता है जिनमें किसान एवं भारतीय ग्रामीण जनमानस की स्थिति का सजीव चित्रण किया है। प्रेमचंद किसानों की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं "भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं। कई फीसदी वे हैं जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मोहताज़ है। जैसे बढ़ई, लुहार आदि। राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है वह इन्हीं मजदूरों की मेहनत का सदका है। हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फ़ौज, हमारी अदालतें और कचहरियाँ सब उन्ही की कमाई के बल पर चलते हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं भरपेट अन्न को तरसते हैं, जाड़े-पाले में ठिठुरते हैं और मक्खियों की तरह मरते हैं।"[2] प्रेमचंद के साहित्य में किसानों की दारुण स्थिति के साथ-साथ किसानों का विद्रोह भी स्पष्ट नजर आता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलन जो किसानों की समस्याओं को केंद्र में रखकर किए जा रहे थे उनसे प्रेमचंद का सम्पूर्ण लेखन प्रभावित रहा। इस सन्दर्भ में 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में गोपालराय लिखते हैं "भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी इस तथ्य से अवगत है कि लगानबंदी आन्दोलन स्वाधीनता संग्राम का महत्वपूर्ण अंग था। यद्यपि गांधीजी ने जमींदारों महाजनों और सरकार के खिलाफ किसान आन्दोलन को उग्र रूप नहीं धारण करने दिया। फिर भी किसानों और किसान मजदूरों ने अपने शोषकों

के ख़िलाफ़ आन्दोलन किया।.. प्रेमचंद के उपन्यासों में किसानों के इस संघर्ष का चित्रण मिलता है। प्रेमाश्रय, कायाकल्प और कर्मभूमि के छोटे किसान और किसान मजदूर जमींदार द्वारा की गयी लगान वृद्धि बेगारी तथा फसल न होने पर भी लगान वसूली का विरोध करते हैं और एकजुट होकर लड़ते हैं।"[3]

धार्मिक आस्था से किसान किस प्रकार प्रभावित है, इसका वर्णन प्रेमचंद अत्यंत चर्चित कहानी 'सवा सेर गेंहू' में देखने को मिलता है। दरवाजे पर यदि कोई संत महात्मा आ जाए तो उनकी सेवा सुश्रुसा करना किसान अपना नैतिक धर्म समझता है। महात्मा की सेवा क लिए किसान को विप्र महाराज से सामग्री उधार लेनी पड़ती है और वही उसकी विपत्ति का भी कारण बनती है। "गरीब किसान शंकर महात्मा जी को भोजन कराने के लिए सवा से गेंहू उधार लाता है। महात्मा जी तो प्रातःकाल आशीर्वाद देकर अपनी राह लेते हैं। इधर गेंहू उधार देने वाले विप्र महाराज शंकर को ऐसे महाजनी चक्कर में डालते हैं कि उसे अपनी सारी जिन्दगी उनकी गुलामी में खपानी पड़ती है और उसके मरने के बाद उसका बेटा भी उसका कर्ज चुकाने के लिए गुलामी करने को बाध्य होता है।"[4] प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है। उक्त कहानी किसान की निराशा एवं उसकी संवेदनशीलता का अद्भुत अंकन किया गया है। "पूस की रात कहानी में औपनिवेशिक किसान की हताशा एवं टूटी हुई मनोदशा का अद्भुत चित्रण हुआ है। औपनिवेशिक भूमि व्यवस्था के कारण उत्तर भारतीय किसान की हालत कुत्ते से भी बदत्तर हो गयी थी और वह मजदूर बनने की ओर बढ़ रहा था। किसान के साथ कुत्ते को रखकर प्रेमचंद ने इस सच्चाई को अद्भुत संवेदनात्मक धार प्रदान की है। पशु संवेदना का ऐसा मार्मिक चित्रण भी अन्यत्र दुर्लभ है।"[5] प्रेमचंद ने किसान केवन की त्रासदी को स्वयं भोगा है। यही कारण है कि उनके साहित्य में किसान जीवन का हर पहलू उजागर होता है। किसानों की दिनोंदिन बदत्तर हो रही हालत पर चिंता व्यक्त करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं "भारतीय किसानों की इस समय दयनीय दशा है। उसे कोई भी शब्दों में अंकित नहीं कर सकता। सरकार को समय पर लगान चाहिए, खाने के लिए दो मुट्ठी अन्न चाहिए पहनने के लिए चिथड़ा चाहिए। चाहिए सब कुछ पर एक और तुषार तथा अतिवृष्टि फसल को चौपट कर रही है। एक और आंधी उनकी रही-सही खेती को नष्ट-भ्रष्ट कर रही है। दूसरी ओर रोग, प्लेग हैजा, शीतला उनके नौजवानों को हरी-भरी तथा लहलहाती जवानी में उसी तरह दुनिया से उठाए लिए चली जा रही है। जिस तरह लहलहाता खेत अभी छः दिन पूर्व के पत्थर पाले से जल गया। गल्ला पैदा हो रहा है पर भाव इतना मंदा है कि कोई दो वक्त भोजन भी नहीं कर सकता सभी के तन पर जो एक दो गहने थे वे साहूकार के पेट से बचकर सरकार की मालगुजारी के पेट में चले गये।"[6]

प्रेमचंद की अत्यंत चर्चित कहानी 'पूस की रात' हल्कू जैसे छोटे किसान की स्थिति कर्ज के बोझ के टेल दबकर किस प्रकार दयनीय हो जाती है उसका बहुत ही संवेदनात्मक चित्रण प्रेमचंद करते हैं। अपना दिया हुआ उधार जब वापिस लाने के लिए सहना उसके घर जाता है तो हल्कू की पत्नी कहती है "न जाने कितना बाकी है कि किसी तरह चुकता ही नहीं है। बाकी चुकाने के लिए ही हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजदूरी करते रहो, ऐसी खेती से बाज आए।"[7] हल्कू की पत्नी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि दिन-भर खून पसीने से जो कमाई होती है वह सब जमींदारों एवं साहूकारों को उधार देने में ही चला जाता है। कहानी का ही एक अत्यंत कारुणिक दृश्य उस वक्त दिखाई देता है जब पूस की रात की कड़ाके की ठंडी में सारी फसलों को नीलगाय चर जाती है और यह सब देखकर हल्कू की पत्नी कहती है अब तो सारी मालगुजारी मजदूरी करके ही करनी पड़ेगी। किन्तु हल्कू को इस बात की ख़ुशी है कि अब रात में फसल की रखवाली के लिए जागना नहीं पड़ेगा। दरअसल यह ख़ुशी वास्तविक ख़ुशी नहीं है अपितु अपने आप को तसल्ली देना है। यदि फसल बच भी जाती तो उसे साहूकारों के ऋण चुकाने के लिए ही प्रयोग करना पड़ता। वस्तुतः इस पूरी मानसिकता के पीछे वे परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं जो ऋण के नाम पर लिया हुआ कर्जा चुकाते-चुकाते किसानों की पूरी

पीढ़ियाँ ही सेठों एवं जमीदारों की गुलामी करने के लिए विवश करती हैं। ऋण तो पूरा चुक नहीं पाता किन्तु किसानों की स्थिति बद से बदत्तर होती जाती है। प्रेमचंद केवल कहानी के माध्यम से ही किसानों की स्थति का चित्रण नहीं करते अपितु तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए पात्रों के संवादों के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था का पर्दाफ़ाश करने की कोशिश करते हैं। कफ़न कहानी के दो प्रतिनिधि पात्र घीसू और माधव जो कि अत्यंत कामचोर हैं किन्तु उनके पास उनकी कामचोरी के पुख्ता तर्क मौजूद हैं। वे उनके कामचोर हो जाने के पीछे का कारण बताते हुए कहते हैं "जिस समाज में दिन-रात मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न हो, और किसानों के मुकाबले वे लोग जो किसानों की दुर्बलता से लाभ उठाना चाहते थे कहीं ज्यादा संपन्न थे। वहां इस तरह की मनोवृति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात नहीं थी। उसे तस्कीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम से कम उसे किसानों की सी जी तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती।"[8] प्रेमचंद का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास गोदान जिसे आलोचकों द्वारा कृषक जीवन का महाकाव्य की संज्ञा से भी अभिहित किया गया है। जिसका नायक होरी भी निर्धनता से ग्रस्त होकर मजदूर बनने पर विवश हो जाता है। वहीं दूसरी ओर खन्ना जैसे पूंजीपति लोग अपनी तिजोरियाँ भरने में लगे रहते हैं। वे कितना भी कमा लें किन्तु उसे उनका गुजारा भत्ता पूरा हो ही नहीं पाता, उपन्यास का अत्यंत द्रवित करने वाला दृश्य उस वक्त दिखाई देता है जब गोबर गाँव आता है और वहां की स्थिति देखकर उसका मन करुणा से भर उठता है "गोबर ने घर पहुंचकर घर की दशा देखी तो ऐसा निराश हुआ कि इसी वक्त यहाँ से लौट जाए घर का एक हिस्सा गिरने को हो गया था। द्वार पर एक बैल बंधा हुआ था वह भी नीमजान धनिया और होरी दोनों फुले न समाये लेकिन गोबर का जी उचाट था। अब इस घर के सँभालने की क्या आशा है। वह गुलामी करता है लेकिन भरपेट खाता तो है केवल एक ही मालिक का तो नौकर है यहाँ तो जिसे देखो वही रौब जमाता है। मेहनत करके अनाज पैदा करो और जो रुपए मिले वह दूसरों को दे दो। आप बैठे राम-राम करो।"[9] केवल होरी ही नहीं अपितु सारे गाँव की यही स्थिति है। गाँव में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसकी रोती हुई शक्ल न बनी हो। होरी का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष एवं दुखों की त्रासदी है। अपनी अंतिम सांस तक वह महाजनों का कर्जा चुकाने में असमर्थ रहता है एवं इस संसार से विदा हो जाता है। भारतीय किसान जीवन का इतना मार्मिक चित्रण किसी अन्य रचना में देखने को नहीं मिलता है।

प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य तत्कालीन परिस्थतियों से उपजा हुआ साहित्य है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थतियों का अंकन उसमे स्पष्ट झलकता है। कृषक जीवन का कोई भी पहलू उससे अछूता नहीं रहता। किस प्रकार एक किसान जमीदारों एवं महाजनों के शोषण का शिकार आजीवन होता रहता है गोदान उसका अप्रतिम उदहारण है। इसके साथ ही उनकी कहानियाँ एवं उनके लेखों में भी किसानों की स्थिति को लेकर गहरी चिंता दिखाई देती है। प्रेमचंद से लेकर आज तक किसानों की स्थिति में कुछ ख़ास परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी कई किसानों को कर्ज न चुका पाने की स्थिति में आत्महत्या करने पर विवश होना पड़ रहा है। सरकार द्वारा किसानों के हित के लिए बहुत सी योजनाएँ लागू की जाती हैं किन्तु वास्तविक धरातल पर कृषकों को उनका पूरा लाभ नहीं मिल पाता। कृषि सम्बन्धी सुविधाओं के अभाव में गावों से किसानों का पलायन हो रहा है किन्तु शहर में वे मजदूर का जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। जिस कृषक जीवन की कटु सच्चाई को प्रेमचंद अपने साहित्य के माध्यम से हमारे सम्मुख रखते हैं वह स्थिति कमोबेश आज भी दिखाई देती है।

सन्दर्भ -:

1. हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, द्विवेदी, हजारी प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, बीसवां संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या-229

2. प्रेमचंद व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं. स्चिराम गुर्टू, पृष्ठ संख्या – 40
3. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपालराय, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ संख्या- 133
4. प्रेमचंद की कहानियाँ, सं. गोपाल शुक्ल, भारतीय साहित्य संग्रह, 2012, पृष्ठ संख्या-123
5. हिंदी कहानी का इतिहास, गोपालराय, राजकमल प्रकाशन, संस्करण, 2014, पृष्ठ संख्या-128
6. प्रेमचंद व्यक्तित्व एवं कृतित्व, सं. स्चिराम गुर्टू, पृष्ठ संख्या – 135
7. प्रेमचंद की कहानियाँ, सं. गोपाल शुक्ल, भारतीय साहित्य संग्रह, 2012, पृष्ठ संख्या-204
8. प्रेमचंद की कहानियाँ, सं. गोपाल शुक्ल, भारतीय साहित्य संग्रह, 2012, पृष्ठ संख्या-180
9. गोदान, प्रेमचंद, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2015, पृष्ठ संख्या-276

फोन- 8368048147 8447026084
ईमेल- rahul@jdm.du.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 15-18
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बाढ़ और सूखा : स्थायी रोकथाम और प्रबंधन

सलोचना यादव
यूजीसी नेट 2018, भूगोल
Post-Chhapoli, Teh-Udaipurwati, District-Jhunjhnu-333302

पिछले दशकों में दुनिया भर में प्राकृतिक आपदाएं स्पष्ट रूप से पानी से संबंधित अत्यधिक बाढ़ और सूखे की घटनाओं के कारण हुई है। वर्षा की कमी के साथ–साथ भारी बारिश के कारण विभिन्न प्रकार की आपदाएं आती है जिनमें अत्यधिक सूखे से लेकर अभूतपूर्व बाढ़ तक शामिल है। जलवायु परिवर्तन पर्यावरणीय गिरावट, जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और बढ़ती गरीबी के कारण मानव समाज बाढ़ और सूखे की आपदाओं के प्रति अधिक संवेदनषील हो जाता है। वे लम्बे समय तक चलने वाले नकारात्मक परिणामों के साथ कृषि क्षेत्र, उद्योग, सेवाओं और परिस्थितिकी तंत्र को गंभीर विनाश का कारण बनाते है विषेष रूप से गरीब विकासशील देशों में वे आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए एक सीमित कारक बन गए है। इस समस्या से निपटने के लिए उचित रोकथाम और प्रबंधन उपायों की स्थापना के लिए विभिन्न प्रयास किए गए है। यह पत्र बाढ़ और सूखे के तनाव को दूर करने के लिए एकीकृत जल संसाधनों और व्यापक आपदा जोखिम प्रबंधन के एक स्थायी स्तर पर एक मास्टर प्लान अध्ययन का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है ताकि पिछली गलतियों से बचा जा सके और जिसके परिणामस्वरूप कई तरह की जरूरतों को पूरा किया जा सके।

बाढ़ : जब भारी अथवा निरन्तर वर्षा के कारण नदियों का जल अपने तटबन्धों को तोड़कर बहुत बड़े क्षेत्र में फैल जाता है उसे बाढ़ कहते है। बाढ़ अतिवृष्टि के कारण आती है।

बाढ़ :– उच्च जल स्तर जो एक धारा किसी भी हिस्से के कारण प्राकृतिक किनारों को बहा देता है, बाढ़ कहलाती है। अथवा बाढ़ पानी के डूबी हुई भूमि का अति प्रवाह है जो सामान्यतः सूखी रहती है।

✓ पर्यावरण में मानवीय परिवर्तक अक्सर बाढ़ की तीव्रता और आवृत्ति को बढ़ा देते है।

✓ वर्षा में वृद्धि और चरम मौसम की घटनाओं के परिणामस्वरूप भी अधिक तीव्र बाढ़ आ जाती है।

बाढ़ के कारण :– समान्यतः भारी बारिश के बाद जल प्राकृतिक जल संग्रहण स्त्रोतों/मार्गो की जल धारण करने की क्षमता का संपूर्ण दोहन हो जाता है, तो पानी उन स्त्रोतों से निकलकर आस–पास की सूखी भूमि को डूबो देता है। लेकिन बाढ़ हमेषा भारी बारिष के कारण नहीं आती है बल्कि यह प्राकृतिक और मानव निर्मित दोनों ही करणों का परिणाम है, जिन्हें हम इस प्रकार वर्णित कर सकते है।

1. भारी वर्षा :– जल बहुत अधिक वर्षा होती है, तो इसमें से कुछ वाष्पिकारण द्वारा तथा कुछ धीरे–धीरे मिट्टी में रिस जाती है और शेष तेजी से जमीन से निकल जाती है।

   जब वर्षा और अपवाह अधिक होता है तो पानी जाने के लिए जगह नहीं होती इसके परिणामस्वरूप अचानक पानी में अति प्रवाह बाढ़ के रूप में समाने आती है।
2. नदियों का अति प्रवाह
3. बांधो का टूटना – वर्षा तीव्र होने और जल स्तर बढ़ने पर बुनियादी ढांचा पुराना हो सकता है।

4. तुफान की लहरें और सुनामी :– तुफान और अन्य उष्ण कंटिबंधीय प्रणालियों से उठने वाले तुफान समुद्र के स्तर में वृद्धि का कारण बनते है और शुष्क तटीय क्षेत्रों में कई फीट तक पानी के स्तर को बढ़ा देते है।
5. ढलुआं किनारों वाली घाटियां –
6. बर्फ या ग्लेशियर का पिघलना –
7. वनों की कटाई और वनस्पतियों का कमी
8. खराब खेती के तरीके – जब खेतों को खाली छोड़ कर मिट्टी और पानी को नदियों में बहा देते है खेती की जुताई के लिए गलत तरीका चुनना भी बाढ़ का प्रमुख कारण है।
9. शहरीकरण (Urbanization) – इसमें पानी का रिसाव कम हो जाता है जिससे सतही बहाव की मात्रा और दर बढ़ जाती है।
10. मानव निर्मित अवरोध :– तटबंधो, नहरों और रेलवे से संबंधित निर्माण के कारण नदियों के जल प्रवाह क्षमताओं में कमी आती है। फलस्वरूप बाद की समस्या और भी गंभीर हो जाती है।
11. बादल फटना :– भारी वर्षा और पहाड़ियों/नदियों के आस–पास बादलों के फटने से भी नदियां जल से भर जाती है।

बाढ़ का परिणाम :– असम, पष्चिम बंगाल, बिहार, पूर्वी उत्तरप्रदेश (मैदानी क्षेत्र) और ओडिसा, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और गुजरात एवं हरियाणा में बार–बार बाढ़ आने और कृशि भूमि तथा मानव बस्तियों के डूबने से देष की अर्थव्यवस्था तथा समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बाढ़ न सिर्फ फसलों को बर्बाद करती है बल्कि आधारभूत ढांचा जैसे सड़के, रेलमार्ग, पुल और मानव बस्तियों को भी नुकसान पहुंचाती है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में कई तरह की बीमारियां जैसे– हैजा आंत्रषोध (Enteritis) हेपेटाईटिस एवं अन्य दूषित जलजनित बीमारियां फैल जाती है। दूसरी और बाढ़ के कुछ लाभ भी है। हर वर्ष बाढ़ खेतों में उपजाऊ मिट्टी जमा करती है जो फसलों के लिए लाभदायक है।

बाढ़ राज्य सूची का विषय है –

✓ कटाव नियंत्रण सहित बाढ़ प्रबंधन का विषय राज्यों के क्षेत्राधिकार में आता है। बाढ़ प्रबंधक एवं कटाव रोधी योजनाएं राज्य सरकारों द्वारा प्राथमिकता के अनुसार अपने संसाधनों द्वारा नियोजित, अन्वेषित एवं कार्यान्वित की जाती है। इसके लिए केन्द्र सरकार राज्यों को तकनीकी मार्गदर्शक और वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

बाढ़ एवं सूखे का प्रबंधन

✓ बाढ़ व सूखे की गंभीरता से निपटने के लिए आवष्यक प्रभावषीलता की डिग्री प्रदान करने के लिए किसी भी एक विकल्प से समस्या का निपटारा नहीं हो सकता है। जहां संरचनात्मक और गैर–संरचनात्मक उपायों के माध्यम से इन आपदाओं को रोकने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। जिन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है –

संरचनात्मक उपाय

✓ स्थानीय जल निकासी
✓ स्थानीय बाढ़ भंडारण, प्राकृतिक अवसाद और जल निकासी क्षमता का प्रावधान।
✓ भूमि उपयोग विनियमन
✓ मौजूदा जलाषयों की प्रभावषीलता में वृद्धि और नए जलाशय संचालन नियम का विकास जो उद्देष्य की पूर्ण व्यावहारिक मान्यता देता है।
✓ बाढ़ के पानी के निरोध क्षेत्र को बढ़ाना
✓ कृषि कार्यनीतियों को विकसित करना तथा मृदा एवंज ल उत्पादकता में सुधार
✓ आपूर्ति प्रबंधन का उपयोग करने सूखे की रोकथाम

गैर संरचनात्मक उपाय :–

- ✓ आवष्यक डेटा संग्रह, बाढ़ सूखा, जोखिम मानचित्रण अक्षेत्रों की पहचान करने के लिए जहां बाढ़ और सूखा प्रतिरोध डिजाइन मानक, भूमि उपयोग प्रतिबंध
- ✓ बाढ़ और सूखा पूर्वानुमान
- ✓ बाढ़ और सूखे की चेतावनी और आपातकालीन राहत कार्यक्रम को अपनाना
- ✓ स्थानीय अनुसंधान एवं वैज्ञानिक संस्थानों से प्राप्त वैज्ञानिक जानकारी सहित भूमि, मृदा, ऊर्जा एवं जल प्रबंधन की व्यवस्था।
- ✓ आजीविका सहायता और गरीबी निवारण के लिये समेकित खेत प्रणालियों और गैर–कृषि विकास पर विचार

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन :–

- ✓ 23 दिसम्बर 2005 को भारत सरकार 'आपदा प्रबंधन' अधिनियम 2005 अधिनियमित किया गया, जिसके तहत राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (NDMA) एवं राष्ट्रीय आपदा मोचन बल (NDRF) का गठक किया गया।

एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन :–

- ✓ जून 1992 में रियो डी जेनेरियों में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में अनुमोदित एजेंडा–21, अध्याय 10 से
- ✓ पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक संसाधनों और सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं के अभिन्न अंग के रूप में पानी की धारणा पर आधारित है, इसलिए मानव गतिविधियों में पानी की जरूरतों को पूरा करने और सामंजस्य स्थापित करने के लिए जल संसाधनों को जलीय पारिस्थितिकी तंत्र और संसाधन के कार्यो को ध्यान में रखकर संरक्षित किया जाना है।

निष्कर्ष :–

- ✓ भारत की अवस्थिति भौगोलिक रूप से अधिक विविधता वाली है। इसमें एक ओर हिमालय जैसे पर्वत षिखर तो दूसरी ओर बड़े–बड़े समुद्री तट है। इसके अतिरिक्त सदाबहार से लेकर मौसमी नदियों तक

भारत में नदियों का विस्तृत जंजाल मौजूद है, साथ ही भारत के मुख्य भागों में वर्षा की अवधि का वर्ष में निश्चित समय हैं।

- ✓ इससे वर्षा ऋतु के दौरान बड़ी मात्रा में जलभराव एवं बाढ़ की समस्या का सामना करना पड़ता है।
- ✓ उपर्युक्त भौगोलिक कारकों के अतिरिक्त मानवीय कारक भी इसके लिये जिम्मेदार है। प्रतिवर्ष आने वाली बाढ़ से बड़ी मात्रा में जन–धन की हानि होती है, साथ ही इससे सर्वाधिक नकारात्मक रूप से समाज का सबसे गरीब वर्ग प्रभावित होता है। इस आलोक में बाढ़ जैसी आपदा की रोकथाम तथा बाढ़ आने के पश्चात् होने वाली हानि को कम करने के लिए जरूरी प्रयास किये जाने की आवष्यकता है।
- ✓ विभिन्न सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों द्वारा बाढ़ कि प्रभावों को कम करने के प्रयास किये जा रहे है।

संदर्भ :–

1. शुक्ला, राजेश : कृषि भूगोल, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली (2009)
2. श्राव, श्रीवास्तव : पर्यावरण और पारिस्थितिकीय, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर (2009)
3. जाट, बी०सी० : जलग्रहण प्रबन्धन, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर (2007)
4. भल्ला, एल०आर० : राजस्थान का भूगोल, कुलदीप प्रकाषन, अजमेर (1999)
5. शर्मा, एच०एस० : राजस्थान का भूगोल, पंचषील प्रकाषन जयपुर (2004)
6. सुजस राजस्थान : राजस्थान सरकार, सूचना एवं जनसम्पर्क निदेषालय जयपुर (2000)
7. जिला जल संसाधन विभाग, जयपुर

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 19-22
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वाल्मीकिरामायणेऽपाणिनीयप्रयोगाणां पाणिनीयेतरव्याकरणदृशा विमर्शः

A Grammatical Study of 'Apaniniya' Uses Included in Valmiki Ramayan in the View of Non Paniniya Grammar.

प्रतीक कुमार तिवारी
शोधच्छात्रः,
प्रो० प्रदीप कुमार पाण्डेयः
मार्गदर्शकः,
केंद्रीय-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, भोपाल-परिसरः, भोपालम्।

शोधसारः

वाल्मीकिरामायणे विद्यमानानां प्रयोगाणां मया पूर्वं सङ्कलनं कृतमस्ति। अनन्तरमध्यायानां सर्गानुसारेण विभाजनं कृत्वा तेषां प्रयोगाणां सविस्तरं पाणिनीयव्याकरणानुसारेण कथं न सम्मतत्वमिति प्रतिपादितमस्ति। तदनु सिद्धहेमशब्दानुशासनानुसारेण काशकृत्स्नव्याकरणानुसारेण चान्द्रव्यारणानुसारेण तेषां प्रयोगाणां समर्थनप्रकारो वर्णितो वर्तते। येषां प्रयोगाणां कुत्रापि साधुत्वं नास्ति तेषामार्षत्वं व्यवस्थापितमस्ति।

शोधोद्देश्यानि

पाणिनीयव्याकरणस्य लोकोत्तरमहिमशालित्वादिदानीं पाणिनीयेतरव्याकरणानां लोप इव दृश्यते। तेषामध्ययने साम्प्रतं कोऽपि न प्रवर्तते। किन्तु विदुषां वाक्यं निर्मूलं न भवति। तेषामपि व्याकरणानामपूर्वं प्रयोजनमस्ति। बहूनां पाणिनीयव्याकरणेऽसम्मतानां प्रयोगाणां तत्र साधनप्रकार उपलभ्यते। अस्माकमनेन प्रयासेन शोधच्छात्रा जिज्ञासवश्च तेषामध्ययने पुनः प्रेरिता भविष्यन्ति। तेनास्माकं महत्या व्याकरणपरम्पराया रक्षणं भविष्यति।

शोधप्रविधिः

1.**विश्लेषणात्मकम्** - विश्लेषणम् अर्थात् कस्यापि विषयवस्तुनः पङ्क्तिशः व्यवस्थापनम् , यथा-'वदे, इति प्रयोगमाश्रित्य अपाणिनीयत्वदर्शनं काशकृत्स्नस्य च प्रयोगसाधनम्।

2.व्याख्यात्मकम् - व्याख्या अर्थात् कस्यापि विषयवस्तुनः विषये व्याख्यानम्।

यथा - उपलब्धव्याकरणानां सूत्रात्मकं व्याख्यानम्।

3.वर्णनात्मकम् - वर्णनमर्थात् कस्यापि विषयवस्तुनः कुतःस्वीकारः ? कथं साधुः ? कीदृशाः प्रश्नाः ? इत्यादिविषयाणां प्रयोगविषये वर्णनम्।

यथा - वाल्मीकिरामायणे द्वितीयसर्गस्य अरण्यकाण्डस्य षष्ठे श्लोके 'व्यादितस्य' इति प्रयोगे इटागमस्य अपाणिनीयत्वं दृश्यते ,तस्मिन् विषये वर्णनम् करिष्यामि।

उदाहरणानि –

- **वसँ निवासे** - पाणिनीये परस्मैपदे, भासनार्थे च आत्मनेपदे पठ्यते। काशकृत्स्ने च उभयपदी प्रयोगः यथा लोके – कराग्रे वसते लक्ष्मीः ।।
- **अथर्व** इति शब्दस्य संसिद्धौ थर्व धातुः हिंसार्थे काशकृत्स्ने पठितः ।
- **दुढि अन्वेषणे** इति धातोः पाठः स्कन्दपुराणस्य काशीखण्डे अपि दृश्यते ।
- **विदँ ज्ञाने** – पाणिनीये सेट् काशकृत्स्ने च अनिट् यथा लोके – वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम ।। **(गीतायाम्)** , यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य **।। (सुभाषितरत्नभाण्डागारम्)।।**

परिचयः

व्याकरणशास्त्रं वेदस्य मुखभूतमङ्गं वर्तते । तस्मात् बहुभिः महर्षिभिः व्याकरणशास्त्रं रचितम् । पूर्वस्मिन् काले बहूनि व्याकरणान्यासन् । तत्र प्रमाणं किम् ? इति जिज्ञासायामुच्यते-

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्ना-पिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ।।

अत्र अष्टानां वैयाकरणानामुल्लेखो दृश्यते । महर्षि पाणिनिः वैयाकरणेषु तथैव भासमानो वर्तते यथा गगने पूर्णः चन्द्रमाः । पाणिनीयमेव व्याकरणं सर्वांशेन पूर्णमस्ति ।

यद्यपि पाणिनेः प्रागपि बहूनि व्याकरणानि आसन् । पश्चादपि जातानि । किन्तु तेषां पाणिनीयव्याकरणसदृशः प्रचारो नैव जातः ।

एवं स्थितौ अपि रामायणमहाभारतादिषु काव्येषु बहवः शब्दाः तथाविधा उपलभ्यन्ते येषां पाणिनीयव्याकरणानुसारेण साधुत्वं नैव भवति ।

असाधुत्वे कारणानि

तत्र नैकानि कारणानि भवितुमर्हन्ति । यथा-

1) रामायणादिकाले किञ्चिद् भिन्नमेव व्याकरणमासीद् येन साधिताः शब्दाः पाणिनीयव्याकरणापेक्षया भिन्नाः स्युः।

2) पाणिनीयव्याकरणेऽपि न्यूनता भवितुमर्हति ।

3) तेषां रामायणादीनां कर्तृणां वाल्मीक्यादीनां साधुशब्दानां ज्ञाने सत्यपि सामर्थ्यवशात् आर्षशब्दानां प्रयोगः ।

4) छन्दोभङ्गमिया व्याकरणशास्त्रीयनियमानामुल्लङ्घनम् ।

5) वेदेषु दृष्टानामपि प्रयोगाणां स्वातन्त्र्येण काव्येषु स्थापनम् ।

6) वेदेषु दृष्टानामपि प्रयोगाणां स्वातन्त्र्येण काव्येषु स्थापनम् ।

एतेषु को हेतुः समीचीनः ? कश्च असमीचीनः ? इति विषये तु पूर्वं रामायणे उपलभ्यमानात् अपाणिनीयान् प्रयोगान् पश्यामः ।

आत्मनेपदपरस्मैपदव्यवस्थायामार्षत्वम्

वाल्मीकिरामायणे प्रायेण आत्मनेपदपरस्मैपदव्यवस्थाया व्यत्यासो दृश्यते । तथाविधा बाहुल्येन प्रयोगाः सन्ति। यत्र पदव्यत्यासो जातः यथानित्यम् आत्मनेपदिनां धातूनां परस्मैपदम्-

धातवः	**रुपाणि**
वृधु वर्धने	विवर्धन्तीम् 1/25/18 वर्धति 1/26/24
सन्नन्तः ज्ञा अवबोधने भाष व्यक्तायां वाचि	जिज्ञासन्तः 1/31/10 अभिभाषथ 1/32/25

तथैव नित्यं परस्मैपदिनां धातूनाम् आत्मनेपदं यथा –

धातवः	रुपाणि
या प्रापणे	यास्यामहे 1/31/6
गम्लृ गतौ	गच्छामहे 1/29/38

दृशिर् प्रेक्षणे	पश्यामहे 2/2/29
प्रच्छ ज्ञीप्सायाम्	पर्यपृच्छत 2/10/17

न केवलमेतेषामेव किन्तु बहूनां पदव्यत्यासो दृश्यते। तेन पदव्यवस्थाया अनित्यत्वं मुनेरभिमतं स्यादिति कल्पनीयं भवति। किन्तु एवं सति लोके महती अव्यवस्था भवति।

तस्माद् अस्माभिः हेमचन्द्राचार्यकृतं सिद्धहेमशब्दानुशासनम्, काशकृत्स्नव्याकरणम्, चान्द्रव्याकरणम्, अन्यानि च नैकानि व्याकरणानि परिशील्य प्रयोगाणां साधनप्रकारो वर्णितः।

काशकृत्स्नव्याकरणे बहवो धातवो लब्धाः यैः एतेषां प्रयोगाणां साधनं कर्तुं शक्यते। येषां केनाप्युपायेन साधनं कर्तुं न शक्यते तेषां सूत्रेषु व्याख्यानभेदं स्वीकृत्य साधनं कृतम्।

यथा 'जिज्ञासन्तः' इति प्रयोगसाधनाय अस्माभिः हेमचन्द्रव्याकरणे 'अननोः सनः' इति सूत्रमादाय एवं व्याख्यानं कृतं यथा इष्टानां प्रयोगाणां सिद्धिः स्यात्। सामान्यरुपेणात्र पर्युदासनिषेधसामर्थ्याद् 'अनु' भिन्नाद् उपसर्गात् 'ज्ञा' धातोः सन्नन्तस्य आत्मनेपदं भवति इति अर्थो भवति। तेनात्र धातोः उपसर्गपूर्वकत्वाभावाद् आत्मनेपदं न भवति।

एवमत्र काचिद् गतिः लभ्यत एव। एवमेव बहुत्र 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' इति पाणिनीयनियमस्य व्यभिचारो दृश्यते।

बहुत्र समासं विनैव 'ल्यप्' आदेशो दृश्यते।

धातुः	रुपाणि
ग्रह उपादाने	गृह्यः 1/49/7
वस निवासे	उष्य 1/27/1

किन्तु अत्र विषये व्याकरणान्तेऽपि काऽपि गतिर्न लभ्यते। तस्मादत्र एवमनुसन्धेयं भवति। क्वचिद् एतत्प्रयोगसाधकं सूत्रं स्यात् किन्तु कालवशात् तल्लुप्तं स्यात्।

एवमेव बहुत्र प्रयोगेषु नुमागमाभावो दृश्यते यथा-

पाणिनीयं रुपम्	रामायणीयं रुपम्
अभिवर्षन्तीम्	अभिवर्षतीम् 1/26/24
परिगर्जन्तीम्	परिगर्जतीम् 1/26/20

एतेषामपि प्रयोगाणां साधनमस्माभिः चान्द्रव्याकरणानुसारेण कृतम्। तत्र नुमागमविधायके सूत्रे 'वा' इत्यस्यानुवृत्तिं स्वीकृत्य नुमाभावोऽपि साधितः।

एतत्सर्वं विहाय नैकेषाम् अन्येषामपि नियमानाम् उल्लङ्घनं दृश्यते। यथा –

प्रयोगः	विशेषः
आनयाञ्चक्रे	आम्प्रत्ययः
ब्रूमि	ईडभावः
शूर्पणख्या	ङीप्
कालधर्मणा	अनिच्समासान्तः
जहताम्	यासुडागमाभावः
विद्म	विसर्गलोपः
ब्रवीथ	ईडागमः

काशकृत्स्नधातुपाठस्य वैलक्षण्यम्

काशकृत्स्नधातुपाठे केचन धातवः पाणिनीयापेक्षया विलक्षणः सन्ति। तैरपि नैके प्रयोगाः साधिताः। यथा-

प्रयोगः	विशेषः
सहिष्यति	षह सामर्थ्ये दिवादिः 17 तस्य परस्मैपदित्वात् काशकृत्स्ने सिद्ध्यति।
वसेमहि	'वस निवासे' भ्वादिः उभयपदित्वात् सिद्ध्यति।

एवमेव नैकेषां प्रयोगाणां साधनं कृतम् । निश्चितरुपेण वाल्मीकिरामायणस्थप्रयोगाणां साधनाय विशेषार्थज्ञानाय च केवलं पाणिनीय व्याकरणमेव पर्याप्तं नास्ति। तदर्थं व्याकरणान्तराणि अपि आवश्यकानि।

उपसंहारः

एवं मया पाणिनीयव्याकरणे येषां प्रयोगाणां साधुत्वं नास्ति तेषामितरव्याकरणैः साधुत्वं निरूपितम्। चान्द्रव्याकरणे सिद्धहेमशब्दानुशासने च तादृशानि सूत्राणि सन्ति येन प्रयोगाणां समर्थनं कर्तुं शक्यम्। काशकृत्स्नव्याकरणे तु तादृशा धातवः सन्ति येन तच्छक्यम्। तेषां निरूपणं कृतम्।

सन्दर्भसूची

1. **वाल्मीकिरामायणम् -** बलदेव उपाध्यायकृतभूमिकयोपनिबद्धम्, उत्तरप्रदेश शोधसंस्थान लखनऊ।
2. **वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी -** सम्पादकः गोविन्दाचार्यः, चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
3. **सिद्धहेमशब्दानुशासनम् - सम्**पादकः - मुनिहिमांशुविजयः , प्रकाशकः - आनन्दजी कल्याणजी पेढी
4. **काशकृत्स्नधातुपाठः -** सम्पादकः - युधिष्ठिरो मीमांसकः, प्रकाशकः - भारतीयप्राच्यविद्याप्रतिष्ठानम् अजमेरः।
5. **चान्द्रव्याकरणम् -** प्रकाशकः - राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान।
6. **अष्टाध्यायी** - पाणिनिः , चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला-19 संस्करण 2017
7. **आशुबोधव्याकरणम्** – श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य , भारतीयविद्या अध्ययनकेन्द्र वाराणसी 1992
8. **कातन्त्रव्याकरणम्** – शर्ववर्म , सं.सं.वि, वाराणसी – 1997
9. **काशकृत्स्नव्याकरणम्** - युधिष्ठिर मीमांसक , रामलाल कपूर ट्रस्ट 1995

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 23-26
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं में नारी की मनोदशा

डॉ. राम मनोहर उपाध्याय
सहायक आचार्य हिन्दी विभाग,
श्रीमती रजनी
शोधार्थी,
हिन्दी विभाग, आइ0ई0एस0 विश्वविद्यालय भोपाल म0प्र0.

सारांश / आमुख

वैदिक युग से वर्तमान समय तक भारतीय समाज में कई परिवर्तन हुए और उनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कही ना कही प्रभाव स्त्री पर ही पड़ा है। आरम्भिक समय के साथ उनकी सामाजिक स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन आए हुए। बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में भारत की राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा में काफी उठापटक का प्रारंभ हुआ, इसी समय नारी विमर्श को कई साहित्यकारों ने अपने साहित्यिक वर्णन का विषय बनाया। छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद निराला जी एवं महादेवी जी ने अपनी रचनाओं में स्त्री के संघर्ष, समर्पण व साहचर्य को महत्वपूर्ण माना तथा नारी को विभिन्न रुपों का वर्णन किया है ठीक इसी प्रकार सुभद्रा कुमारी जी के साहित्य में भी स्त्री जीवन के विविध रुपों का वर्णन प्रमुखता से मिलता है। नारी जीवन के सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओं पर सुभद्रा जी ने अपनी गहन लेखनी के माध्यम से उसके प्रत्येक पक्ष को उजागर किया है इस शोध पत्र में सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं में स्त्री के विभिन्न रुपों, पक्षों व मानसिक स्थिति और उनकी समाज में स्थिति का विश्लेषण किया है। इनकी कहानियॉ समाज में स्त्रियों की विभिन्न भूमिकाओं और उनकी स्थिति को उजागर करती है इन कहानियों के माध्यम से सुभद्रा कुमारी चौहान नारी जीवन के रुप को प्रदर्शित करती है। जिसमें त्याग और समर्पण की भावना निहित होती है।

मुख्य शब्द– नारी की मनोदशा ,स्त्री विमर्श, देश के प्रति प्रेम,

प्रस्तावना–

सुभद्रा कुमारी चौहान छायावाद की प्रमुख साहित्यकार है। स्वयं महिला होने के नाते अपने समय की महिलाओं के अंतर्मन की भावनाओं को अपने साहित्य में प्रकट किया है। इस समय में नारी की सामाजिक स्तर और दशा अच्छी नहीं थी। उस पर कई तरह की पाबंदियॉ लगी हुई थी। मान – मर्यादा, लोक–लज्जा, पारिवारिक इज्जत आदि के पालन की जिम्मेदारी उसी पर निर्भर थी। पुरुष स्वयं को प्रधान घोषित कर स्त्री को उसकी दासी मान बैठा था, ऐसी कई प्रथाएं समाज में प्रचलित थी जिनका पालन करने को वह बाध्य थी। कालांतर में ऐसी कई संस्थाऍ सामने आई जिन्होंने नारी सुधार को लेकर मुहिम चलाई। अतः लेखिका ने समाज में नारी के द्वंद्व को अपनी वाणी प्रदान की है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति दयनीय रही है और उस दशा को भोगते हुए भी अपना स्वाभिमान बनाकर रखना उसकी अपनी विशेषता है। सुभद्रा जी ने अपनी रचनाओं में नारी के इस रुप के प्रमुखता से प्रकट किया है। सुभद्रा जी ने अपनी रचनाओं में जिस नारी का चित्रण किया है, वह स्वाभिमान से युक्त है। इनके काव्य रचनाओं में नायिका लोक मर्यादा के निर्वहन के लिए सदैव तत्पर दिखाई देती है। उसे इस बात का ध्यान है कि अपने सम्मान को बनाए रखने के लिए इसका निर्वाह करना आवश्यक है। इनके काव्य को

नारी सबसे ज्यादा किसी बात से डरती है तो वह है 'लाक्षन'। और इसी डर के कारण वह सामाजिक रुढ़ियों, कुप्रथाओं और पुरातन मान्यताओं को भी भोगती रहती है। अपनी कविताओं में एक जगह वह लोक मर्यादा के पालन के लिए कहती है, कि

''जहॉ पद–पद पर बाधा खड़ी, निराशा का पहिरे परिधान।
लांछना डरवाएगी वहॉ हाथ में लेकर कठिन कृपाण
चलेगी अपवादों की लूट, झुलस जावेगा कोमल गात
विकलता के पलने मे झूला बिताओंगे ऑखों में रात।''

स्त्री के विविध रुप–

सुभ्रदा कुमारी चौहान की कहानियों में स्त्री के विविध रुपों का चित्रण न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है बल्कि यह तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति उनके संघर्ष और उनकी उपलब्धियों को भी दर्शाता है। इस प्रकार सुभद्रा कुमारी चौहान जी की रचनाऍ स्त्री की शक्ति साहस और समर्पण की जीवंत मूर्ति के रुप में मिलते है। सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियों का अध्ययन हमें तत्कालीन समाज की स्त्रियों की स्थिति और उनकी समस्याओं को समझने में मदद करता है। उनके समकालिन स्त्री–कथाकारों की संख्या अधिक नही थी अपनी व्यापक कथा दृष्टि से वे एक लोकप्रिय नारी विमर्ष की अग्रणी कथाकार के रुप मे हिन्दी जगत ने सुप्रतिष्ठित है।

कठिन है मार्ग मुझको
मंजिलें वे पार करनी है।
उमंगों की तरंगे बढ पडे
शायद फिसल जाओं।

प्रेम और त्याग की मूर्ति–

सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं में प्रेम और त्याग की मूर्ति के रुप में भी स्त्री का चित्रण मिलता है। 'मॉ' जैसी कहानियों में स्त्री का रुप एक ऐसी महिला के रुप में उभरता है जो अपने परिवार और समाज के लिए अपने व्यक्तिगत इच्छाओं और सपनों का त्याग करती है। लेखिका अपने व्यक्तिगत जीवन में भी वह एक संघर्षशील महिला एवं त्यागमयी माता रही है उनकी पुत्री सुधा कुंमारी चौहान जी ने सुभद्रा जी की जीवनी 'मिला तेज से तेज' में जीवन के प्रत्येक पहलु पर प्रकाश डाला है। एक ममतामयी माता से लेकर एक सशक्त स्वतंत्रता सैनानी तक विभिन्न रुपों का वर्णन किया है।

बहुत दिनों तक हुई परीक्षा
अब रुखा व्यवहार न कर
अजी,बोल तो लिया करो तुम
चाहे मुझ पर प्यार न हो।

आधुनिक युग में सुभद्रा कुमारी चौहान जी एक मात्र महिला कवयित्री हैं, जिनके काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर विद्यमान है। देशभक्त एवं लेखनी की धनी कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने देशवासियों की सोयी हुई आत्मा को जगाया और उन्हें कर्तव्य मार्ग पर अग्रसित किया। सुभद्राजी देशभक्त पहले थी, बाद में कुछ और।

शिक्षित और जागरुक स्त्री–

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियों में शिक्षित और जागरुक स्त्रियों का भी वर्णन है। उनकी कहानी विघा का आदान–प्रदान में एक शिक्षित महिला का चित्रण है जो शिक्षा के महत्व को समझती है। तथा इसके प्रसार के लिए प्रयासरत रहती है। अपनी लेखनी में अशिक्षा के कुप्रभाव को बडी मार्मिक तरीके से वर्णन किया है। राही कहानी के माध्यम से अशिक्षित स्त्री की स्थिति कों बहुत ही निष्पक्ष रुप से वर्णित किया है। उनकी कहानी में स्त्री सरोकार की बात सदा दिखती है।

स्वतंत्राता नहीं स्वराज चाहती है,
परतंत्र नही स्वानुशासन चाहती है।
रुढियों बंधनों से मुक्त होकर,
वह स्वनियंत्रण चाहती है।

स्वंतत्रता संग्राम में भागीदारी–

सुभद्रा कुमारी चौहान जी ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली स्त्रियों के साहस और बलिदान को विशेष रुप से उकेरा है उनकी रचना 'झॉसी की रानी' में रानी लक्ष्मीबाई की वीरतापूर्वक चित्रण इसका

प्रमुख उदहरण है। इस कविता में स्त्री का रुप एक योद्धा के रुप में सामने आता है। उनकी कविता उत्कट राष्ट्र–भावना से आकण्ठ सराबोर है, उन्होंने तत्युगीन भारत में चल रही स्वाधीनता–संग्राम की गतिविधियों को मार्मिक और ओजस्वी ढंग से अभिव्यक्ति दी है। उनकी कविता में अनुभूति की सच्चाई झलकती है। उनकी कविता की भाषा मे ओज एवं प्रसाद गुण की प्रधानता रही है। सुभद्राजी ने राष्ट्र निर्माण मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। राष्ट्र प्रेम और राष्ट्र भक्ति उनकी कविता का एक मात्र स्वर है।

डॉ. दयानंद शर्मा ने सुभद्रा कुमारी चौहान जी के संदर्भ में लिखा है वास्तव में सुभद्रा कुमारी चौहान अपने युग की गतिविधि के अनुसार सुभद्रा जी का आकुल हृदय देश की परतंत्रता के कारण उसकी दुर्दशा पर क्रंदन कर उठा। उनकी राष्ट्र भावना 'विजयादशमी' नामक कविता में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है–

''रामचंद्र की विजय–कथा का भेद बता आदर्श सखी
पराधीनता से छूटे यह प्यारा भारतवर्ष सखी।''

साहित्य में नारीवादी आख्यान–

किसी भी मनुष्य का व्यक्तित्व एवं उसका बौद्धिक विकास उसके परिवेश, देश काल, परिस्थिति के अनुसार होता है। सुभद्रा कुमारी चौहान एक साथ ही प्रगतिशील नारी गृहिणी, मॉ, कवि, लेखिका, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी जननेत्री व राजनेता थी। वे जमीन से जुड़ी हुई थी। अतः उनके अनुभवों का संसार बहुत विशाल था उन दिनों स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था । भारतीय समाज में जातिगत, वर्गगत, धर्मगत, लिंगगत, रुढ़ियों अपने चरम थी पर्दा प्रथा, बाल विवाह, छुआछूत, दहेज प्रथा, बहुविवाह, नारी उत्पीड़न सती हो जाने जैसी कुप्रथायें उनके समय समाज में स्त्रियों की प्रगति की बाधाा बनी हुई थी। अपनी रचनाओं में सुभद्रा जी ने इस कुप्रथाओं के विरुद्ध भरपूर आवाज उठाई। यही कारण है कि उनकी कहानियॉ में नाटकीय या बनावटी नहीं है बल्कि वह हृदयस्पर्शी वास्तविकता के निकट जन मन की अभिव्यक्ति बना पड़ा है।

उनकी कहानियॉ स्वतंत्रता आंदोलन के दौर की नारी की मानसिक पहल प्रस्तुत करती है। आजादी के पूर्व की भारतीय नारी की दशा और दिशा के आकलन में हमारी बड़ी मदद करती है। उनकी नारी केवल राजनीतिक आजादी नहीं बल्कि सभी प्रकार की गुलामी से मुक्ति चाहती है। वह स्वतंत्रता नहीं स्वराज्य चाहती है। परतंत्रता नही स्वानुशासन चाहती है। सुभद्रा जी की सभी कहानियों को हम इस तरह से सत्याग्रही कहानियॉ कह सकते है। इनकी स्त्रियॉ सत्याग्रही स्त्रियॉ है। दलित चेतना और स्त्रीवादी विमर्श को उठाने वाली सुभद्रा कुमारी चौहान हिन्दी की पहली कहानीकार है।

सशक्त स्त्री–

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियों में स्त्री का सषक्त रुप उभरकर आता है उनकी कहानी 'झॉसी की रानी' में रानी लक्ष्मीबाई का चरित्र नारी शक्ति और साहस का प्रतीक है रानी लक्ष्मीबाई न केवल अपने राज्य के लिए बल्कि पूरे देश के लिए लड़ती थी। इनकी वीरता और साहस आज भी प्रेरणा के स्रोत है। अंग्रेजी समाज्यवाद के विरोध में जन–जन की कंठहार थी। योद्धा इतिहास रचता है और कवि उनके यशोगान द्वारा भविष्य को इतिहास से प्रेरित करता है।

सामाजिक प्रतिबंधों से जूझती स्त्री–

सुभद्रा कुमारी चौहान में समाज में व्याप्त रुढ़ियों और परंपराओं के खिलाफ स्त्री के संघर्ष को भी प्रस्तुत किया है। जो समाज के अत्याचारों और उपेक्षा का शिकार होती है रचनाओं में नारी के इस रुप को प्रमुखता से प्रकट किया है। सुभद्रा जी ने अपनी रचनाओं में जिस नारी का चित्रण किया है, वह स्वाभिमानी एवं आत्मविश्वास से युक्त है। इनके काव्य रचनाओं में नायिका लोक मर्यादा के निर्वहन के लिए सदैव तत्पर रहते हुए भी एक पथ प्रदर्शक नायक के रुप में दिखाई देती है। उसे इस बात का ध्यान है कि अपने सम्मान को बनाए रखने के लिए इसका निर्वाह करना आवश्यक है।

खूब लड़ी मर्दानी में नारी अस्मिता–

सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'झॉसी की रानी' महाजीवन की गाथा है। इस कविता में उन्होंने एक विराट जीवन का महाकाव्य ही लिख दिया है। भारतीय इतिहास में यह शौर्यगीत सदा के लिए स्वर्णिम अक्षरों मे अंकित हो गया। यह गीत स्वयं में गीत से अधिक वीरगाथा की एक सच्ची कहानी है। जिसमें कवयित्री ने रानी लक्ष्मीबाई के जीवन के सारे घटनाक्रम को एक पद्यान्मक कहानी के रुप में इस

सजीवता से प्रस्तुत किया है, कि पाठक या श्रोता, वीर जो रहा हो भाव विभोर हो उठता है। यह रचना उनकी पहचान बन गई।

चमक उठी सन् सत्तावन में,
वह तलवार पुरानी थी,
बुदेंले हरबोलों के मुॅह हमने
सुनी कहानी थी
खूब बड़ी मर्दानी वह तो,
झाॅसी वाली रानी थी।

निष्कर्ष–

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने साहित्य में स्वतंत्रता संग्राम को पूरी शिद्दत से जीयाा और भारतीय जनमानस को इसके लिए तैयार करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वही उन्होंने अपनी काव्य में नारी की जाग्रत मनोदशा का जीवंत चित्रण किया है। सीधे–सीधे चित्र सुभद्रा कुमारी चौहान का तीसरा व अंतिम कथा संग्रह है इसमें कुल 14 कहानियॉ है। रुपा, कैलाशी नानी, विआन्हा, कल्याणी, दो साथी, प्रोफेसर मिश्रा, दुराचारी व मंगला 8 कहानियों की कथा वस्तु नारी प्रधान पारिवारिक, सामाजिक, समस्याओं पर आधारित है। सुभद्रा जी की समकालिन स्त्री–कथाकारों की संख्या अधिक नही थी अपनी व्यापक कथा दृष्टि से वे एक लोकप्रिय नारी विमर्ष की ध्वज वाहिका कथाकार के रुप मे हिन्दी जगत ने सुप्रतिष्ठित है। समय के साथ आते ही सुभद्रा जी की कहानियॉ के परिवेश का वर्णन पुराना पड़ गया हो किन्तु आज भी देश भक्ति की भावना और आज की स्त्रियों के मर्यादा पूर्ण स्वंतत्रय की प्रेरणादायी इन कहानियों की प्रासंगिकता यथावत बनी हुई है। सुभद्रा जी की कहानियॉ समाज के तानों बानों के बीच से नारी अस्मिता की पहचान उजागर करती हुई हृदयस्पर्शी कथानकों को एक सकारात्मक हल की ओर प्रेरित करती है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. मुकुल तथा अन्य कविताऍ, सुभद्रा कुमारी चौहान, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण
2. 1996, पृष्ठ – 4
3. मित्र अनुराध, रामेश्वरनाथ (जुलाई 2004), राष्ट्रभाषा भारती, कोलकाता निर्मल
4. प्रकाशन पृष्ठ – 20
5. झाॅसी की रानी, सुभद्रा कुमारी चौहान, सनगे पब्लिशिंग हाउस, 2020
6. लेख राष्ट्रीय जागरण और सुभद्रा कुमारी चौहान, रामपत पृष्ठ – 61
7. सुभद्रा कुमारी चौहान की संपूर्ण कहानियॉ – डॉ. मधु शर्मा (परिचय से)
8. भारतीय साहित्य का राष्ट्रीय स्तर – जगदीश तोमर पृष्ठ सं. 61
9. 7 लेख – राष्ट्रीय जागरण और सुभद्रा कुमारी चौहान – रामपत यादव पृष्ठ सं. 61
10. सुधा कुंमारी चौहान 'मिला तेज से तेज' 2004 हंस प्रकाशन इलाहाबाद।

ई.मेल– **rajnip512@gmail.com**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 27-30
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत के हिंदी भाषी प्रदेशों के समाज पर भाषा, संस्कृति और पुस्तकालयों का प्रभाव : एक मूल्यांकन

डॉ. देवेंद्र कुमार शर्मा
उप पुस्तकालयाध्यक्ष,
केन्द्रीय विश्वविधालय हिमाचल प्रदेश , धर्मशाला, जिला-कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

सार:-
यह पेपर भारत के हिंदी भाषी प्रदेशों के समाज पर भाषा, संस्कृति और पुस्तकालयों का प्रभाव का मूल्यांकन करता है। भाषा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और पहचान निर्माण, सामाजिक मानदंडों और मूल्यों को आकार देने के लिए एक माध्यम के रूप में कार्य करती है तथा संस्कृति, बदले में, अपनी परंपराओं, साहित्य और रीति-रिवाजों के माध्यम से भाषा को समृद्ध करती है। पुस्तकालय भाषाई और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और प्रसार, ज्ञान के आदान-प्रदान और सामुदायिक जुड़ाव को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक अंतःविषय (interdisciplinary) के माध्यम से, यह पेपर भाषा, संस्कृति और पुस्तकालयों के अंतर्संबंध और हिंदी भाषी प्रदेश के सामाजिक ताने-बाने पर उनके सामूहिक प्रभाव की जांच करता है।

कीवर्ड: भाषा, संस्कृति, पुस्तकालय, हिंदी भाषी प्रदेश, भारत, समाज

1.प्रस्तावना

हिंदी भाषी प्रदेश, जो क्षेत्रीय और सांस्कृतिक धरोहर के प्रतिष्ठान पर आधारित है, भारत का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस क्षेत्र की समृद्ध भाषा, विविध सांस्कृतिक परंपराओं, और समृद्ध पुस्तकालय संस्थाएं समाज की सांस्कृतिक और विचारशील विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हिंदी भाषी प्रदेश में भाषा, संस्कृति और पुस्तकालयों के त्रिसंघी तार का मूल्यांकन गहराई से अध्ययन करना इस लेख का उद्देश्य है।

हिंदी भाषी प्रदेश की भाषा हिंदी एक ऐसा माध्यम है जो समाज की पहचान और संगठन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। हिंदी भाषा का प्रयोग न केवल संवाद को सहज बनाता है, बल्कि व्यक्तिगत और सामाजिक पहचान की भी नींव रखता है। संवाद के माध्यम से विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच समर्थन, समाधान और समरसता बढ़ती है।

साथ ही, संस्कृति भी हिंदी भाषी प्रदेश के समाज के आधारशिला के रूप में उत्तरदायी भूमिका निभाती है। संस्कृति व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को संरचित करने के लिए एक प्रारंभिक मार्गदर्शक रूप में कार्य करती है, जो भाषा के माध्यम से अपनी अद्वितीयता को प्रकट करती है।

2 भाषा और पहचान:

हिंदी भाषी प्रदेश में भाषा केवल एक साधन के रूप में ही नहीं कार्य करती है, बल्कि यह उसकी सामूहिक पहचान और व्यक्तित्व का भी एक महत्वपूर्ण अंग है। हिंदी भाषा उस क्षेत्र की आत्मिकता को प्रकट करती है और वहाँ के लोगों के बीच एक सामाजिक और सांस्कृतिक एकता का संरक्षण करती है। यहाँ के लोग अपनी भाषा के माध्यम से अपने संस्कृति, रीति-रिवाज़, और मूल्यों को व्यक्त करते हैं। भाषा न केवल भाषाई एकीकरण का एक माध्यम होती है, बल्कि यह उन विभिन्न भाषाओं की समृद्धता का प्रमुख स्रोत भी है जो इस क्षेत्र में उपयोग में आती हैं।

विशेषकर, हिंदी भाषी प्रदेश में विभिन्न भाषाएँ और लोकगीतों का समावेश होता है, जो उसकी सांस्कृतिक विविधता को और भी विशालता प्रदान करता है। इन विभिन्न भाषाओं के माध्यम से समाज की विभिन्न वर्गों की पहचान और सामूहिकता को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार, भाषा हमें हमारी सांस्कृतिक विरासत के साथ जोड़ती है और हमें हमारे समूह के एक अभिव्यक्ति के रूप में पहचानती है।

3 संस्कृति और भाषा:

संस्कृति और भाषा का गहरा संबंध होता है जो समाज के सभी पहलुओं में अविरल रूप से प्रकट होता है। हिंदी भाषी प्रदेश में, सांस्कृतिक माहौल का एक विविध और प्रफुल्लित अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होता है, जो विभिन्न साहित्यिक रूपों, परम्परागत कथाओं, गीत, नृत्य, और पूजा-अर्चना के माध्यम से व्यक्त होता है। ये सभी प्राथमिक रूप से हिंदी भाषा के संजीवन में एक प्रमुख योगदान करते हैं, जिससे भाषा की सांस्कृतिक सामर्थ्य और विकास में आगे की प्रोत्साहना मिलती है।

साथ ही, सांस्कृतिक प्रथाओं और परंपराओं का प्रभाव भाषाई नियमों, शब्दावली, और वाक्य प्रयोग पर होता है, जो समाज के नैतिक मूल्यों, स्वीकृत विचारधारा, और विश्वासों का परिचय देता है। इस प्रकार, भाषा और संस्कृति का संयोग समाज के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन को गहराई से प्रभावित करता है और उसे विशेषता और पहचान प्रदान करता है।

इस प्रकार, हिंदी भाषी प्रदेश की संस्कृति और भाषा के मजबूत संबंध समृद्धि और विकास के मार्ग को प्रशस्त करते हैं और उसे एक समृद्ध और समर्पित समाज के रूप में विकसित करते हैं।

4. पुस्तकालयों एक सांस्कृतिक केंद्र के रूप में:

पुस्तकालयों का महत्व यहाँ तक है कि वे सामाजिक न्याय, समानता, और समृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान करते हैं। वे अधिकांश लोगों के लिए उपलब्ध होते हैं, अर्थात् स्वाधीनता और उच्चतम शिक्षा का समर्थन करते हैं। पुस्तकालयों में स्वतंत्र सोच, संवेदनशीलता, और स्वाभिमान की संरक्षा होती है।

इसके अतिरिक्त, पुस्तकालय विभिन्न विचारों, धारणाओं, और विचारधाराओं को प्रस्तुत करने का माध्यम भी बनते हैं। वे सामाजिक अंधविश्वास, जातिवाद, और भेदभाव के खिलाफ लड़ाई में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसे कई पुस्तकालय हैं जो विभिन्न विचारधाराओं के समर्थन में काम करते हैं और सामाजिक परिवर्तन के प्रोत्साहक होते हैं।

आखिरकार, पुस्तकालय एक ऐसा स्थान है जहाँ लोग अपने अंतर्निहित प्रतिबद्धता, प्रेरणा, और सपनों को साझा करते हैं। वे एक ऐसी समुदाय की आत्मा और बुद्धि का आधार बनते हैं जो एकजुट होकर सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक समृद्धि के लिए काम करता है। इस प्रकार, पुस्तकालय समाज के लिए एक महत्वपूर्ण संसाधन होते हैं जो ज्ञान, समृद्धि, और सामूहिकता को प्रोत्साहित करते हैं।

5. समाज पर प्रभाव:

प्रभाव के संदर्भ में, हिंदी भाषी प्रदेश के समाज पर भाषा, सांस्कृतिक और पुस्तकालयों के प्रभाव का अध्ययन करते समय विस्तृत और विशेषज्ञ साक्षात्कार और स्थानीय अनुसंधान का समर्थन उपयुक्त होगा।

भाषा का प्रभाव:

भाषा की अद्भुतता को समझने के लिए, हिंदी भाषी प्रदेश में भाषा का इतिहास, भाषा की सामाजिक और सांस्कृतिक भूमिका, भाषा के विभिन्न रूप और उनका प्रभाव, और भाषा के प्रयोग की विशेषताओं का अध्ययन किया जा सकता है।

सांस्कृतिक प्रभाव:

सांस्कृतिक प्रभाव को समझने के लिए, भाषा के माध्यम से सांस्कृतिक उत्पादन, सांस्कृतिक व्यक्तित्व, समुदाय की सांस्कृतिक पहचान, और सांस्कृतिक आधार के तत्वों का अध्ययन किया जा सकता है।

पुस्तकालयों का प्रभाव:

पुस्तकालयों के महत्व को समझने के लिए, उनके सामग्री, सेवाएं, और सामुदायिक प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है। कैसे पुस्तकालय समुदाय के लिए शिक्षा, सांस्कृतिक विकास, और सामाजिक समृद्धि में योगदान करते हैं, इसका अध्ययन किया जा सकता है।

इसके अलावा, समाज के विभिन्न पहलुओं के साथ जोड़े जा सकते हैं, जैसे कि विशेषज्ञों और स्थानीय समुदाय के सदस्यों के भावुक संवाद, वास्तविक संदर्भों के उदाहरण, और अनुभवों का वर्णन। यह सभी विषय विशेषज्ञ संग्रह करके समाज के प्रभाव को समझने में मदद करेंगे।

6. चुनौतियाँ और अवसर:

चुनौतियों और अवसरों के संदर्भ में, हिंदी भाषी प्रदेश का समाज उन्नति और समृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा है, लेकिन कुछ मुख्य चुनौतियाँ उसके सामने हैं। पहली चुनौती है भाषाई समानीकरण की। तकनीकी प्रगति के साथ, विभिन्न भाषाएँ और उनके विशेषताएँ लुप्त हो रही हैं, जिससे भाषाओं के विविधता में कमी आ रही है। इससे न केवल भाषा की अर्थात्मक धनिकता कम हो रही है, बल्कि समाज की सांस्कृतिक विविधता पर भी असर पड़ रहा है। दूसरी चुनौती है सांस्कृतिक अनुकूलन की। बड़े शहरों में आधुनिकीकरण के प्रभाव से, पारंपरिक संस्कृति की संरक्षण और प्रोत्साहन की आवश्यकता है। तीसरी चुनौती है पुस्तकालयों की संरचना और प्रबंधन में विकास की। अनेक क्षेत्रों में, पुस्तकालयों की संरचना और संचालन में कमी होती है, जिससे वहाँ की सामाजिक और शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने में मुश्किलें आती हैं।

इन चुनौतियों के साथ-साथ, अनेक अवसर भी हैं जो समाज को विकसित करने में मदद कर सकते हैं। पहला अवसर है तकनीकी उन्नति का सही उपयोग। डिजिटल प्रौद्योगिकियों का सही तरीके से उपयोग करके, विभिन्न भाषाओं और सांस्कृतिक समृद्धि को प्रोत्साहित किया जा सकता है। दूसरा अवसर है सामाजिक संगठन का बढ़ता प्रभाव। समुदाय के सदस्यों के साथ सहयोग करके, सामाजिक संगठनों का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है जो सामाजिक, सांस्कृतिक, और शैक्षिक संघर्षों को समझते हैं और उनका समाधान ढूंढते हैं।

इस रूपरेखा में, हिंदी भाषी प्रदेश के सामाजिक, सांस्कृतिक, और पुस्तकालयों के विकास में चुनौतियों के साथ-साथ अनेक अवसर भी हैं, जो इस क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

7. निष्कर्ष:

हिंदी भाषी प्रदेश के समाज में भाषा, सांस्कृतिक, और पुस्तकालयों के संबंध का महत्व बहुत अधिक है, जिससे उसकी विकास और समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह संबंध समाज के संगठन, विकास, और समृद्धि के लिए आवश्यक है।

भाषा के माध्यम से समाज में संवाद को समझा जा सकता है, जो समृद्धि और समरसता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिंदी भाषी प्रदेश में, भाषा का अद्वितीय स्थान है जो सामाजिक सम्पर्क, व्यक्तित्व और रिश्तों को मजबूत करता है। साथ ही, भाषा के माध्यम से सामूहिक और सांस्कृतिक अभिवृद्धि को भी प्रोत्साहित किया जा सकता है।

सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और संवर्धन करने के लिए, समाज को अपनी विशेषता को समझना और समर्थ करना चाहिए। सांस्कृतिक गतिविधियों, परंपराओं, और उत्सवों का समर्थन करके, समाज अपनी विविधता को बनाए रख सकता है और अपनी विरासत को समृद्ध कर सकता है।

पुस्तकालयों का महत्व समझने के लिए, हमें उनके सामग्री, सेवाएं, और समुदाय के प्रभाव का अध्ययन करना चाहिए। पुस्तकालयों में उपलब्ध ज्ञान और स्रोत से, समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों को शिक्षा, सांस्कृतिक विकास, और सामाजिक समृद्धि का साधन किया जा सकता है।

इस प्रकार, भाषा, सांस्कृतिक, और पुस्तकालय संबंध का समझना और महत्व समझना हमें समृद्धि और सामाजिक अनुकूलता की ओर अग्रसर करता है। यह संबंध हमारे समाज की आत्मशक्ति और विकास में महत्वपूर्ण योगदान करता है, जो हमें अपने विकास के मार्ग पर अग्रसर करता है।

सन्दर्भ:

1. Kachru, Braj B. "The ecology of language in multilingual India." Language problems and language planning 8.1 (1984): 1-20.
2. Rahman, Tariq. "Language and politics in India." Annual Review of Applied Linguistics 19 (1999): 288-303.
3. Saraswathi, S. "Cultural pluralism and identity crisis in Hindi literature." International Journal of Social Science and Humanities Research 2.4 (2014): 146-151.
4. Mukherjee, Souvik. "The role of libraries in promoting cultural heritage: a case study of India." IFLA Journal 42.2 (2016): 123-133.
5. Singh, Neelam. "Public libraries in India: A study of their role, services, and challenges." Library Philosophy and Practice (2013).
6. Purohit, Dushyant, and Navneet Sharma. "Digital libraries: a conceptual overview and its role in libraries." DESIDOC Journal of Library & Information Technology 31.6 (2011): 461-465.
7. UNESCO. "UNESCO Public Library Manifesto." (1994). [Available online: http://www.unesco.org/webworld/public_libraries/publications/manifestos/lib_manifest_en.shtml]

sharmadk73@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 31-36
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त वृद्ध महिला की समस्याएं

पुष्पा सी. वी.
शोध छात्रा,
प्रो. डॉ. वि. के. सुब्रमण्यन
शोध निर्देशक,
कालिकट विश्व विद्यालय, केरल।

मनुष्य का जीवन कई अवस्थाओं से होकर गुज़रता है जैसे बचपन, कौशेय, यौवन और वार्धक्य, चाहे यह अवस्था किसी पुरुष का हो, स्त्री का हो, ट्रांसजेंडर का हो या अन्य संवर्ग का हो। वास्तव में ये अवस्थाएं मनुष्य की आयु के हिसाब से उसे परिचित कराने के लिए इस्तेमाल करते संकेत मात्र है। लेकिन इन्हें सिर्फ अवस्थाओं के रूप में ही देखने का पाठ अब तक हमें पढ़ाया नहीं गया है। उदाहरण के लिए वृद्धावस्था, हमारी दृष्टी में थके हारे शरीरवाले व्यक्ति का बिंब प्रदान करती है। वास्तव में यह बिंब, समाज के मन में रूपक बनकर रहता है जो वृद्ध जीवन की सबसे बड़ी समस्या का कारण भी है। यह रूपक वृद्धों के आत्मविश्वास को कमज़ोर कर देती है। यह एक अहं मुद्दा है। इस मुद्दे पर बहस किया जाना चाहिए जो हमारे समय की मांग भी है। इस मांग को समकालीन हिंदी साहित्य ने अपना सृजनात्मक दायित्व के रूप में लिया है और साहित्य में इसका सही संबोधन हो रहा है।

वृद्ध-महिला या वृद्धा माने वह महिला जो वृद्धावस्था की तथाकथित अवस्था पर पहूंची है। सामान्यतः उम्र को वर्ष के हिसाब से गिना जाता है। एक स्त्री अपने जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक कई पड़ावों से होकर गुज़रती हैं - पहले बालिका, फिर कुमारी, आगे युवती, इसके अनंतर गृहणी, बाद में मां और अंत में दादी या नानी। ये पड़ाव जीवन में स्वाभाविक रूप से आनेवाला समय हैं, जैसै हम किसी ओर यात्रा करते हैं, यात्रा की शुरुआत और अंत दोनों होते हैं। लेकिन इनमें वृद्धावस्था का पड़ाव एक स्त्री के लिए अब काफी कठिन बन गया है। पहले, इस दौर पर पहूंचती स्त्री को उसके अनुभव के मद्देनज़र पक्वमति या विदुषी कहा जाता था। लेकिन अब यह स्थिति बरकरार नहीं है।

भारतीय पारिवारिक व्यवस्था की दृढ़ता के लिए वृद्ध महिला की भूमिका ज़रूर है। परिवार के सदस्यों के बीच के रिश्तों में भावात्मक एकता के मूल्य तत्व पैदा करने के लिए वह एक कड़ी के रूप में काम कर रही थी। अपने पोते-पोतियों, घर और परिवार को व्यवस्थित करने के लिए भी वह बीड़ा उठाती थी। परिवार में उनका सानिध्य रोशनी जैसा था। वृद्ध माता के उपदेश और सुझाव का सभी आदर करते थे और उन्हें स्वीकार भी करते थे। ऐसा करना भारत की पारिवारिक व्यवस्था की मज़बूत अस्तित्व के लिए आवश्यक भी था और यह एक संस्कृति बनकर रही थी और यह संस्कृति पारिवारिक जीवन के इतिहास में प्रवाहित भी रही थीं।

आज वृद्ध महिलाएं अपने जीवन में अकेलापन के मुद्दे का सामना कर रहे हैं। यह वृद्ध लोगों के जीवन में बड़ा अभिशाप बन गया भी है। उनकी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के लिए अकेलापन बड़ा कारण भी है। अवसाद, चिंता, नींद की समस्या आदि इस कारण से उनमें आते हैं, इसके अलावा केंसर और हृदय रोग जैसी बीमारियों का खतरा भी पैदा होता है। अगर वृद्धा प्रवासी है तो उसकी हालत कहने की नहीं है। क्यों कि वे अपने बन्धुजनों से दूर रहती हैं और इसके अलावा आर्थिक समस्याएं भी उन्हें सताती है।

वृद्ध महिलाओं की तरफ सरकार की ओर से और प्रशासन व्यवस्था की ओर से दुर्बल प्रतिवचन है। अगर कोई प्रतिवचन है तो वह उन तक पहूंचता भी नहीं है। बाज़ारवाद, उपभोगवाद आदि संस्कृति के आगमन और वर्चस्व ने संतानों और बन्धुजनों की ओर से ध्यान कम हो गया है, क्यों कि उपभोगवाद उन्हें उपभोगी चीज़ों को जुटाने और इस्तेमाल करने के लिए आकर्षित कर रहे हैं। इससे वृद्ध महिलाओं का जीवन अभाव से भरा और दयनीय बन गया है।

समकालीन हिन्दी साहित्यकार विशेषकर कवियों ने वृद्ध महिलाओं की बदतर स्थिति को अपनी रचनाओं के द्वारा संबोधित करने केलिए प्रयास किया है, मुख्य रूप से भूमण्डलीकृत दुनिया और उसमें रहती उपभोगी युवा पीढ़ी के अपसंस्कृत चरित्र के मद्देनज़र। कवियों ने यह पहचान लिया है कि युवा पीढ़ी बहुत संकुचित मानसिकता का निर्दयी मालिक है और बुद्धिवादी भी है। इसके कारण इनके चरित्र में स्वार्थता, पक्षपातिता, असहिष्णुता आदि उपनिवेशित हैं। इसलिए वृद्ध जन के लिए इस पीढ़ी की ओर से कोई उम्मीद नहीं किया जा सकता है। इस पीढ़ी से अब प्यार और आदर के स्थान पर नफ़रत, संरक्षण के स्थान पर उपेक्षा आदि मिल रही है। आचार्य ओशो का यह कथन, वृद्ध महिलाओं की बुरी हालत के मद्देनज़र संदर्भोचित है - 'नफ़रत का कोई अस्तित्व नहीं होता, यह केवल प्रेम की गौरहाजरी का परिणाम है'। हमारे देश में उपभोगवाद के आगमन के बाद प्यार और आदर करने की संस्कृति से लोग मुंह मोड़ रहे हैं।

समकालीन कवयित्रि रश्मि मल्होत्रा की 'उम्र कट गई' शीर्षक कविता वृदध माँ के जीवन की दुर्दशा की अभिव्यक्ति देती हैः

" वह मां बनी ममता का आंचल पकड़
हँसते हँसते जननी की पीड़ा झेलती
जननी से धाय बनी। उम्र कट गई।
पालन पोषण कर / सजाया संवारा नन्हें अंकुरों को
ममता - स्नेह दे सींचा लहराता पौधा बनाया / उम्र कट गई। " (1)

'उम्र कट गयी' वाली अभिव्यक्ति वृद्ध महिला के संदर्भ में एक शक्तिशाली रूपक है जिसमें माता के अपने बच्चों के लिए जीवन बिताए जाने का समय का संकेत मिलता है। इस समय तक मां ने अपनी संतानों को अपने पैरों पर खड़ा कर देने केलिए काम किया था। अब बच्चे यह कहने के लिए कामयाब बन गये हैं कि वृद्ध मां के संरक्षण केलिए उन के पास समय नहीं है। इस कथन ने वृद्ध मां को उदासी, निरालंबी और बेबसी बना दिया है। इसी प्रकार समकालीन कवि 'विनय विश्वास' की 'मॉ' शीर्षक कविता भी 'समय नहीं है' वाले बच्चों के कथन को एक अलग मायने में प्रस्तुत किया हैः

" मां आज तू उदास है
पर तेरी उदासी देखने का समय किसके पास है
बूढी हड्डियों के लिए / तो भले ही पिसती रहे चूल्हे चक्की में
मैं तो व्यस्त हूं / सिर्फ अपनी तर्की में " (2)

व्यस्त है, समय नहीं है आदि पदबन्ध, बाज़ारवादी और उपभोगवादी के लिए इस्तेमाल करने को मिले शब्द हैं जो अपने दायित्व से एक दम फिसल जाने का उपाय प्रदान करते हैं। संतानों के लिए सबसे बड़ी चिंता अपनी नौकरी को लेकर है और जीवन में तर्की को लक्ष्य करके है। इनके नस-नस में अपनी तर्की के लिए प्रतियोगिता और आरामदायक जीवन के लिए उपभोगवाद राज कर रहा है। संतान यह भूल जाती है कि मां के पूरे जीवन के त्याग ने ही संतानों को अपने पैरों पर खड़े होने के लिए लायक बनाया है। इस त्याग के लिए कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए। वास्तव में इस कविता की अंतरंग पहचान संतानों का मां के प्रति दायित्व की याद दिलाती है।

बहाना या मुखौटा वाला व्यवहार नई पीढ़ी के चरित्र की विशेषता है जो उपभोगवाद की देन है। वास्तव में बहाना या मुखौटा बच्चों को अपने दायित्व से पलायन करने के लिए सहायक साधन है। पलायन का चरित्र नव पूंजीवादी लाभ-केन्द्रित सोच के कारण आया है। अपनी ही भलाई और तर्की की ओर उन्मुख बच्चों के लिए वृद्ध माँ सिर्फ हड्डियों पर निर्मित एक प्राणी मात्र है और चूल्हे और चक्की में पिसती बुजुर्ग स्त्री है।

नव पूंजीवाद नई पीढ़ी के जीवन में अब बाज़ारवाद का अश्वमेध चला रहा है। इसने पारिवारिक संबन्धों में दरार पैदा किया है। इसके कारण वृद्ध मां के प्रति बच्चों की संवेदना में शून्यता फैल गयी है। कवयित्रि अनामिका ने इस मुद्दे को अपनी कविता के द्वारा प्रकट किया है। 'वृद्धाएँ धरती का नमक' शीर्षक कविता में वृद्ध महिलाओं के मुश्किल के समय को उतारती हैः

" वृद्धाएँ धरती का नमक है .... सजा धजा रहता है घर का कमरा
बच्चे ज्यादा अच्छा पलते हैं / उनकी नन्हीं मुन्नी उल्टियां संभालती
जागती है वे रात भर / उनके ही संग -साथ से भाषा में बच्चों की
आ जाती है एक अजब कौंध" (3)

आज की पीढ़ी यह नहीं जानती है कि दादी या नानी, परिवार के लिए वरदान हैं। उनकी अनुपस्थिति घर को जीवन-सत्व से रहित मकान बना देती है। उनकी उपस्थिति के महत्व को यह कविता स्पष्ट करती है। इसके लिए कविता में 'नमक' के रूपक का इस्तेमाल किया गया है। जैसे 'नमक' की अनुपस्थिति भोजन को बेस्वाद बन देगी वैसे वृद्ध माता के बिना संतानों का जीवन मधुर नहीं बनेगा। घर को, घर बना देने में वृद्ध मां की भूमिका वास्तव में एक आशीवाद है। वे प्यार के साथ घर-परिवार को संभालती हैं जिससे घर के सभी सदस्य बच्चे, पोते सभी भला करना सोचते हैं और अपने उत्तरदायित्व के प्रति हमेशा होशियार एवं सतर्क रहते हैं।

हमारी परंपरागत धारणा यह है कि स्त्रीयां बचपन से लेकर बुढ़ापा तक हमेशा सुरक्षित रहती हैं। जैसे मनुस्मृति का कहना है - 'पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने, पुत्रो रक्षति वार्धक्ये'। लेकिन अब संतानों की ओर से वृद्ध माता की रक्षा नहीं हो रही है। वह अपने ही बच्चों के पास नौकरानी का काम करने के लिए मज़बूर है। वे अपनी वृद्ध मां को इसलिए अपने पास रखते हैं कि वह उनके बच्चों का देखभाल करें और घर का काम नौकरानी की तरह करें। ज़्यादातर भारतीय माता की हालत यही है। विदेश में अपने बच्चों के साथ रहती देशी वृद्ध मां की हालत ज़्यादातर बदतर है। कवयित्रि सुनीता जैन ने 'देसी माँ विदेस में' शीर्षक कविता में इस समस्या को लेकर बहस किया हैः

" पच्चीस बरस तक / उनके देस में / वह बनी रही पानी हो
जो आया उसने उलीचा, / फिर छोड गया वहीं का वहीं
न कोई पलटा , न पूछा -/ कैसी हो, लो बैठो इस छाया
काया का दो विश्राम तनिक सा
कल वह सूख गई पूरा / पानी बचा नहीं एक आँसू जितना । "(4)

वृद्ध महिलाओं की समस्याओं की ओर समकालीनपूर्व साहित्यकारों का ध्यान उतना नहीं गया है जितना समकालीन साहित्यकारों का गया है। इन्होंने अपनी रचनाओं में वृद्ध स्त्रियों के जीवन को बेबस कर देनेवाले मुद्दों को करीब से

आंकने का प्रयास किया है। उन्होंने आज के बच्चों के चिंतन में वृद्ध मां के प्रति आए परिवर्तनों का आकलन किया है। ग्रामीण परिवेश में पली बुजुर्ग मां को अपने बच्चों में आए परिवर्तन, सता रहे हैं। गांव में रहते समय मां, बच्चों के बाहर जाने के बाद वापस आने की इंतज़ार में बैठती थी। उलटे बच्चे शहर में रहकर मां की हालत का पता तक नहीं करते हैं। गांव में बच्चों के पालन-पोषण के लिए मां को अपना पूरा जीवन बिताना पड़ा। वे बच्चे अब बड़े हुए और अपनी आराम दायक जिन्दगी के लिए मां की उपस्थिति उन्हें बाधा बन रही है। बड़े हुए बच्चों की दृष्टी में मां अब अशिक्षित, गंवार और अज्ञानी है। कवि जयप्रकाश कर्दम इस समस्या को 'कलिया की मौत' शीर्षक कविता में प्रकट करते हैः

"साल भर से अब कभी बेटा नहीं आया था घर
न कभी चिट्ठी ही भेजी, न कभी ली कुछ खबर
पैसा भी उसने कोई भेजा नहीं साल में
सोचा कभी यह तक नहीं, जीती हो मां किस हाल में"(5)

आज रिश्तों की धरती हरी भरी नहीं है, वह बंजर होती जा रही है। इस बंजर धरती पर उपभोगवादी- व्यक्तिवादी और स्वार्थवादी बीज बोये जा रहे है और बिना प्यार के पानी से, खाद से वे तेजी से उग रहे हैं और बड़े बन रहे हैं। कर्तव्य निष्ठा, सेवाभाव, सम्मान आदि हृदयगत भाव जो पहले इस देश के परिवारों में समृद्धतः उपस्थित थे अब वे अप्रत्यक्ष होते जा रहे हैं। इस मुद्दे को कवि डॉ.षणमुखन ने 'बूढी मां बेचारी' शीर्षक कविता के ज़रिए उतारा हैः

" अब पोते भी पास नहीं आते / जिद नहीं करते कहानी सुनाने की
सब आंखें गड़ाए बैठते हैं / टी .वी के सामने
नेट कैफे में चैटिंग में / मशगूल रहते हैं
फिलहाल मैं यही सोचती रहती है
बेकार वक्त गुजारने से बेहतर
जल्दी गुजर जाना / सिवाय उसके क्या कर सकती है ? "(6)

आज धर-घर में टी.वी. आ गया है। इस का सबसे अधिक प्रभाव, घर के सदस्यों के बीच के आपस में संवाद में पड़ा है। अब घर के सदस्य नहीं बोल रहे हैं। सबसे अधिक टी. वी. बोल रहा है। इसके फलस्वरूप घर के सदस्य अब चुप रह गये हैं, माने उन्हें टी.वी. ने चुप कर दिया है। टी. वी के कारण घर के सदस्यों के बीच संबन्ध भी चुप हो गये याने संबन्धों की आवाज़ बंद हो गयी जबकि टी. वी की आवाज़ बुलंद हुई है।

समकालीन कवि संजीव बख्शी ने 'वह बुहार रही थी' शीर्षक कविता में वृद्ध मां की बीती दिनों की यादों को प्रस्तुत किया है।

" वह बुहार रही थी /अपने कष्टों को / एक-एक करके
कचरे की तरह /वह बुहार रही थी ।
जो उसके बेटे ने कहा था / आज सवेरे 'मर जा'
उसने याद कर लिया था
बेटे का बचपन बुहारते बुहारते।"(17)

अब मां के साथ संतानों का व्यवहार अनौचित्यपूर्ण और बेरहम रह गया है।

वृद्धावस्था, असल में मनुष्य के समूचे जीवन का सबसे प्रौढ़ समय है जो अगली पीढ़ी की, आगे की यात्रा तय करने के लिए भूमिका तैयार करनेवाला है। क्यों कि इस समय वृद्ध अपने जीवन भर के अनुभव के ज़रिए संतानों के वजूद को बना रहे हैं। लेकिन इस बात को समझने के लिए आज की पीढ़ी के बच्चे समर्थ नहीं हैं। बच्चों की न समझ को कवि बोधिसत्व ने 'नानी' शीर्षक अपनी कविता के ज़रिए रेखांकित किया है। उनके अनुसार वृद्ध अपने वार्धक्य

की अभिव्यक्ति लकवा से पीड़ित व्यक्ति की तरह करते है जो अन्य लोग स्पष्टतः समझ नहीं पा रहे हैं। कवि कहते हैं-

" हम उनसे नहीं पूछ पाये / उनके रोने की वजह
हालांकि नानी अपना दुःख / किसी से नहीं कह पाती थी
रोना ही उनकी भाषा थी / उसे समझना हमारे वस में
नहीं था... / और उनकी पीड़ा समझ पाना
किसी के लिए संभव नहीं था "(8)

वृद्ध मां को आज नई पीढ़ी के सामने गूंगा बनकर रहना पड़ रहा है। नानी के रोने का कारण बुढ़ापे की तकलीफ है जिसे बच्चे समझते नहीं है। इसलिए वे नानी के रोने का कारण नहीं पूछते हैं।

भारतीय पारिवार में प्यार नदी के समान बहता है। नदी हमेशा ऊपर से नीचे की ओर बहती है। अर्थात् माता-पिता से बच्चों को प्यार मिलता है, बच्चे उनकी अपनी संतानों को प्यार देते हैं। इस तरह नीचे की ओर बहते प्यार की विशेषता यह है कि वह पुनीत एवं कलंक रहित है। लेकिन बच्चों का प्यार उलटा है, नीचे से ऊपर की ओर बहती नदी के समान है। पहले, वृद्ध माता-पिता के प्रति प्यार कम से कम दायित्व के रूप में किया जाता था। लेकिन आज यह बोझ के रूप में बदल गया है। इस फर्क को दिखाती है - कवि नीलेश रघुवंशी की कविता, जिसका शीर्षक है 'फर्क'। इसमें 'मां बच्चों को खाना देने का और बच्चे माँ को खाना देने' का रूपक दिया है और दोनों के खिलाने में फर्क है जिसको दिखाया गया है। कविता की पंक्तियां यों हैं-

" अब जब माँ को ठीक से टिपता भी नहीं
तब भूखी होते हुए भी भूख न होने का उपक्रम करती
बार-बार पेट को पल्लू से ढकती
कभी भी चिल्ला कर चाय रोटी नहीं माँगती है माँ
कितना फर्क है माँ खाना दो और बेटा खाना दो में "(9)

माँ और बेटे दोनों के एक दूसरे को खिलाने को सुबह का स्नान और संध्या का स्नान वाले रूपक के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। सुबह का स्नान समूचे जीवन के लिए स्वास्थ्य-संरक्षण के मद्देनज़र किया जाता है। अर्थात् मां बच्चों की दीर्घायु के लिए खाना देती है जबकि संध्या के समय का स्नान अभी अभी गुजरे दिन की थकावट को दूर करने के लिए है, अर्थात बेटे के द्वारा मां को देनेवाला भोजन सिर्फ उसी दिन के लिए है। बच्चे वृद्ध मां की दीर्घायु कभी नहीं चाहते हैं।

माँ का बच्चों के प्रति प्यार यथार्थ एवं पवित्र है। लेकिन संतानों का प्यार बहाना मात्र है और मां के प्यार से बच्चे फायदा उठाते हैं। सुनीता जैन की कविता 'वसीयत' जिसमें एक बेटे को दिखाया है जो अपनी माँ से ज़्यादा प्रेम उसकी वसीयत से करता है। कविता की पंक्तियां इस संकट को उद्घाटित करती हैं -

" अपनी ही बिछुड़ी आँत की / दारूप याद टूटे नहीं
तोडे गये संबंधों के / लाक्ष गृह में / धूँ धूँ करती
मरने से पहले माँ क्या / बस एक वसीयत न थी "(10)

'माँ' शब्द में जो मानवीय संवेदना रहती है जो आज नहीं रह गयी है। आज वह निर्जीव है और शब्द कोश में काली स्याही में मुद्रित शब्द जैसा है। मां 'नदी के द्वीप' के समान नदी के बीच अकेली खड़ी हैं। मलयालम के लेखक 'प्रो. हाफिज मोहम्मद' इस मुद्दे को संबोधित करते हुए बताते है कि "भौतिक सुविधा आज बहुत मिलती है लेकिन वृद्ध-जन्म की मानसिक स्वास्थ्य की पूर्ति के लिए साधन परिवार से नहीं मिलते हैं।(11)।"

वास्तव में रिश्ते दिल से आना चाहिए। स्पर्श, सांत्वना भरा शब्द, मानसिक सहारा आदि हमारी वृद्ध माता चाहती हैं। महान नेता मार्टिन लूथर किंग जूनियर का कहना इस संदर्भ में प्रासंगिक है - 'दुनिया में सच्ची अज्ञानता और कर्तव्यनिष्ठा मूर्खता से अधिक खतरनाक है'।

संक्षेप में, वृद्ध स्त्रियों की समस्याएं आज काफी गंभीर दिख रही हैं। हम यह बताते हैं कि प्रेमिका के साथ किया गया पहला प्यार कभी नहीं भूलते लेकिन लोग अपनी माता का प्यार याद करते नहीं हैं।

सहायक ग्रन्थ

1. रश्मि मलहोत्रा, रश्मि मलहोत्रा का काव्य संग्रह, पृ. 30 राधा प्रकाशक, 2006.
2. विनय विश्वास, पत्थरों का क्या है, मां, पृ.16, राजकमल प्रकाशन, 2004.
3. अनामिका, कवि ने कहा, वृद्धाएं धरती का नमक, पृ.24, किताबघर प्रकाशन, 2008
4. सुनीता जैन, राग और आग, पृ. 79, अनन्य प्रकाशन, 2013
5. जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, कलिया की मौत, 1997
6. डां. षणमुखन, सपना देखना मना है, बूढ़ी मां बेचारी, 2010
7. संजीव बख्शी, वह बुहार रही थी, समकालीन भारतीय साहित्य, जन-फरवरी 2006, पृ.128
8. बोधिसत्व, नानी, खत्म नहीं होती बात, पृ.102, राजकमल प्रकाशन, 2010
9. नीलेष रघुवंशी, फर्क, अंतिम पंक्ति में, पृ.79, किताबघर प्रकाशन, 2008
10. सुनीता जैन, वसीयत, राग और आग, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली पृ.52, 2013
11. मातृभूमि दैनिक, 7 अकतूबर 2011, पृ.4

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 37-39
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Agricultural Productivity and its Regional Imbalances of Eastern Rajasthan

Naresh Kumar Meena
Phd Research Scholar,
Jayoti Vidyapeeth Women's University

Abstract
Agriculture remains the backbone of Eastern Rajasthan's economy, yet the region exhibits substantial spatial disparities in productivity due to variations in agro-climatic conditions, resource endowments, and infrastructural development. This study analyzes the patterns and determinants of agricultural productivity across major districts of Eastern Rajasthan, employing composite productivity indices and spatial comparison techniques. The findings reveal significant regional imbalances influenced by factors such as rainfall variability, irrigation intensity, soil fertility, adoption of high-yielding varieties, and access to agricultural markets and extension services. Districts with better irrigation infrastructure and diversified cropping patterns demonstrate higher productivity, whereas those dependent on rainfed agriculture continue to lag. The research underscores the need for region-specific policy interventions, including targeted investment in irrigation, sustainable soil-management practices, and improved institutional support, to reduce the existing disparities and enhance overall agricultural performance. By identifying the key drivers of imbalance, the study contributes to a deeper understanding of regional agricultural dynamics and offers evidence-based recommendations for balanced rural development in Eastern Rajasthan.

Keywords productivity Imbalances, Spatial Disparities, Eastern Rajasthan, agriculture Crop, yield variability, Agricultural development.

Introduction

Agriculture remains the backbone of Rajasthan's economy, supporting a major share of its population and contributing significantly to rural livelihoods. Despite its predominantly arid and semi-arid conditions, the state exhibits considerable diversity in agricultural performance across regions. **Eastern Rajasthan**, comprising districts such as Bharatpur, Dholpur, Karauli, Sawai Madhopur, Alwar, Jaipur, Dausa, Tonk and others, is relatively better endowed with moisture availability, alluvial soils, and irrigation facilities compared to western Rajasthan. Yet, even within this sub-region, agricultural productivity shows notable spatial disparities.

These **regional imbalances in agricultural productivity** arise from variations in natural resource endowments, rainfall patterns, soil characteristics, irrigation infrastructure, and adoption of modern farming technologies. Socio-economic factors—such as landholding size, access to

credit, market connectivity, and extension services—further shape the uneven distribution of agricultural output. As a result, some districts and blocks in eastern Rajasthan experience higher crop yields and diversified farming systems, while others struggle with low productivity, subsistence agriculture, and vulnerability to climatic fluctuations.

Understanding these disparities is crucial for designing region-specific agricultural policies and ensuring balanced rural development. A systematic analysis of the spatial patterns of agricultural productivity in eastern Rajasthan can provide insights into the underlying determinants of these imbalances and highlight priority areas for intervention. This research, therefore, seeks to evaluate the levels of agricultural productivity across the region, examine the factors contributing to inter-district and intra-district variations, and propose strategies to reduce these disparities.

Statements of the Problem

Low and Uneven Agricultural Productivity:

Influence of Argo-Climatic and Soil Conditions:

Limited Irrigation and Water Resources:

Socio-Economic Factors Affecting Agriculture:

Impact on Regional Development and Livelihoods:

Policy and Planning Gaps**:**

Objectives

To analyze trends in agricultural productivity in eastern Rajasthan

To identify spatial disparities in agricultural productivity within eastern Rajasthan

To examine the driving factors behind regional imbalances in productivity

To evaluate the stability and risk of productivity in eastern Rajasthan

To assess institutional and policy constraints

To propose strategies and policy interventions

To project future scenarios

Literature review

Literature defines agricultural productivity as both **physical output per unit area** (crop yield) and as a **composite index** accounting for inputs such as labour, irrigation, and fertilizers. Commonly applied methods include:

Yield-based indicators (Singh, Jasbir, 1971)

Crop Combination and Crop Concentration indices (Weaver, 1954; Bhatia, 1965)

Composite Crop Productivity Indices for intra-regional comparison

Total Factor Productivity (TFP) in recent analytical studies

These tools help researchers identify spatial inequalities in agricultural performance.

Most studies agree that **irrigation is the strongest determinant** of productivity.

Districts like **Kota, Bundi, Baran, and Jhalawar** benefit from the **Chambal Valley Project**, which has improved wheat, mustard, and soybean yields.

Conversely, **Dausa, Karauli, and Sawai Madhopur** face low irrigation penetration and frequent water scarcity, resulting in lower agricultural output.

Eastern Rajasthan receives moderate rainfall (500–700 mm), but its spatial variation significantly affects productivity. Literature shows:

Southeastern districts with higher rainfall perform better.

North-eastern districts like Alwar and Bharatpur experience variability and groundwater depletion, affecting sustainability Soil characteristics also contribute to spatial imbalances:

Alluvial soils in Bharatpur, Dholpur, and Kota regions support higher productivity.

Mixed red and sandy loam soils in Karauli and Dausa limit agricultural potential without irrigation.

Methodology

Here's a detailed breakdown of possible research methods you could adopt:

Defining the Study Region

Clearly delineate what you mean by "Eastern Rajasthan": which districts you include (e.g., Jaipur, Alwar, Bharatpur, Dholpur, Sawai Madhopur, etc.).

Use **statistical geography** to define spatial units, i.e., district-level or block-level analysis.

Be aware of the **modifiable areal unit problem (MAUP)**: how your choice of spatial units (districts vs. sub-districts) can bias your results.

Data Collection

Use **secondary data** from government sources: Directorate of Economics & Statistics (DES), Department of Agriculture (Rajasthan), Census, etc. For example, time-series data on area, production, and yield of crops. This is used in similar studies.

Use **agricultural indicators** like cropping intensity, irrigation intensity, fertilizer use, mechanization, land holding sizes, rainfall, etc. These were used in previous analyses of agricultural disparities.

If possible, collect **primary data** as well: farmer surveys, focus group discussions, interviews to understand qualitative aspects (technology adoption, constraints, socio-economic factors).

Conclusion

The analysis of agricultural productivity in Eastern Rajasthan reveals that significant regional imbalances continue to shape the agrarian landscape of the region. Variations in rainfall distribution, soil fertility, irrigation accessibility, and adoption of modern agricultural practices contribute to a marked spatial disparity between relatively productive districts and those that lag behind. Areas with assured irrigation—particularly those benefiting from canal networks and groundwater resources—show consistently higher yields, whereas the predominantly rainfed zones remain vulnerable to climatic uncertainties and low crop diversification. Socio-economic factors such as landholding size, infrastructural development, access to credit, and availability of agricultural extension services further reinforce these disparities.

References

1. **Inter-District Disparities in Agriculture Development of Rajasthan**Newar, Sapna & Sharma, Nidhi. *"Inter District Disparities in Agriculture Development of Rajasthan: Some Policy Implications for Lagged Districts."* **SSRG International Journal of Economics and Management Studies**, Vol. 4, Issue 4, 2017.
2. This paper constructs a composite index using six agricultural indicators (e.g., net sown area, irrigation, cropping intensity) and ranks districts for two time points (1991-92 and 2010-11).
3. **Regional Agriculture Disparities in Rajasthan – Geographical Analysis**Pachori, Sunita & Kannan, Monika. *"Regional Agriculture Disparities in Rajasthan: A Geographical Analysis."* (Academia.edu)
4. Analyzes spatial patterns of development and tries to find relationships between agricultural development and variables like moisture index, resource endowments, etc.
5. **Regional Imbalances in Oilseeds Productivity in Rajasthan**
6. Kaur, Shivjeet; Kaur, Sandeep; and Sohal, K. S. *"Regional Imbalances in Oilseeds Productivity in Rajasthan."* (ISDESR)
7. Focused on oilseed crops, studying spatial variation in productivity and underlying causes.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 40-43
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मंजुल भगत के उपन्यासों में नारी की भूमिका

Anjaly Prakash
Research scholar,
Dr. Sreeja G.R
Research Guide, Assistant Professor,
Nirmala College Muvattupuzha Ernakulum Dist.

आधुनिक हिंदी महिला लेखिकाओं में मंजुल भगत जी का सर्वोत्कृष्ट स्थान है| मंजुल भगत हिंदी साहित्य की उन प्रमुख लेखिकाओं में से एक हैं, जिन्होंने समाज में नारी की स्थिति, उसकी भावनाओं, संघर्षों और सपनों को अपने उपन्यासों में सजीव रूप में प्रस्तुत किया है। उनके लेखन में स्त्री केवल परंपरागत भूमिकाओं में सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज और परिवार में अपनी पहचान के लिए संघर्षरत है। मंजुल भगत के उपन्यासों में नारी कभी एक माँ, पत्नी या बेटी के रूप में दिखती है, तो कभी एक स्वतंत्र विचारों वाली महिला के रूप में, जो सामाजिक बंधनों से ऊपर उठने का प्रयास करती है। उनके पात्र जीवन के विभिन्न पहलुओं— जैसे पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सामाजिक अन्याय और आर्थिक आत्मनिर्भरता—से जूझते हुए नारी के समग्र व्यक्तित्व को दर्शाते हैं।

उनके उपन्यास आकार-प्रकार में लघु है और काफी कुछ कहानी के निकट नज़र आती है|इसके संबंध में उनके ही बहन जाने-माने लेखिका श्रीमती मृदुला गर्ग जी ने लिखा है -"लघु उपन्यास मंजुल की क्रीड़ास्थली थी|कहानी और उपन्यास एक दूसरे में ऐसे रच बस गए है कि पाठक कहानी पढ़ने तो सोचते कि इसका उपन्यास बन सकता है और जब उपन्यास पढ़ते तो इससे अच्छी भली कहानी बनती नज़र आती है "[1]

कहानी के माध्यम से उन्होंने साहित्य की क्षेत्र में पदार्पण किया था| लेकिन उपन्यास पर भी आपने अपनी क्षमता का उदाहरण दिया है| आपके कुल सात उपन्यास प्राप्त है |वे हैं -"टूटा हुआ इंद्रधनुष (1976),लेडीज क्लब(1976), अनारो(1977), बेगाने घर में(1978),खातुल(1983), तिरछी बौछार(1984),गंजी (1995)

साहित्य का आधारभूत उदेदश्य समाज का कल्याण होता है|यह उद्देश्य को पूरा करना साहित्य विधाओं का कर्तव्य है |समाज में हो रही अन्यायों और समस्याओं के विरुद्ध आवास उड़ाना इसका लक्ष्य होता है| साहित्य के अन्य विधाओं की तुलना में उपन्यास इस लक्ष्य को पूरा करने में आगे है |हिंदी उपन्यास में स्त्री एवं उसकी समस्याओं की चर्चा एक महत्वपूर्ण हिस्सा है | समाज के कुरीतियों पर जूझनेवाले स्त्रीत्व को अपनी पहचान दिलाने का कार्य ही साहित्यकार करते

[1] मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य -कमल किशोर गोयनका – पृ.5

है |इस दृष्टि से देखा जाए तो यह कार्य में मंजुल जी का बहुत महत्वपूर्ण योगदान हैं | मंजुल भगत जी ने अपने उपन्यासों में स्त्री विमर्श के क्षेत्र में कुछ नए आयाम को छुआ है |उन्होंने स्त्री की कोमल भावनाओं के साथ उनकी संघर्ष गाथा को भी व्यक्त करने की कोशिश करते हैं |मंजुल भगत जी ने अपने उपन्यासों में नारी के विविध रूपों को उसके व्यक्तित्व गुणों के आधार पर चित्रित करने का प्रयास किया है| शिक्षित एवं आत्मनिर्भर नारी, मेहनती और संघर्षशील नारी,आधुनिक नारी आदि का चित्रण उनके उपन्यासों में प्राप्त होता है |

'टूटा हुआ इंद्रधनुष'(1976)मंजुल भगत का पहला उपन्यास है| उपन्यास की मार्मिकता को देखकर हम नहीं कह सकते हैं कि यह उनकी पहली उपन्यास है| उपन्यास की नायिका शोभना के माध्यम से आधुनिक स्त्री के स्वतंत्र चिंतन व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है|यहाँ शोभना अपने को मुक्त समझने वाली औरतों की प्रतिनिधि है |शोभना मनीष से प्यार करती है लेकिन प्रभात नामक अन्य पुरुष से विवाह करती है |आश्चर्य की बात तब होती है जब वह शादी के बाद भी अपने प्रेमी के साथ यौन संबंध रख लेते है| यहाँ स्त्री के स्वतंत्र चिंतन को व्यक्त करने का प्रयास है | शोभना अपनी परिवार के प्रति सारे उत्तरदायित्व निभाते हैं चाहे पत्नी के रूप में हो या माँ के रूप में | उसी के साथ ही वह अपने मन को भी खुश रखने की कोशिश करते हैं |शोभना स्वतंत्र तरीके से सोचनेवाली औरत है |उपन्यास में वह मनीष से कहते हैं -

"मनीष, हम विवाह कभी नहीं करेंगे "

"क्यों "?मनीष का स्वर धीमा था, उतना ही छलका पड़ रहा था |

"अगर करना ही होगा तो मैं किसी अन्य पुरुष से ब्याह करूंगी और तुम कोई और लड़की पसंद कर लेना "[2]

शोभना की यह स्वर तो आधुनिक युग में अपनी मस्तिष्क के माध्यम से सोचनेवाली नारी की है| वह किसी ओर की चिंता नहीं करता| अपने मन क्या चाहते हैं वह करती है| वे कोई बंधनों में बन्धित रहना नहीं चाहता| अपने कर्तव्यों को पूरा करने के साथ वह अपने मन की इच्छाओं और आकांक्षाओं को तृप्त करने की क्षमता भी रखती हैं| जो वह करती है वह उनके मन की सही है| परंपरा में पूर्ण रूप से समर्पित करने वाले स्त्री को शोभना की प्रवृत्तियां सही नहीं लगेगा| लेकिन अपने आपको स्वतंत्र महसूस करने वाले की दृष्टि में यह सही है|

1976 में प्रकाशित 'लेडीज क्लब' मंजुल जी का दूसरा उपन्यास है|यह एक लघु उपन्यास है लेकिन इसमें निहित यथार्थ की आकर तो बड़ी है |आधुनिक समाज में प्रकट होनेवाली बहुत सारे विषयों पर यहाँ चर्चा होते हैं| मंजुल भगत ने लिखा है कि "इस लघु व्यंग्यात्मक उपन्यास में बंबई के उच्चवर्गीय समाज की संभ्रात महिलाएं हैं ,जो खोखले आदर्शो में लिपटी हुई एक तरह से दोहरी जिंदगियाँ जी रही हैं, और जो हमारे आसपास मिल जाती है| इसमें अनेक पात्र प्रत्यक्ष होते हैं|जैसे श्रीमती गंडेविया, श्रीमती पुरी, श्रीमती कौल, श्रीमती जैन, श्रीमती खंडेलवाल,श्रीमती अग्रवाल,और श्रीमती गुप्ता |इसमें निहित श्रीमती पुरी के व्यक्तित्व के वर्णन में लेखिका ने लिखा है ,"उनके चारों और उनका अभिजात्य इत्र की भाँति मंडरा रहा था,मानो वह अपने संपूर्ण समाज ही साथ ही साथ ले आई हों| वर्ग - श्रेष्ठता के अंह ने उनकी आकृति के भावों को एक प्रकार की कठोर रुक्षता प्रदान कर दी थी"|[3]इस उपन्यास के माध्यम से आधुनिक समाज में निहित स्त्री पुरुष संबंध,पति से असंतोष और अतृप्ती, आधुनिक बनने की चाह, अहंकार आदि को व्यक्त करने का प्रयास है |उपन्यास के माध्यम से दिखावा करने की आधुनिक स्त्रियों की मनोवृतियों पर सरल तरीके से व्यंग्य करते हैं |यह कार्य में वह पूर्ण रूप से सफल भी हुई है |

---

[2] मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य - कमल किशोर गोयनका – पृ 23

[3] मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य -कमल किशोर गोयनका -पृ

साहित्य जगत में मंजुल भगत जी को 'अनारो' उपन्यास के माध्यम से खूब ख्याति मिली|1976 में साप्ताहिक हिंदुस्तान में प्रकाशित यह उपन्यास उनके तीसरी उपन्यास है| हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित लेखकों ने इस उपन्यास को तहे दिल से स्वागत किया |यह एक निम्न वर्गीय स्त्री की कहानी है -जो घर-घर जाकर चौका बर्तन कर गुजारा करती है| अनारो एक संघर्षशील स्त्री है वह अपने बच्चों के लिए जीते हैं |पति तो है लेकिन वह नकारा है| होना ना होने के बराबर है| एक पति होने का पिता होने का जो उत्तरदायित्व से वह बचना चाहते हैं| इसी कारण से परिवार का सारा बोझ अनारो पर आ गिरते हैं| फिर भी वह हिम्मत नहीं हारी| अपने ही कंधों पर परिवार को आगे ले जाती है |यह उपन्यास को पढ़कर साधारण मानव तो भावावेश में पड़ जाएगा| हमें लगेगा कि यह अनारो हमारे आसपास की कोई है |उनके साथ हमारा कोई रिश्ता है|इस उपन्यास के माध्यम से संघर्षशील मेहनती औरत को अनारो के माध्यम से व्यक्त करने का सफल प्रयास है |

स्त्री पर केंद्रित से उनका अगला उपन्यास है 'तिरछी बौछार'| यह उपन्यास सन् 1984 में प्रकाशित हुआ| इस उपन्यास की नायिका विस्मिता अर्थात् विसु के माध्यम से मंजुल जी ने नारी की अपनी अस्तित्व की खोज करने की इच्छा को प्रकट किया है |विसु एक ऐसी स्त्री है जो अपने परिवार और सबको अपने में बांधकर एक नई पहचान ढूंढने की कोशिश करते हैं |वह नौकरी ढूंढती है पूरे मन के साथ काम भी करते हैं| जीवन का क्षेत्र बड़ा होने पर उसे महसूस होता है कि बाहर की दुनिया उतना क्रूर और स्वार्थपरक नहीं है| घर के चार दीवारों में ही नहीं बल्कि बाहर की दुनिया में स्त्री का अपना स्थान है| वह सुरक्षित भी है |यह निष्कर्ष पर वह पहुंचती है| विसु अपनी प्रतिभा से अपना अस्तित्व को छूते हैं| आशाओं और आकांक्षाओं को पूरा करने की क्षमता रखने वाली स्त्री को यहाँ विसु के माध्यम से लेखिका ने दर्शाया है|

मंजुल जी का अंतिम उपन्यास है 'गंजी' यह सन् 1995 में प्रकाशित हुआ| कलेवर की दृष्टि से यह मंजुल जी का सबसे बड़ा उपन्यास है इसमें एक ऐसी अद्भुत शक्ति है जिससे पाठकों को आदि से लेकर अंत तक उपन्यास से जोड़कर रखते हैं| उपन्यास के शीर्षक से ही नायिका का वर्णन है| गंजी अनारो की बेटी है जिनका असली नाम है शांति| वह अपने जीवन के संघर्षों से जूझकर एक आत्मनिर्भर नारी का रूप धारण कर लेता है| गंजी की माँ आदि से लेकर अंत तक अनारो ही रहती हैं ,लेकिन गंजी अपनी आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति के बल पर नई रूप में प्रवेश कर लेते हैं| वह एक स्वतंत्र पक्षी के समान जाग उठते हैं| इसी के चलते अन्य स्त्री के जाल में फसे गंजी के पति वापस उन्हीं के पास लौट आते हैं |गंजी की मनोधैर्य से परिवार में परिवर्तन आते हैं| पति लौटते हैं ,गंजी के कामों में सहयोग भी देते हैं ,वह पति से पिता बन जाते हैं| यह सब गंजी के मेहनत का ही फल है| आत्मनिर्भर स्त्री भाव की चलक गंजी के द्वारा मंजुल जी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं |

साहित्य जगत में उन्होंने सीमित, लेकिन प्रभावशाली योगदान दिया है, और उनके द्वारा किए गए इस योगदान को शब्दों में व्यक्त करना निश्चित रूप से साहस की बात होगी। साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है, और इसी दर्पण के माध्यम से हम समाज में निहित समस्याओं को देखते, समझते, और उनका समाधान खोजने का प्रयास करते हैं। इसलिए यह दर्पण स्वच्छ और स्पष्ट होना चाहिए, और इसे स्वच्छ बनाए रखने का कार्य साहित्यकारों का है। इस दिशा में उन्होंने काफी ख्याति अर्जित की है। विशेष रूप से, समाज में नारी के प्रति होने वाली समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई है।

उनके उपन्यासों में स्त्री के विभिन्न भावों और रूपों को देखा जा सकता है। चाहे वह स्त्री नौकरीपेशा हो या घर संभालने वाली, उसे संघर्षों का सामना अवश्य करना पड़ता है। समस्याओं के रूप बदलते रहते हैं, लेकिन स्त्री की पीड़ा का स्वर एक ही होता है। जब कोई स्त्री ही दूसरी स्त्री की व्यथा को व्यक्त करती है, तो उसमें गहराई और संवेदनशीलता

बढ़ जाती है। क्योंकि भोगे हुए यथार्थ को व्यक्त करने में अधिक मार्मिकता होती है, स्त्री जीवन के यथार्थ को स्त्री द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर पाठक उससे अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं। मंजुल जी ने भी इस कार्य को बहुत ही सजीवता और कुशलता से निभाया है।

उनकी रचनाएं इसका प्रमाण हैं और जीवंत दस्तावेज भी। उन्होंने अपने पात्रों को हमारे आस-पास के जीवन से चुना है। उनके पात्रों के नाम और जीवन के संदर्भों को देखकर हमें यह आभास होता है कि वे हमारे अपने जीवन से जुड़े हैं। यही कारण है कि मंजुल जी अपने पाठकों को अपने साथ उस दुनिया में ले जाती हैं, जहां जो कुछ भी लिखा गया है, वह पाठकों को उनके अपने जीवन से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। उनकी विशेषता यह है कि वे अपने लेखन में अनुभव और जीवन की सच्ची घटनाओं को व्यक्त करती हैं, जिससे पाठक भावनात्मक रूप से गहरे प्रभावित होते हैं।

स्त्री का जीवन एक समुद्र की तरह है| उसे पूर्ण रूप से समझ पाना मुश्किल है |स्त्री तो शक्ति का प्रतिरूप होती है लेकिन यह प्रतिरूप को भी जीवन में कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है| स्त्री का जीवन ही संघर्षरत है यह संघर्ष कभी खत्म नहीं होती |जीवन के आदि से लेकर अंत तक वे जूझते रहते हैं ,चाहे वह अपने लिए हो या अपनों के लिए वे सदा कर्मनिरध रहते हैं| अपने दायित्व निभाने में वह हमेशा आगे है ,लेकिन दूसरों के प्रति उत्तरदायित्व पूरा करने के चक्कर में वे अपने ही पहचान भूल जाते हैं |अपने चेहरे को दूसरों में ढूंढते रहते हैं| कभी यह ढूंढने में वे सफल भी हो जाते हैं कभी विफल भी|ऐसे विफल होने वालों को जगाने का कार्य साहित्यकार करते हैं |साहित्यकारों का लक्ष्य ही समाज में निहित समस्याओं का समाधान ढूंढ निकालना है |मुख्य रूप से समाज में उभरकर आने वाली समस्याओं में प्रमुख स्त्री समस्याएं हैं| स्त्री तो जन्म से लेकर अंत तक चुनौतियों का सामना करते ही रहते हैं| युद्ध में भाग लेने वाले जवान की तरह वह लगती रहती है| यह लड़ाई को सफल बनाने का कार्य साहित्यकार करते हैं| मंजुल भगत जी का योगदान इस क्षेत्र में बहुत ज्यादा है| उन्होंने अपने उपन्यासों में दुनिया में निहित सारी नारी भावों को उनके व्यथाओं के साथ दर्शाया है |
मंजुल भगत के उपन्यासों में नारी की भूमिका एक सशक्त और स्वतंत्र व्यक्तित्व की कहानी बयां करती है। उनके साहित्य में नारी केवल सामाजिक परंपराओं और कर्तव्यों के बंधन में बंधी हुई नहीं दिखती, बल्कि वह अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए निरंतर संघर्षरत है। मंजुल भगत की नायिकाएं न केवल व्यक्तिगत और पारिवारिक स्तर पर बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी अपनी अस्मिता और अधिकारों के लिए संघर्ष करती हैं।

लेखिका ने अपने उपन्यासों में स्त्री को पुरुष-सत्तात्मक समाज में अपनी जगह बनाने, आर्थिक आत्मनिर्भरता हासिल करने और मानसिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की प्रक्रिया को विस्तार से चित्रित किया है। उनका लेखन यह स्पष्ट करता है कि नारी सिर्फ सहनशीलता और त्याग की प्रतिमूर्ति नहीं है, बल्कि वह साहस, संघर्ष और स्वाभिमान की प्रतीक भी है।

इस प्रकार, मंजुल भगत के उपन्यास नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को गहराई से समझने और प्रस्तुत करने का सशक्त माध्यम हैं, जहां नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग और आत्मनिर्भर बनने की दिशा में निरंतर अग्रसर है। उनके साहित्य में नारी की भूमिका समाज के बदलते मानदंडों के बीच उसकी संघर्षशीलता और सशक्तिकरण की प्रेरणादायक कहानी है। संक्षेप में कहा जाए तो मंजुल भगत साहित्य की ऐसी लेखिका है जो स्त्री को गहराई से चित्रित करने का सफल प्रयास किया है|

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मंजुल भगत समग्र कथा साहित्य – कमल किशोर गोयनका -किताबघर प्रकाशन नयी दिल्ली - 2018
2. भारत में नारी सशक्तिकरण का व्यावहारिक स्वरूप -डॉ पूर्णिमा शर्मा -विकास प्रकाशन कानपुर – 2015

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 44-47
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन हिंदी उपन्यासों में ट्रांसजेंडर

आर्या कृष्णन
Research scholar,
Dr.Sreeja G R
Research Guide
Nirmala college Muvattupuzha

समाज में नारी, आदिवासी, दलित जैसे वर्गों के साथ अपने स्वाभिमान से जीने का संघर्ष करने वाला एक अन्य वर्ग ट्रांसजेंडर है। यह वर्ग आज भी अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहा है। अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने वाले इन वर्गों की आवाज़ साहित्यिक विमर्श के माध्यम से उठाई जा रही है। आज हर विमर्श इन वर्गों को केंद्र में लाने का प्रयास कर रहा है। साहित्य में विमर्श के माध्यम से इन वर्गों को अभिव्यक्ति दी जा रही है, क्योंकि इनकी समस्याएँ बेहद गंभीर हैं।

समाज में आज ट्रांसजेंडर एक उपेक्षित वर्ग के रूप में देखा जाता है। ट्रांसजेंडर का अर्थ है वह व्यक्ति जो न तो पूर्ण रूप से पुरुष है और न ही पूर्ण रूप से स्त्री। स्त्री और पुरुष के अलावा एक तीसरा जेंडर भी है जिसे किन्नर, नपुंसक, हिजड़ा, अरावनी, ट्रांसजेंडर आदि नामों से जाना जाता है। यह वह वर्ग है जिसकी जैविक पहचान या शारीरिक संरचना उसे अन्य लिंगों से भिन्न बनाती है। अंग्रेज़ी के दो शब्दों 'ट्रांस' और 'जेंडर' के योग से बना यह शब्द 'ट्रांसजेंडर' बना है। 'ट्रांस' का अर्थ है परे, दूसरी अवस्था में, जबकि 'जेंडर' का अर्थ है लिंग। अतः 'ट्रांसजेंडर' का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो दूसरी अवस्था में या अन्य लिंग में हो।

वर्तमान समय में ट्रांसजेंडर समुदाय अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक क्षेत्र में इन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। विशेष रूप से, जैविक समस्याओं के कारण यह वर्ग घर-परिवार से बहिष्कृत हो जाता है। कई स्थानों पर यह समुदाय हिंसा का शिकार भी बनता है। ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को सामाजिक बहिष्कार, शिक्षा सुविधाओं की कमी, बेरोजगारी, चिकित्सा सुविधाओं की अनुपलब्धता जैसी समस्याओं से भी जूझना पड़ता है, जिसके कारण यह वर्ग मुख्यधारा से अलग-थलग हो जाता है।

वर्तमान हिंदी साहित्य में ट्रांसजेंडर समुदाय से संबंधित कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास आदि लिखे जा रहे हैं। इन सभी माध्यमों से समाज में ट्रांसजेंडर की स्थिति,उन पर होने वाले अत्याचार, और उनकी अस्मिता से संबंधित समस्याएँ हमारे समक्ष प्रस्तुत की जा रही हैं। हिंदी साहित्य में ट्रांसजेंडर विमर्श को वर्तमान समय का महत्वपूर्ण विमर्श माना जा रहा है। हालांकि, इन पर होने वाला अत्याचार नया नहीं है। महाभारत और रामायण जैसे प्राचीन ग्रंथों में भी ट्रांसजेंडरों की अस्मिता और उनके संघर्ष से संबंधित अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में नीरजा माधव, महेंद्र भीष्म, प्रदीप सौरभ, अनसूया त्यागी, चित्रा मुद्गल, भगवत अनमोल, जया जादवानी आदि रचनाकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से ट्रांसजेंडर लोगों की वास्तविक स्थिति, उनकी समस्याओं आदि को दिखाने का प्रयास किया है। इन रचनाकारों के उपन्यास बहुत चर्चित हैं।

नीरजा माधव द्वारा लिखित "यमदीप" उपन्यास ट्रांसजेंडरों पर लिखा गया पहला उपन्यास है। यह उपन्यास 2009 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास के माध्यम से ट्रांसजेंडर जीवन की मार्मिक गाथा प्रस्तुत की गई है। साथ ही मानवीयता का एक असली चित्र भी दिखाया गया है। इस उपन्यास में नजबीबी की कथा को केंद्र में रखकर हमारे समाज में शोषण और उपेक्षा का शिकार हुए ट्रांसजेंडर वर्ग की कठिनाइयों को स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयास किया गया है।

दूसरा प्रमुख उपन्यास है चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित "पोस्ट बॉक्स नंबर 203, नालासोपारा"। इस उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 2016 में हुआ। इस उपन्यास का मुख्य पात्र विनोद है। विनोद के माध्यम से भारतीय समाज में ट्रांसजेंडरों की वास्तविक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। इसमें ट्रांसजेंडरों के सपने, परिवार से बिछड़ने का दर्द, समाज की सोच आदि को रेखांकित किया गया है।

2011 में प्रकाशित "तीसरी ताली" उपन्यास प्रदीप सौरभ द्वारा लिखित प्रमुख ट्रांसजेंडर उपन्यास है। यह एक क्रांतिकारी उपन्यास है, जिसमें ट्रांसजेंडरों की शिक्षा की कमी की समस्या को केंद्र में रखा गया है। शिक्षा के अभाव के कारण इस वर्ग को आर्थिक, सामाजिक और अन्य कई क्षेत्रों में भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। "तीसरी ताली" के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि इस वर्ग को समाज में कोई मान्यता नहीं मिलती है। उपन्यास में इन लोगों के संघर्ष और उनकी यथार्थ स्थिति को दिखाने का प्रयास किया गया हैं।

'डॉक्टर अनसूया त्यागी' द्वारा लिखित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है "मैं भी औरत हूँ"। यह उपन्यास ट्रांसजेंडर विषय पर आधारित है। इसमें दो बहनों की कहानी है, जिन्होंने ऑपरेशन के बाद स्त्री रूप धारण किया और उनके नाम रोशनी और मंजुला हैं। इस उपन्यास में तृतीय लिंगी व्यक्ति की मानसिकता और उसकी समस्याओं को भी बड़े ही स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है।

इसके अलावा, दो प्रमुख उपन्यास हैं "मैं पायल" और "किन्नर कथा"। ये दोनों उपन्यास हिंदी के प्रमुख उपन्यासकार महेंद्र भीष्म द्वारा लिखे गए श्रेष्ठ उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में ट्रांसजेंडर वर्ग की स्थिति को बहुत ही सजीव रूप से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में ट्रांसजेंडरों के प्रतिरोध को भी दर्शाया गया है। उपन्यास का मुख्य पात्र पायल है। पायल को जन्म के समय जगन्नी कहा जाता था। पुरुष रूप में जन्मी पायल बाद में ऑपरेशन कराकर एक स्त्री बन जाती है। उपन्यास में पायल, जो बचपन से स्त्रीलिंगी होने के कारण अपने परिवार से बिछड़ गई थी, और कई पीड़ाओं को सहन किया और अंततः किन्नर गुरु बन गई। "मैं पायल" उपन्यास यातना, संघर्ष और जिजीविषा की अनवरत यात्रा हैं।

दूसरी प्रमुख उपन्यास है "किन्नर कथा"। शीर्षक से ही यह स्पष्ट होता है कि यह किन्नरों की कथा है। उपन्यास में दो मुख्य पात्र हैं तारा और सोना। सोना एक ट्रांसजेंडर है, और तारा एक किन्नर गुरु है। तारा को किन्नर होने के कारण अपने परिवार से तिरस्कार और अपमान का सामना करना पड़ा। उपन्यास में सोना, ट्रांसजेंडर होने के कारण, पंचम सिंह द्वारा तारा के पास भेजी जाती है, और तारा उसका नाम बदलकर चांदा रख देती है। उपन्यास में चांदा और मनीष के अनोखे संघर्षपूर्ण प्रेम का वर्णन भी किया गया है।इसमें ट्रांसजेंडर और किन्नर समुदाय के मानसिक संघर्ष को गहराई से चित्रित किया गया है।इस उपन्यास के माध्यम से भीष्म जी यह संदेश देना चाहते हैं कि यह वर्ग समाज में अलग-थलग नहीं है, और समाज को इनके अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए।भागवत अनमोल द्वारा लिखित ट्रांसजेंडर केंद्रित उपन्यास है "जिंदगी 50-50"। इस उपन्यास में दो पीढ़ियों की कहानी चित्रित की गई है।यह उपन्यास 2017 में प्रकाशित हुआ था। इसकी कथा अतीत और वर्तमान से जुड़ी हुई है।उपन्यास में लेखक ने बदलते

समय के साथ ट्रांसजेंडरों के मन में होने वाले विचारों और समाज की सोच में आए परिवर्तन को अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। मुख्य पात्र के रूप में अनमोल तिवारी के भाई हर्षा और अनमोल का बेटा सूर्य दोनों आते हैं। दोनों ही ट्रांसजेंडर हैं।उपन्यास में इन दोनों पात्रों की मानसिक स्थिति का सटीक और विस्तृत विश्लेषण दृष्टिगोचर होता है।"जिंदगी 50-50" के माध्यम से उपन्यासकार ने एक नई सोच का प्रयास किया है।

भागवत अनमोल द्वारा लिखित ट्रांसजेंडर केंद्रित उपन्यास है "जिंदगी 50-50"। इस उपन्यास में दो पीढ़ियों की कहानी चित्रित की गई है।यह उपन्यास 2017 में प्रकाशित हुआ था। इसकी कथा अतीत और वर्तमान से जुड़ी हुई है। उपन्यास में लेखक ने बदलते समय के साथ ट्रांसजेंडरों के मन में होने वाले विचारों और समाज की सोच में आए परिवर्तन को अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। मुख्य पात्र के रूप में अनमोल तिवारी के पिता हरिओम और अनमोल का बेटा सयंतू सामने आते हैं। दोनों ही ट्रांसजेंडर हैं।उपन्यास में इन दोनों पात्रों की मानसिक स्थिति का सटीक और विस्तृत विश्लेषण दृष्टिगोचर होता है। "जिंदगी 50-50" के माध्यम से उपन्यासकार ने एक नई सोच का प्रयास किया हैं।

" देह कुठरिया" एक महत्वपूर्ण ट्रांसजेंडर उपन्यास है, जिसे जाया जादवानी द्वारा लिखा गया है। यह एक प्रसिद्ध उपन्यास है जो ट्रांसजेंडरों की पीड़ा और अमानवीय व्यवहार को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। उपन्यास का कथानक उन पात्रों के इर्द-गिर्द घूमता है जिन्होंने जेंडर भेदभाव के आधार पर अपने जीवन की कठिनाइयों और विडंबनाओं का सामना किया है। इसमें ऐसे मानव संबंधों की छवि प्रस्तुत की गई है जो समाज से अपेक्षित समर्थन की कमी का सामना कर रहे हैं।

इन नौ उपन्यासों के माध्यम से उपन्यासकारों ने एक बार फिर यह समझने का प्रयास किया है कि हमारे समाज में ट्रांसजेंडरों की समस्याओं का समाधान अभी भी पूर्ण रूप से नहीं हुआ है। आज भी यह वर्ग आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्तर पर कठिनाइयों का सामना करता है। ट्रांसजेंडरों के प्रति समाज में डर और पूर्वाग्रह की भावना बनी हुई है। इसलिए, आज भी ट्रांसजेंडर समुदाय की एक चुनौती है कि समाज के सामान्य वर्ग के मन में इस डर को कम किया जाए। इसके लिए ट्रांसजेंडरों को आम व्यक्तियों के साथ सहजता और समर्पण के साथ पेश आना होगा ।

2017 की जनगणना के अनुसार, ट्रांसजेंडर समुदाय की आबादी 4.9 लाख है, जिसमें से केवल 46% लोग साक्षर हैं, जो सामान्य आबादी की साक्षरता दर 74% की तुलना में काफी कम है। ट्रांसजेंडर समुदाय को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे भेदभाव, शोषण, अस्वीकृति, और सामाजिक उपेक्षा।हालांकि, आज सरकार द्वारा ट्रांसजेंडरों को कई अधिकार दिए जा रहे हैं। 2019 में ट्रांसजेंडर अधिकार संरक्षण बिल पारित हुआ, जिसमें ट्रांसजेंडरों के लिए कई अधिकार जोड़े गए हैं, जैसे निवास का अधिकार, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, और ट्रांसजेंडर पहचान से जुड़ी समस्याओं के समाधान के साथ-साथ अपराध और हिंसा से सुरक्षा भी शामिल है।

साहित्य और सिनेमा में भी ट्रांसजेंडर मुद्दों को अधिक प्रमुखता दी गई है। फिल्में जैसे "चंडीगढ़ करे आशिकी" (2021) और " लक्ष्मी " (2020) ट्रांसजेंडरों की समस्याओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करती हैं। बॉलीवुड में ट्रांसजेंडर का चित्रण अक्सर लापरवाह और नकारात्मक दृष्टिकोण से किया गया है, जिससे समाज में गलत धारणाएं बनी हैं। दूसरी ओर, फिल्में जैसे "ज्ञान मेरी कुट्टी" (2018) ने ट्रांसजेंडरों की वास्तविक स्थिति को चित्रित करने का प्रयास किया है और समाज की नजर को समझने में मदद की है।

सिनेमा के क्षेत्र में ट्रांसजेंडरों को महत्व देने से ट्रांसजेंडर समुदाय के प्रति समाज की सोच में कुछ बदलाव आया है। फिल्म सामग्री के माध्यम से उनकी पीड़ा और संघर्ष को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे समाज में जागरूकता बढ़ रही है। इससे ट्रांसजेंडरों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त की जा रही है और उनकी वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयास किया जा रहा है।

आज ट्रांसजेंडर लोग मंच पर आकर अपनी क्षमताओं को दिखा रहे हैं। जैसे विना सेंद्रा, जो ट्रांसजेंडर क्वीन और मिस ट्रांसक्वीन इंटरनेशनल पेजेंट में भाग ले चुकी हैं और रनर-अप का खिताब भी जीत चुकी हैं। रवी राय पहली ट्रांसजेंडर एंकर हैं। पद्म श्री से सम्मानित ट्रांसजेंडर नृत्य कलाकार मंजम्मा जर्गर है। कई प्रमुख क्षेत्रों में ट्रांसजेंडरों ने सफलता हासिल की है, जैसे सत्य श्री, जो पहली ट्रांसजेंडर वकील हैं; मानवी बंधोपाध्याय, जो पहली ट्रांसजेंडर कॉलेज प्रोफेसर हैं; रब्बी, जो पहली ट्रांसजेंडर डॉक्टर हैं; और श्याम, जो जेआरएफ प्राप्त करने वाली पहली ट्रांसजेंडर हैं। स्वास्थ्य क्षेत्र में भी ट्रांसजेंडर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जैसे डॉक्टर विमला उर्ा राधा कृष्ण, जिन्होंने चिकित्सा में उत्कृष्टता प्राप्त की है।

साहित्य और सिनेमा के माध्यम से ट्रांसजेंडरों को आज एक मानवीय दृष्टिकोण से स्वीकार करने की भावना समाज में बढ़ रही है, हालांकि यह पूरी तरह से व्यापक नहीं है। लेकिन मेहनत और समर्पण के माध्यम से ट्रांसजेंडर लोग आगे बढ़ रहे हैं और समाज में अपनी जगह बना रहे हैं।

सन्दर्भ:

1. यमदीप -नीरजा माधव,सामायिक प्रकाशन दिल्ली
2. पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा – चित्रा मुद्गल,सामायिक प्रकाशन दिल्ली
3. ज़िन्दगी ५० ५०-भागवत अनमोल,राजपाल प्रकाशन नयी दिल्ली
4. क्वीर विमर्श:लेस्बियन ,गे,बाई सेक्सुअल,ट्रांसजेंडर - -के वनजा,वाणी प्रकाशन

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 48-51
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सहरिया जनजाति का जीवनदर्शन एवं सांस्कृतिक बोध

सपना कुमारी वर्मा
शोधार्थी, हिंदी विभाग
डॉ० उर्विजा शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
शंभु दयाल पी०जी० कॉलेज गाजियाबाद

शोध सार : भारत एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न संस्कृतियों का समाविष्ट है। भारतीय समाज की सामुदायिक विभिन्नता यहाँ विभिन्न संस्कृतियों के समागम एवं समन्वय की ही द्योतक है। भारतीय समाज विभिन्न जातियों, समुदायों, जनजातियों से मिलकर बना है। ये सभी मिलकर भारतीय समाज का सौंदर्यबोध निर्धारित करती है, जिसमें प्रत्येक समाज का अपना अलग जीवनदर्शन होता है। भारत के अलग–अलग क्षेत्रों में अनेक जनजातियाँ निवास करती है। इन क्षेत्रों में राजस्थान भी विशिष्ट स्थान रखता है। यहाँ पर कई जनजातियों का भौगोलिक निवास क्षेत्र है। राजस्थान की इन जनजातियों में सहरिया जनजाति विशेष स्थान रखती है। यह सबसे पिछड़ी और वंचित जनजाति है जो मुख्यतः बांरा, कोटा, झालावाड़ और श्योपुर जिलों में निवास करती है। इस जनजाति का अपना विशिष्ट क्षेत्र, जीवन संस्कृति और सरोकार है जो–कि न केवल सहरिया समाज के संस्कारों तथा जीवनदर्शन को विशिष्टता प्रदान करते हैं, अपितु राजस्थान के जनजातीय समाज को विस्तृत फलक प्रदान करती है। लेकिन इन सब विशिष्टताओं के बावजूद भी सहरिया जनजातीय समाज अभी भी हाशिए पर जीवन जी रहा है। स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी सहरिया जनजातीय समाज अपने विशिष्ट जीवनदर्शन को स्थिर रखे हुए है, जिसके कारण इनकी रीति–रिवाज, संस्कार और परंपराएँ आदि मिलकर इस समाज की सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने में सफल रही है। प्रस्तुत शोधालेख में सहरिया जनजातीय समाज के विशिष्ट जीवनदर्शन और सांस्कृतिक बोध के प्रमुख पक्षों पर दृष्टिपात किया गया है।

बीज शब्द : सहरिया, जनजाति, समाज, संस्कृति, जीवनदर्शन, वनोपज, पितृ–पुरूष, कौदे–सवा आदि

मूल आलेख : भारत राष्ट्र अपनी विशिष्ट और व्यापक संस्कृति के लिए विश्व में अद्वितीय स्थान रखता है। यहाँ का प्रत्येक क्षेत्र और समुदाय अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान रखता है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता की वैविध्यता तथा प्राचीनता अनवरत काल से निरंतर प्रवाहमान है। प्रत्येक देश और समाज के अपने रीति–रिवाज, पर्व–त्योहार, रहन–सहन और लोकाचरण होता है। ये सभी मिलकर उसके जीवनदर्शन और सांस्कृतिक बोध का निर्माण करते हैं। भारतीय समाज में निहित विविध जातियों, जनजातियों और समुदायों का भी अपना अलग जीवनदर्शन और सांस्कृतिक है जो एक समाज या समुदाय को दूसरे से भिन्न करता है। अन्य समाज व समुदायों की तरह ही भारत की जनजातियों का भी अपना अलग विशिष्ट जीवनदर्शन और सांस्कृतिक बोध है।

राजस्थान, भारतीय समाज का सिरमौर राष्ट्र है। यहाँ का इतिहास और संस्कृति विश्व सभ्यता की अनुपम निधियाँ है जिससे संपूर्ण विश्व का पथ प्रदर्शन होता है। राजस्थानी समाज और संस्कृति के निर्माण में यहाँ की जनजातियों की भी गौरवशाली परंपरा रही है। यहाँ की सहरिया जनजाति भी अपने विशिष्ट रीति–रिवाजों, रहन–सहन व जीवन पद्धतियों के लिए विशिष्ट पहचान रखती है। सहरिया समुदाय की सांस्कृतिक परंपराएँ, उनकी आजीविका, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक मान्यताएँ और प्रकृति से गहरे संबंध को प्रकट करती है। यह जनजाति अपने पर्व, त्यौहारों के माध्यम से न केवल देवता और प्रकृति

की आराधना करती है बल्कि सामूहिकता, सहयोग और आनंद का भाव भी प्रकट करती है। यह जनजाति, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के कुछ जिलों में निवास करती है। ये जनजाति अपने रहन–सहन, खान–पान, जीवन स्तर, आचार–विचार, रस्मों–रिवाज की आदिम संस्कृति का अनुपालनकर्ता रही है। राजस्थान में यह मुख्य रूप से बांरा, कोटा और झालावाड़ जिलों में निवास करती है। इनकी जनसंख्या लगभग दो लाख के आसपास अनुमानित है। सहरिया समाज पारंपरिक रूप से वनवासी और आजीविका के लिए जंगल के संसाधनों पर ही निर्भर रहता है।

विभिन्न विद्वानों ने सहरिया जनजाति का उद्भव संस्कृत के 'शबर' शब्द से माना है, जिसका अर्थ है 'वनवासी' या 'शिकार करने वाला'। **नरेन्द्र एन० व्यास एवं रूप सिंह ने सहरिया जनजाति को इस रूप में परिभाषित किया हैं "सहरिया शब्द की उत्पत्ति अरबी शब्द 'शेर' से हुई है, जिसका अभिप्राय जंगल से है। ऐसा माना जाता है कि मुस्लिम शासकों ने इन्हें जंगल में निवास करने के कारण सहरिया नाम दिया।"**[1] जबकि **रामचंद्र पलात के अनुसार "सहरिया शब्द का संधि विच्छेद करने पर सह + आर्य होता है, जिसका तात्पर्य आर्य के समान अथवा आर्य के वंशज या सहायक है। इसके संदर्भ में रामायण में भी कुछ साक्ष्य उपलब्ध है जो यह प्रमाणित करते है कि सहरियाओं का संबंध आर्य जाति से था।"**[2]

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सहरिया एक आदिम जनजाति है। यह जनजाति आज भी अपने सामाजिक सरोकारों का निर्वहन कर रही है। यद्यपि आधुनिक युग का प्रवाह धीरे–धीरे इस जनजातीय समाज को अपनी चपेट में ले रहा हैं। लेकिन इनकी जीवनशैली व संस्कार इन्हें अन्य समाजों से अलग करते हैं। सहरिया जनजाति का लोकजीवन प्रकृति के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। सहरिया समाज के लोग इकहरी आकृति के होते हैं। ये मोटे न होकर दुबले शरीर वाले होते हैं। यह लोग प्रायः शिकार पर निर्भर होते हैं। सहरिया समाज हमेशा से जंगली पशुओं का शिकार करते ये तथा जो कुछ भी वनों से प्राप्त होता है, उसी पर आश्रित रहते हैं। इनको प्राकृतिक रूप से उगने वाले कंदमूल, फल–फूल, हरी सब्जीयों का बहुत शौक है। लेकिन समय के साथ–साथ ये सभी प्राकृतिक संसाधन विलुपित की कगार पर आ पहुँचे हैं, जिसके कारण सहरिया जनजाति के समक्ष जीविका का संकट आ खड़ा हुआ है। सहरिया जनजातीय समाज के समक्ष उत्पन्न इसी भयावह समस्या को **विजय कुमार तिवारी इस रूप में रेखांकित करते हैं "शिकार एवं वनोपजों से पूर्व अलमस्त जीवन बीता रहा सहरिया अब वनों के क्षीण हो जाने से दूसरो की मजदूरी कर अनुकम्पा एवं शोषित होकर जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य है।"**[3] सहरिया समाज का जीवन परंपरागत रूप से वन और कृषि पर आधारित रहा है। ये लोग लकड़ी काटने, शहद एकत्र करने, जड़ी बूटियाँ खोजने और छोटे पशुपालन से अपनी आजीविका चलाते आए हैं। सहरिया समाज सामूहिकता पर आधारित है। ये लोग गाँव में रहे या बस्ती में, सभी परिवार एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहते हैं। इनकी सामाजिक व्यवस्था पंचायती परंपरा पर आधारित होती है। यहाँ आज भी कोई विवाद होता है तो वह गाँव के मुखिया के पास जाता हैं। आज भी सहरियों की समाज में स्थिति निम्न है। समाज में उन्हें वह आदर व सम्मान प्राप्त नहीं है जो भील, मीणा व गरासिया जनजाति को प्राप्त है। **वसंत निरगुणे इस संबंध में लिखते हैं "सहरिया अपने आपको गिरे हुए निम्न जाति का मानते हैं। वे अपने को धरती पर अवतरित पहले आदिवासी कहते तो जरूर है लेकिन अन्य आदिवासियों की तरह सहरियाओं में वैसा निजीपन, स्वाभिमान और गौरव नहीं दिखाई देता। यहाँ तक कि भीलो को अपना बड़ा भाई मानते हुए भी सहरियाओं में भीलों की तरह आदिम चमक का अभाव है। इसके मूल में सहरियाओं की निरंतर गिरती सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक स्थिति और परंपरागत उद्योग धंधों का समाज के अन्य तबको द्वारा हथियाना है।"**[4] सहरिया जनजाति का आर्थिक जीवन प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। यह समाज कृषि पर कम आश्रित है। अधिकांश सहरिया समाज भूमिहीन है। ये जंगल और प्रकृति पर आश्रित होते है। ये समाज ज्यादातर कंदमूल, फल, कौदो–सवा, बेर, महुआ के साथ–साथ सहजन का फूल, आम, जामुन, शहद, आंवला आदि वनोत्पाद की बिक्री द्वारा अर्थोत्पादन करता है। यहाँ के लोग 'महुआ' नामक एक फल को जंगल से एकत्र करते हैं, जिससे ये शराब बनाते हैं, जो ये रोज रात को शौक से पीते हैं। यह इनका प्रिय पेय पदार्थ है। यहाँ के लोग भूखे रह सकते हैं पर शराब के बिना नहीं रह सकते हैं। ये लोग जितनी भी आजीविका पूरे दिन में कमाते है उसे उसी दिन खर्च कर देते है। यही कारण है कि यहाँ के लोगों का आर्थिक जीवन बहुत पिछड़ा हुआ है। ये लोग अभी भी आधुनिक चीजों को नहीं अपनाते हैं तथा ना ही पैसा बचाने की सोचते हैं। सहरिया समाज आज भी अन्य जनजातियों के मुकाबले जंगलों में ही निवास करते है। सहरिया जनजाति की इसी प्रवृत्ति के विषय में **बदन सिंह वर्मा लिखते हैं "सदियों से प्रकाश से अछूते वनों के बीच जंगली कंदमूल, फल,**

शाक–पात तथा कौदो सबा खाकर सहरिया जीवन–यापन करते आ रहे हैं। डांडाडाई काश्त करना या पहाड़ों पर जंगल साफ करके ज्वार आदि चोभ कर पैदा करना, जंगल के कंदमूल, कौदों सवां, गुठली सहित बेर कूटकर खाना, घास–पात, महुआ का फूल उबालकर नमक डालकर खाना सहरियों का मुख्य धंधा एवं भोजन था।''[5] किसी भी सामाजिक व्यवस्था में नियमित्तता व नियंत्रण बनाए रखने के लिए संगठन काम करते है। सहरिया जनजाति का कभी भी राजनीति में हस्तक्षेप नहीं रहा, ना ये कभी शासकों के समीप रहे। यहाँ पर साक्षरता दर कम होने से राजनीतिक समझ सीमित है। राजनीतिक दृष्टि से देखें तो हम पाते हैं कि यहाँ कि 'जाति पंचायत' सहरिया जनजातियों की विशिष्ट राजनीतिक संस्था है। मानों यही इनकी सरकार हो। सहरिया समाज का जो भी काम हो जैसे विवाह, नाता–प्रथा, लड़ाई–झगड़ा, दंगा फसाद, आपसी कलह, व्यक्तिगत दुश्मनी या कोई अन्य समुदायें के लोगों के साथ जो भी विवाद हो, उन सबकों यह समाज पंचायत के माध्यम से ही हल करवाते है और यहाँ की पंचायत का हर निर्णय सभी समाज के लोगों को मानना होता है चाहे वो स्त्री हो या पुरूष हो। यही कारण है कि सहरिया जनजाति (समाज) में पुलिस का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है।

सहरिया जनजाति द्वारा किसी भी प्रकार का जो बड़ा और आखिरी निर्णय लिया जाता है वह निर्णय चौरासिया पंचायत करती है। इस जनजाति में हथनरिया, भोपा, बराई, कोटवारा तथा गाँव के वयोवृद्ध सहरिया पंचायत के पाँच पंच के रूप में कार्य करने की भूमिका निभाते हैं। यहाँ पंचायत के जो भी कार्य हो सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक, बिना यहाँ के प्रधान व पंचों के संभव नहीं है। यहाँ का पटेल सभी समस्याओं को गाँव की पंचायत में ही हल करने की पूरी कोशिश करता है। यदि कोई पटेल किसी भी तरह की मनमानी या अपराध कर देता है तो उसे हटा कर नया पटेल चुन लिया जाता है। सहरिया समाज की पंचायतों में महिलाओं का कोई हस्तक्षेप नहीं होता, ना इन्हें वहाँ जाने दिया जाता है। वहाँ के लोगों का मानना है कि ये दूसरे गाँव से आई है। ये यहाँ की सदस्य नहीं मानी जाती है। इस दृष्टि से देखें तो यहाँ के समाज में भी अन्य समाजों की तरह स्त्री को अधिकार नहीं दिए गए हैं, जो–कि इस समाज की स्त्रियों के प्रति रूढ़िवादी सोच को साफ तौर पर दर्शाता है।

सहरिया समाज में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। इस समाज ने भी धार्मिक रीति–रिवाज को अपनाया है। जैसे हिंदू समाज में सभी देवताओं–देवियों को पूजा जाता है, वैसे ही सहरिया समाज में इनके देवी–देवताओं की पूजा की जाती है। ये पहले भगवान के प्रति कम आस्था रखते थे। सहरिया समाज हिंदू धर्म के देवी–देवताओं के अतिरिक्त अपने स्थानीय देवी–देवताओं पर अटूट निष्ठा, विश्वास, आस्था एवं श्रद्धा भाव रखते हैं। ये समाज प्रकृति पूजक है। यहाँ करम देवता, ठाकुरदेव, भैरव बाबा, माता, तेजाजी आदि को पूजा जाता है। सहरियाओं का सबसे प्रिय लोक देवता तेजाजी महाराज है, जिनका चबूतरा प्रत्येक सहराने में देखने को मिलता है। सहरिया समाज में लोगों का अटूट विश्वास एवं श्रद्धा देखने को मिलती है। इनका मानना है कि तेजाजी की पूजा करने से सर्प नहीं काटता। यदि काट ले तो काटे हुए स्थान पर धागा भी बांधते है। तेजादशमी के दिन तेजाजी का मेला लगता है। ''पत्थर पर उत्कीर्ण एक वीर घुड़सवार की जीभ पर साँप काटते हुए दिखाया जाता है। तेजाजी सर्पदंश में रक्षा करने वाले देवता है। सहरिया इसी रूप में तेजाजी को पूजते हैं।''[6] सहरिया समाज वाल्मीकि देव को सहरिया पितृ–पुरूष के रूप में मानते हैं और खुद को उनकी संताने बताते हैं और उन्हें श्रद्धा–भाव से पूजते हैं। सहरियाओं का सबसे बड़ा तीर्थ स्थल 'सीताबाड़ी मंदिर' है। यह सहरियाओं का कुम्भ स्थल भी कहा जाता है। सहरिया समाज की धार्मिक आस्था का एक प्रमुख केन्द्र शाहाबाद में स्थित **'नगरकोट माता जी'** का मंदिर है। यह मंदिर सहरिया समाज के सबसे प्रबल देवी शक्ति के रूप में पूजा जाता है। **''नगरकोट माता जी मंदिर की स्थापना राजा मुकुटमणि देव ने संवत् 1521 में की थी। इस दौरान नगर के चारों ओर परकोटा भी कराया गया। इस आधार पर माता का नाम नगरकोट रखा गया।''[7]** सहरिया समाज में धार्मिक अंधविश्वास बहुत ज्यादा देखने को मिलता है। इस समाज में धार्मिक कुरीतिया कूट–कूट भरी है। गर्भावस्था में मृत्यु, बच्चे की मृत्यु, किसी को जानवर द्वारा खा लिया जाने पर औरत का चुड़ैल बनना, संतान नहीं हो रही है तो देवी के प्रकोप से बचने के लिए झाड़–फूंक, जादू–टोना आदि धारणाएँ सहरिया जनजाति में देखने को मिलती है। सहरियाओं का बलि–प्रथा में भी विश्वास है। **वसंत निरगुणे इस विषय में लिखते हैं ''जादू–टोने, टोटके, तंत्र–मंत्र पर सहरियाओं का अत्यधिक विश्वास है। भूत, चुड़ैल, जिन्न, पलीत की बाधाओं से सहरिया समाज सदैव सशंकित और भयभीत रहता है।''** वस्तुतः सहरिया समाज का धर्म, हिंदू व आदिवासी का मिला–जुला रूप है, जिसमें एक ओर ये हिंदू देवताओं की पूजा करते है

तो दूसरी ओर इनके अपने इष्टदेव तेजाजी, वाल्मीकि, भैरव देव आदि देवी–देवताओं की भी आराधना करते है।

निष्कर्षतः सहरिया जनजाति भारतीय जनजातीय समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसने सदियों से प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन व्यतीत किया है। यह जनजाति राजस्थान की सबसे वंचित लेकिन जीवटता से भरी जनजाति है। आज जब आधुनिकता और विकास की धाराएँ तेजी से आगे बढ़ रही है, सहरिया समाज अभी भी गरीबी, अशिक्षा और उपेक्षा इनकी प्रमुख समस्याएँ है, वही दूसरी ओर जागरूकता, सरकारी योजना और सामाजिक संगठन आदि इनसे कोसों दूर है। सहरिया समाज, आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक पिछड़ापन और राजनीतिक निर्भरता जैसी समस्याओं से जूझने के बावजूद जीवंतता और सांस्कृतिक समृद्धि से ओत–प्रोत है। इस समाज की यही विशिष्टताएँ इसका सामाजिक–सांस्कृतिक लोकवृत्त बनाती हैं जिसमें व्यक्ति व प्रकृति के अटूट संबंधों को स्वीकार किया गया है। सहरिया समाज की ये प्रवृत्तियाँ उसके सांस्कृतिक वैविध्य और विस्तार को दर्शाती है, जिन सबसे मिलकर इसका जीवनदर्शन बना है। सहरिया समाज के लोगों में यही जीवनदर्शन सदियों से प्रवाहमान हैं और ये समाज अभी भी इससे अक्षुण्ण रूप से जुड़ा हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सहरिये, समाज कल्याण विभाग, जयपुर, पृ०सं० 74
2. रामचन्द्र पलात, राजस्थान की वन विहारी जनजातियाँ, पृ०सं० 75
3. विजय कुमार तिवारी, भारत की जनजातियाँ, पृ०सं० 94
4. वसंत निरगुणे–सहरिया, भूमिका अंश, पृ०सं० 2
5. बदन सिंह वर्मा, सहरिया जनजाति का संक्षिप्त परिचय(लेख), पृ०सं० 12
6. बदन सिंह वर्मा, सहरिया जनजाति का संक्षिप्त परिचय(लेख), पृ०सं० 6
7. दैनिक भास्कर, दर्शन के लिए उमड़े श्रद्धालु, शनिवार, 9 अप्रैल 2011, पृ०सं० 14

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 52-54
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

क्षेमेन्द्र साहित्य में प्राप्त चित्रकला : एक अध्ययन

टीना कुमारी
शोधच्छात्रा संस्कृत विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय (जम्मू)

जीवन परिचय– आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने सिद्धान्त "अतृष्णा निजोत्कर्षे.... आत्मश्लाघाश्रुतौ लज्जा ...."[1] का अनुसरण करते हुए यद्यपि अपने सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन प्रस्तुत तो नहीं किया परन्तु इनकी रचनाओं से इनका जीवन पृथ्क नहीं किया जा सकता। बृहत्कथामंजरी,[2] भारतमंजरी,[3] औचित्यविचारचर्चा,[4] तथा दशावतारचरित[5] से ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र के पितामह सिन्धु (सिन्दु) एवं पिता प्रकाशेन्द्र थे। जो एक विप्र अर्थात् ब्राह्मण थे। आचार्य क्षेमेन्द्र के पुत्र का नाम सोमेन्द्र था जिन्होंने अपने पिता की रचना बौद्धावदानकल्पलता की भूमिका में अपने वंष पर प्रकाश डाला है।[6] इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि कश्मीर नरेश जयापीड़ के आमात्य नरेन्द्र के वंश में योगेन्द्र उत्पन्न हुए। योगेन्द्र के पुत्र सिन्धु तथा उनके पुत्र प्रकाशेन्द्र हुए जो क्षेमेन्द्र के पिता थे।

आचार्य क्षेमेन्द्र का अधिक समय समाज में बीता क्योंकि उन्होनें कवि गोष्ठियों एवं विद्वानों के बीच ख्याति पायी थी।[7] महाकवि क्षेमेन्द्र ने सम्भवतः 80 वर्ष की आयु प्राप्त कर ई॰ सन् 1070 के आस–पास अपने पार्थिव शरीर का त्याग किया था।

आचार्य क्षेमेन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने अति विस्तृत विविध साहित्य की रचना की। इस महाकवि ने काव्य, महाकाव्य, उपदेशात्मक काव्य एवं नाटक ही नहीं लिखे, अपितु अलंकारशास्त्र एवं छन्दशास्त्र पर निबन्ध, रामायण, महाभारत, गुणाढ्य की बृहत्कथा, बाण की कादम्बरी एवं वात्स्यायन के कामसूत्र पर सारसंग्रह भी लिखे। इतना ही नहीं, इन्होंने कश्मीर नरेशों का वंशानुचरितश्एवं एक शब्दकोश का भी सृजन किया।

महाकवि के प्राप्त ग्रन्थों की संख्या 19 है जिनका प्रकाशन भी हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थों में 12 रचनाओं का आकार लघु है जिन्हें लघुकाव्य की भी संज्ञा दी जा सकती है। यह निम्नांकित हैं–

1) औचित्यविचारचर्चा 2) कविकण्ठाभरण 3) सुवृत्ततिलक
4) चतुर्वर्ग संग्रह 5) चारूचर्या 6) दपर्दलन
7) सेव्यसेवकोपदेश 8) कलाविलास 9) देशोपदेश
10) नर्ममाला 11) समयमातृका तथा 12) व्यासाष्ठक

निम्नांकित 7 ग्रन्थ बृहत्काय हैं–

13) रामायणमंजरी 14) भारतमंजरी 15) बृहत्कथामंजरी
16) बौद्धावदानकल्पलता 17) नीतिकल्पतरू 18) लोकप्रकाश तथा
19) दशावतारचरित

इसके अतिरिक्त कुछ अप्रकाशित कृतिओं के नाम भी प्राप्त हुए हैं, जिनकी संख्या 15 है और यह भी आचार्य क्षेमेन्द्र की ही कृतियां मानी जाती हैं, इस प्रकार आचार्य क्षेमेन्द्र की कृतियों की संख्या लगभग 34 मानी गयी है।

कला के उपादान– आचार्य क्षेमेन्द्र के समय देश अनेक छोटे–बड़े राज्यों में विभक्त था। हालांकि इन शक्तियों में परस्पर स्पर्धा एवं राज्य विस्तार हेतु यदा–कदा संघर्ष भी होते थे, परन्तु बुद्धिजीवी वर्गों तथा सैनिकों के अतिरिक्त साधारण जनता सामान्यतः निर्वाध रूप से अपने व्यवसायों एवं उद्यगों का परिचालन करते रहते थे। अतः देश में सम्पन्नता एवं समृद्धि के वातावरण में कला को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक था। इसीलिए हम देखते हैं कि क्षेमेन्द्र के समय में भारत के विभिन्न भागों में कला अपने अनगिणत रूपों में पूर्ण रूप से विकसित हुई है।

भारतीय जीवन धर्मापेक्ष रहा है। अर्थ और काम की पूर्ति के लिए धर्मपरमावश्यक है। अतः प्राचीन काल में सामूहिक एवं व्यक्तिगत दोनों रूपों से धर्म की उपासना की जाती थी। धर्म की उपासना के लिए देवालयों का निर्माण करवाना एक पुण्य का कार्य समझा जाता था। शासन एवं समस्त वर्ग अपने आराध्य देवों की पूजा अर्चना के लिए मन्दिरों का निर्माण करवाते थे। अतः उनके संचालन हेतु अतुल धनराशि भी दानस्वरूप भेंट करते थे। मन्दिरों में मूति की स्थापना करना परमावश्यक था। इस प्रकार स्थापत्य–कला एवं मूर्तिकला धर्म के साथ भिन्न–भिन्न रूपों से उत्तरोत्तर विकसित होती चली गयी। प्रसादों एवं मन्दिरों की सजावट के लिए भित्ति चित्रों के निर्माण होते गए जिस कारण चित्रकला को बल मिला। धार्मिक देवी–देवताओं की मूर्तियाँ, धातुओं, प्रस्तर, लकड़ी आदि कला के भिन्न–भिन्न माध्यमों से तैयार की जाती थी। जिसके फलस्वरूप अनेक कलाओं एवं उपकलाओं को प्रोत्साहन मिलता रहा।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने कला पर कोई स्वतन्त्ररूप से ग्रन्थ नहीं लिखा है अतः इनकी कृतिओं में भी तत्कालीन कलाओं एवं उपकलाओं का ज्ञान अधिक नहीं मिलता है, फिर भी उनके ऐतिहासिक तथा सामाजिक वर्णनों में कहीं– कहीं कला के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला गया है। ललित कलाओं में स्थापत्यकला मूर्तिकला एवं चित्रकला के प्रचलित होने के प्रमाण मिलते हैं। साथ ही अनेक उपकलाओं जैसे– धातुकला, काष्ठकला, वस्त्रविन्यास एवं उनकी रंगाई के भी कतिपय उद्धरण प्राप्त होते हैं, इन सभी कलाओं में तत्कालीन शासकों की रुचि थी। अतः इनके समुचित विकास में राज्याक्षय भी प्रदान किए जाते थे।

चित्रकला– आचार्य क्षेमेन्द्र ने शिक्षा प्राप्त करने वाले कवि के लिए चारुचित्रनिरीक्षण अनिवार्य बताया है।[8] क्षेत्रेन्द्र की रचनाओं में विभिन्न स्थानों पर भित्तिचित्रों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। भित्तिचित्रों की प्रथा भारत में प्राचीनकाल से चली आ रही है। अजन्ता, एलोरा एवं वाघ की गुफाओं में निर्मित चित्र इसके साक्षी हैं। भारत के विभिन्न भागों में पाए जाने वाले दशक एवं एकादशशतक के वृत्तचित्र अनेक स्थानों में मिले हैं। कतिपय कलामर्मी ने भारत में प्राप्त चित्रों को फ्रस्कों की संज्ञा दी थी परन्तु भारत की जलवायु को देखते हुए अब यह सिद्ध हो चुका है कि भारत में निर्मित चित्र टेम्परा पद्धति के हैं।

आचार्य क्षेमेन्द्र की कृतियों में भित्तिचित्रों के उदाहरण अधिक मिलते हैं जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि क्षेमेन्द्र के समय कश्मीर में भित्तिचित्रों का प्रयोग अधिक मात्रा में होता होगा। समयमातृका में चिकनी भित्ति पर लिखे इन चित्रों को आंखों के लिए अधिक आकर्षक बतलाया गया है।[9] कलाविलास में भी बड़े–बड़े महलो में भित्तिचित्रों का उल्लेख प्राप्त होता है।[10] स्पष्टतः मन्दिरों पर तथा राजप्रासादों पर यह चित्र बनाए जाते थे।

समयमातृका में आठ प्रकार के रंगों– केसरिया, कुमकुम, सिन्दूर, लाक्षा, गेरुआ, मजीठिया, नीला, पीला का उल्लेख प्राप्त होता है।[11] उस समय के चित्रकार–रंगों के प्रयोग के बारे में पूर्णतया परिचित थे। उन्हें इस बात की पूर्ण जानकारी थी कि कोसरिया रंग भली–भान्ति रक्षित रहने पर स्थायी होता है तथा उपेक्षित होने पर पल भर में नष्ट हो जाता है। स्वभावतः रूखा सिन्दूरी–सिन्दूर सम्बन्धी मेल–अनुराग के साथ मिश्रित होने के बाद ही धारण किया जाता है। कुमकुम रंग पतला–हल्की रहने पर सुखदायक एवं गाढ़ा होने पर दुखदायक होता है आदि।

पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि ईसा की 10वीं एवं 11वीं शताब्दी में चित्रकला के लिए काष्ठफलकों, भोजपत्रों तथा वस्त्रों का माध्यम प्रयोग में लाया जाता था। बृहत्कथामंजरी के अनुसार हंसदीप के राजा मन्दर ने अपनी पुत्री मन्दारवती का चित्र, जो फलक पर बना हुआ था। महासेन राजा के पास तापसी के माध्यम से भेजा। जिसके उत्तर में महासेन ने अपने पुत्र (सुन्दरसेन) का चित्र एक दूसरे चित्रफलक में बनवा कर भेजा था। जिसे देखकर राजा मन्दर ने मन्दरावती को राजा महासेन के पास विवाहार्थ भेजा था।[12] जिससे यह ज्ञात होता है कि विवाह के लिए भी व्यक्तियों के चित्र बनवाए जाते थे जिनसे उनकी आकृति का पूर्ण साम्य होता था।[13]

आचार्य क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्ती राजशेखर ने भी 'एकधारा' नियम के पालन करने की प्रथा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार चित्रकार रेखा को भग्न किये बिना ही एक ही बार में चित्र बनाने में सक्षम थे। इस नियम के पालन में स्त्रियाँ भी प्रवीण एवं सक्षम थी।[14]

सम्भवतः रेखाओं से निर्मित छोटी आकृतियों में भी पूर्णता का आभास कराया जा सकता था। स्पष्टतः चित्र भाव प्रधान होते थे। चित्रकार रेखाओं के कौशल द्वारा अपने कथानकों को पूर्णतया सजीव बनाने मे सक्षम थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कविकण्ठाभरण, 2/13
2. बृहत्कथामंजरी उप॰ 31
3. रामायणमंजरी उप॰ 1, 3
4. औचित्यविचारचर्चा उप॰ 1
5. दशावतारचरित उप॰ 2
6. बौद्धावदानकल्पलता भूमिका, 1/4
7. बृहत्कथामंजरी उप॰ 36
8. कविकण्ठाभरण, 2/6
9. समयमातृका, 4/17
10. कलाविलास, 2/24
11. समयमातृका, 5/4–5
12. बृहत्कथामंजरी, 391–892/1299–1313
13. बृहत्कथामंजरी, 391/1299
14. विद्यशालभंजिका, 1/35

E-mail: teenakumari30797@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 55-58
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

युग चेतना : अर्थ और अवधारणा

देवांश बैरागी
शोधार्थी
शोध केंद्र — शासकीय नर्मदा महाविद्यालय, नर्मदापुरम

मानव सभ्यता का इतिहास घटनाओं का लेखा-जोखा मात्र नहीं वरन उन सामूहिक अनुभूतियों, चिंतन धाराओं और निर्णायक बोधों का सतत प्रवाह है जो किसी कालखंड विशेष की दिशा को निर्धारित करते हैं। दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान, आदि समस्त सांस्कृतिक एवं सामाजिक अवयव इसी प्रवाह की ऊर्जा से अनुप्राणित होते हैं। किसी भी युग के इसी विचार प्रवाह को युग चेतना के नाम से अभिहित किया जाता है। युग चेतना शाब्दिक अर्थ में 'युग के ज्ञान' की तरह प्रतीत अवश्य होती है परन्तु यथार्थ में यह वह निर्णायक शक्ति है जो अतीत और वर्तमान के अनुभवों को संश्लिष्ट करके भविष्य का मार्ग प्रशस्त करती है। युग चेतना मनुष्य की वह संयुक्त चेतना है जो समकालीन प्रवृत्तियों एवं चुनौतियों के समक्ष आवश्यकतानुरूप सक्रिय होती है।

विभिन्न विद्वानों के मतावलोकन से युग चेतना के बहुआयामी स्वरूप एवं इसके अंतर्निहित अर्थ को अधिक विस्तार से समझा जा सकता है। युग की चेतना कोई अमूर्त या दार्शनिक संकल्पना मात्र न होकर मानवीय मन की वह विशिष्ट प्रवृत्ति है जो भौतिक और नैतिक दोनों कारकों से प्रभाव ग्रहण करती है।

युगचेतना मूलतः अनुभव अथवा बोध है जो किसी कालविशेष की परिस्थितियों के संदर्भ में अपना निर्णय देते हुए समाज की उचित मार्गदर्शिका का स्वरूप धारण करती है। हिन्दी विश्व कोश के अनुसार — "युगचेतना युग के शुभाशुभ, सत्यासत्य तथा तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को पहचानने की वह शक्ति है. जो तत्काल बतला देती है कि वांछनीय और उचित क्या है और क्या नहीं? यह अन्तश्चेतना की भाँति नैसर्गिक शक्ति तो नहीं है किन्तु मानव-मन की वह प्रवृत्ति अवश्य है जो सामयिक पर्यावरण से प्रभावित होती है।"[1] सरल अर्थ में यह शक्ति ही युग की मूल प्रवृत्ति को परिचायक है एवं युग के सार तत्वों के अध्ययन एवं मूल्यांकन की सर्वाधिक प्रामाणिक संकल्पना है।

युग की यह विवेकशक्ति अंतश्चेतना की भाँति कोई नैसर्गिक या जन्मजात शक्ति नहीं वरन मानव-मन की वह प्रवृत्ति है जो सामयिक कारकों से प्रभाव ग्रहण करते हुए युग के उज्ज्वल भविष्य की दिशा प्रशस्त करती है। इसी संदर्भ में, युग चेतना को समाज द्वारा स्वीकृत मानवीय और नैतिक आदर्शों की संघटना माना गया है, जिसे समाज में प्रचलित या प्रशंसित होने के कारण व्यक्ति द्वारा स्वयं पर आरोपित कर लिया जाता हैं अनंतर यह आत्म-आरोपण ही व्यक्ति एवं समाज को युग के वृहत्तर परिदृश्य से जोड़ता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि युग चेतना का निर्माण स्वतः स्फूर्त न होकर, विशेष परिस्थितियों, वातावरण और मानवीय प्रतिक्रियाओं का परिणाम है। डॉ. दादूराम शर्मा युग चेतना के उद्भव की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं — "साहित्यकार का व्यक्तित्व गुलाब की तरह होता है। नाना गुणों, विविध गंधो और अनेक वर्षों को अपने में समाहित रखने वाली पृथ्वी से गुलाब अपने व्यक्तित्व के अनुरूप पुष्पों का गुलाबी रंग. मार्दव और सुवास ग्रहण करता है, पत्रों की हरीतिमा लेता है तो काँटों की चुभन भी ग्रहण करता है। साहित्यकार भी बाह्य परिवेश की नैसर्गिक सृष्टि मात्र नहीं होता, वह विधाता की एक सचेतना साभिप्राय कृत्ति है इसलिए वह परिवेशगत चेतना को अपने व्यक्तित्व में डालकर ही ग्रहण नहीं करता है, उसे यथाशक्ति प्रभावित भी करता है।"[2]

समग्रतः युग चेतना एक प्रकार की संगठित प्रतिक्रिया है। यह व्यक्तिगत चेतना का वह सामूहिक रूप है जिसका उद्देश्य युगीन समस्याओं को हल करते हुए परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करना है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में युग चेतना को युगबोध का पर्यायवाची माना जा सकता है। वह लिखते हैं — "यह पर्यावरण इतिहास का युग है. जो काल-विशेष के सन्दर्भ में प्रवृत्ति-विशेष का वाचक हो जाता है और युग का ज्ञान युगचेतना के नाम से अभिहित होता है। अतः युगचेतना युगबोध की पर्यायवाची बन जाती है।"[3] इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक युग एक विशेष प्रवृत्ति या वैचारिक झुकाव (जैसे नवजागरण, छायावाद, प्रगतिवाद) से पहचाना जाता है, और उस प्रवृत्ति का ज्ञान ही उस युग की चेतना कही जाती है। यह चेतना ऐतिहासिक पर्यावरण से उत्पन्न होने के फलस्वरूप काल-विशेष की सीमाओं में बंधी होकर भी अपने प्रभाव में सार्वभौम होती है।

युग चेतना की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी निरंतरता और गतिशीलता है। यह स्थिर अथवा जड़ अवधारणा न होकर एक सतत प्रवाहमान धारा होती है। डॉ. राजेन्द्र वर्मा युग चेतना की इसी अखण्ड और अविच्छिन्न प्रवृत्ति को लक्ष्य करते हुए लिखते हैं — "युगचेतना अखण्ड और अविच्छिन्न होती है। इसका प्रवाह निरन्तर परिवर्तनशील रहता है। यह प्रवाह अपने दोनो छोरों की चेतनाओं को प्रभावित करता हुआ और उनसे प्रभावित होता हुआ सतत गतिशील बना रहता है। इसकी इसी गतिशीलता में इतिहास का काल-विशेष अपने भूत और वर्तमान को एक ही धारा में प्रवाहित होते देखता है और इस धारा में चिन्तन का जो सतत् प्रवाह है उसके प्रभावों मे स्थायित्व का बोध ग्रहण करता है।"[4]

यह प्रवाह किसी बंधन में सीमित नहीं होता; यह अपने दोनों ओर की चेतनाओं को प्रभावित करता हुआ और उनसे प्रभावित होता हुआ सतत गतिशील बना रहता है। इस संदर्भ में, अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों की चेतनाएँ एक-दूसरे से बिंधी हुई होती हैं। युग चेतना एक ऐतिहासिक पुल के रूप में कार्य करती हुई काल के विभिन्न बिन्दुओं को जोड़ती है। यह हमें बोध कराती है कि वर्तमान की चुनौतियाँ अतीत के विचारों से उत्पन्न हुई हैं, और हमारे वर्तमान निर्णय भविष्य की चेतना को आकार देते है। इसी गतिशीलता में, विचार और चिंतन का सतत् प्रवाह स्थायित्व का बोध कराता है। अनंतर कुछ मौलिक आदर्श और मूल्य पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते हैं, यद्यपि उनके प्रकटीकरण का तरीका बदल जाता है। युग चेतना का यह अखण्ड स्वरूप ही साहित्य और दर्शन को कालातीत बनाता है।

युग चेतना किसी एक कारक की निर्मिति नहीं होती वरन यह एक संश्लिष्ट अवधारणा है जो युग की विभिन्न प्रवृत्तियों और शक्तियों के समन्वय से बनती है। डॉ. परमेश्वर दत्त शर्मा इस समन्वय को स्पष्ट करते हुए चेतना के विविध प्रभावक स्तरों का उल्लेख करते हैं। उनके मत में — "युगचेतना के प्रभावक विविध स्तर होते हैं जिनमें राजनीति उसकी मति, समाज उसकी गति, धर्म उसकी रति. सस्कृति उसकी नति. अर्थ उसकी परिणति और काव्य

उसकी प्रतिभूति होते हैं। वह इन समस्त चेतनाओं से प्रभावित होकर युग का जो पूर्ण बिम्ब प्रस्तुत करती है वह अपनी संश्लिष्टता में पूर्ण बिम्ब होता है और उसका मूल्यांकन युगीन इतिहास करता है।"[5] डॉ शर्मा का यह कथन युग चेतना के विभिन्न आयामों की ओर संकेत करता है जिनमें राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ काव्य आदि प्रेरक तत्व अपनी धारा का प्रवाह युगानुरूप निर्धारित करते हैं। इन प्रभावक कारकों में राजनीति को युग की मति अर्थात निर्णय क्षमता की निर्धारक शक्ति कहा जा सकता है किसी भी युग की शासनप्रणाली, सत्ता स्वरूप, एवं आदर्श ही इस चेतना के प्रमुख उद्भावक होते हैं। राजनीति के अतिरिक्त समाज को युग चेतना की गति के रूप में अभिहित किया जा सकता है। समाज वह गति है जिसमें जीवन अपना प्रवाह ग्रहण करता है। सामाजिक संरचना, रीति रिवाज और आपसी संबंधों की संयुक्त प्रेरणा ही युग चेतना को सक्रिय दिशा देते हैं। राजनीति और समाज के पश्चात धर्म युग चेतना में प्रेम एवं सद्भाव का हेतु है, धार्मिक आदर्श और नैतिक मूल्य ही युग की मानवीय चेतना के उत्प्रेरक होते है अंततः यही उत्प्रेरण समाज को संवेदनात्मक गहराई प्रदान करता है।

उपरोक्त समस्त चेतनाओं से संगठित होकर ही युग चेतना युग का एक पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत करती है। यह स्वरूप अपनी जटिलता और संश्लिष्टता में पूर्ण होता है। जो युगीन इतिहास द्वारा मूल्यांकित होता है। सरल शब्दों में युग चेतना वह एकीकृत दृष्टिकोण है जो किसी भी कालखंड की समग्रता को व्यक्त करता है।

युग चेतना की सबसे महत्वपूर्ण उपयोगिता उसकी मार्गदर्शक की भूमिका में निहित है। यह भूमिका परिस्थितियों की वर्तमान गति तक ही सीमित न होकर उनके भविष्य की दिशा तक विस्तृत होती है।

युग चेतना हमें वह अंतर्दृष्टि प्रदान करती है जिससे है युग के वांछनीय एवं अवांछनीय तत्वों का सहज ही ज्ञान हो जाता है। यह ज्ञान हमारी निर्णय शक्ति को अपरिमित विस्तार प्रदान करता है। निर्णय की यह शक्ति तब और अधिक आवश्यक हो जाती है जब समाज बहुविध संकटों, वैचारिक संघर्षों और नैतिक दुविधाओं से आविष्ट होता है। उदाहरण के लिए, 19वीं सदी में, युग चेतना ने अंधविश्वास और रूढ़िवादिता के विरुद्ध 'नवजागरण' का मार्ग सुझाया वहीं 20वीं शताब्दी में, राजनीतिक पराधीनता के विरुद्ध 'स्वतंत्रता संघर्ष' का निर्णय दिया।

युग चेतना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि यह मनुष्य द्वारा स्वीकृत सामाजिक और नैतिक आदर्शों का संयुक्त रूप होती है। जब कोई व्यक्ति किसी सामाजिक आदर्श को अपनाता है, तो वह अनजाने में ही उस युग चेतना का हिस्सा बन जाता है जो सामूहिक रूप से उस आदर्श को प्रशंसित कर रही होती है। इस प्रकार, युग चेतना व्यक्तियों को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में उचित 'मति' और 'गति' प्रदान करके एक सामूहिक उद्देश्य की ओर प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

निष्कर्षतः, युग चेतना एक बहुआयामी और गत्यात्मक अवधारणा है। यह किसी कालखंड के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पर्यावरण से उद्बुद्ध होने वाली वह संगठित मानवीय चेतना है, जो उस युग के शुभाशुभ का निर्णय देती है।

यह अखण्ड और अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में भूत, वर्तमान और भविष्य को एक धारा में पिरोकर अपनी गतिशीलता में युगबोध की पर्याय बन जाती है। अपने विभिन्न प्रभावक स्तरों के समन्वय से यह एक संश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत करती है।

निष्कर्षतः युग चेतना केवल युग की प्रवृत्तियों को पहचानने की शक्ति नहीं, वरन परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने और समस्याओं का समाधान खोजने का सामूहिक संकल्प है। यह वह अनिवार्य मार्गदर्शक है जो किसी भी युग के

मनुष्य को उसकी तात्कालिक चुनौतियों के बीच वांछनीय और उचित का पथ दिखाता है, और यही वह शक्ति है जो सभ्यता को निरंतर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

शोध संदर्भ —

1. हिंदी विश्वकोश (भाग - 4) पृष्ठ - 282
2. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर का तुलनात्मक अध्ययन — पृष्ठ 42
3. हिंदी साहित्यकोश (भाग - 1) पृष्ठ - 319
4. हिंदी साहित्यकोश (भाग - 1) पृष्ठ - 280
5. हिंदी रामकाव्य की युग चेतना — पृष्ठ - 5

व्हाट्सएप नंबर — 9753578060

ईमेल — devanshbairagibudni@gmail.com

पता — न्यू कॉलोनी बुदनी मध्यप्रदेश पिन 466445

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 59-64
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

CONDTIONS OF WOMENS IN MEDIEVAL INDIA- AN ANALYSIS

ARUNA NAGUL
(Student, B.A. 3rd Semester),
Department of Arts & Humanities,
Kalinga University, Kotni, Naya Raipur (C.G.)
Dr. ABHISHEK AGRAWAL
Assistant Professor,
Department of History,
Faculty, Arts & Humanities,
Kalinga University, Kotni, Naya Raipur (C.G.)

Medieval India was not only the age of kings, battles and empires but also a period which shaped the lives of ordinary people. The condition of women is an important part to study. During Delhi sultanate and Mughal period women position was influenced by religion, social customs and family tradition. Practices like child marriage, dowry, sati, Johar, polygamy and purdah affected their daily life. Education for women was limited and most of the women do household duties. A few women from royal and noble families played an active role in politics and society such as Razia sultana, Gulbadan Begum and Nur Jahan.

CONDTIONS OF WOMENS IN SULTNATE PERIOD

In Delhi sultanate period women condition was not as high as used to be an ancient India. No women were allowed to enjoy an independent status. Before marriage she was under the strict supervision of her father. After marriage she was under the supervision of her husband and after his death. She was under in her grownup sons.

SOCIAL CONDTIONS OF HINDU WOMEN IN SULTNATE PERIOD

(i) **CHILD MARRIGE**- The practice of child marriage was prevalent during the Delhi sultanate. Due to fear from Muslims and other kinds of high handedness new rules were made to enforce early marriage of girls. Girls marriage was started at the age of 7,10 and 12 years. Tradition of marrying sons and daughters at the age of young become so common in lower castes of Hindu society. In Dhola maru there is a mention of Marwari girl getting married to a 3-year-old boy at the age of 1.5 years. there was no provision for marrying at the young age in almost all the classes and castes of Hindu society.

(ii) **DOWRY SYSTEM** – Dowry system prevalent in Hindu society. Generally, this practise was followed in the rich and prosperous class. the practice also come to general classes in partial form. the dowry depended on the economic and social status of the parties concerned. Dowry was generally used in two forms namely

(1) The dowry which was given before marriage, such as coconut betel leaf and tilak etc.

(2) The dowry which was given after marriage such as items given at the time of farewell.

These are known contemporary reference. Chandravardai mentions the giving of crumb etc. before the marriage of Prithviraj Chohan and Indravati. After the marriage dowry was presented at the time Gouna or Rukhsat. Ample dowry was given along with the bride. At this time there was also a practise of giving farewell to the groom at some places, which become his property. These gifts were given in the form of Daij according to the social status of both the parties which include ornaments, precious diamonds, property, horses, elephant, chariots attendants and as well as luxury items. The practice of dowry or Dahej was called Jatuk in Bengal.

(iii) **POLYGAMY**- Polygamy was a problem in the Hindu society. Polygamy was prevalent among the Hindu rich. According to Hindu sculptures any Hindu could marry more than once according to caste Brahmins could marry four times Kshatriyas three times Vaishyas two times and Sudras could marry once. According to nicolo Conti only one marriage was prevalent in central India but others parts of the country polygamy was prevalent in royal families. Mulla daud has mentioned 84 Queens of rai Mohan in Chandrayan and Chandravardai has describe Prithviraj Chauhan as having polygamy.

(iv) **PURDAH SYSTEM**- Purdah system was especially prevalent among medieval women. This practice is found in both Hindu and Muslims women, Radheshyam thinks that before the arrival of Muslims in India the practice of keeping women in Pradha was prevalent in Hindu society. Hindu women used to cover their faces with saree, dupatta or chadar and used to stay away from the eyes of all other men. When women saw a stranger, they would pull their head cloth towards their face and cover it with a veil to save themselves from the evil eyes of Muslims the practice for wearing along veil gradually increased among Hindu women.

(v) **DIVORCE SYSTEM**- Divorce was very complex in Hindu society, Manu has written that the traditional loyalty of husband and wife should continue till death. This is ultimately duty of husband and wife. This matter of divorce remained unheard of the religious scriptures and Hindu society for about thousands of years. The tradition of divorce become the popular in lower castes. Kautilya has written that the Hindu marriages have brahma, Prajapatya, Arsha and Deva marriages Hence divorce is not possible in these marriages, But the marriages are of Gandharava, Ashura and Paishacha type then divorce from each property is possible. A.S Altekar has written that even among the Hindus of ancient India was provision for divorce in a special case. Alberuni writes Hindu the Separation of husband of wife happened only through the death because their was no practise of divorce was prevalent in ancient tradition.

(vi) **SATI PRATHA**- Many ancient references of Sati Pratha are found similarly references to the sati tradition are found in the inscription of later Gupta period. Similarly, Bana has given a reference to sati tradition. This tradition become even stronger in medieval period. The burning of a widow on the death of her husband the widow would enter the fire with his ashes or Sandals and become sati. Generally, the sati tradition was prevalent in royal families and nobles. Mitakshara has considered the sati tradition equally beneficial for women from brahmins to chandalas but has prohibited a woman who is pregnant or has small children not becoming a sati.

Medieval writers Al Biruni, Ibn Battuta and Amir khusaro etc, have mentioned the practices of sati. According to Al Biruni if someone husband died she could not remarry. She either had to live as a widow for the rest of her life or become sati. Due to fear of widowhood and bad treatment of widow in society the preferred to become a sati. Amir Khusro has written that Hindu Women used to burn themselves for their husband. Ibn Battuta has written about this practice in details according to him which the permission of the sultan was first required to burn a widow.

After the Sultans permission the widow was wear jewellery and she was fully adorned. After this she was taken to the pyre in a procession. Before the widow sat on the pyre her jewellery was removed and given away as charity. After the widow would take a bath and wear a thick dhoti. Many people would prepare a pyre at one place and start lighting the fire in it. After this as soon as widow enter in fire of pyre than people would stand around the pyre with bamboo sticks, the widow jump in the fire of the pyre. People present there would intensify the fire of the pyre by throwing wood on it music would start playing and people would remain present there till the time until the dead body of the widow turns to ashes.

(vii) **JOHAR PRATHA**- Jauhar was a very gruesome custom which was generally prevalent in brave Rajput families. However, there are indication of this custom in other families as well. The word Jauhar seems to originated from Jatu Griha is used to means a house made of lac and other inflammable substances which was built to turn the Pandavas by keeping them detailed description of Jauhar are found in contemporary literature.

In medieval India wives used to commit Jauhar to protect their Chastity so that they are not insulted by the enemy after their husband defeat in the war. K.M Ashraf has rightly written that in the war of that time there was no agreement for behaving gently or any mutual acceptance for treating prisoners of war and the will of victor. self-respect of Rajput could not accept such a humiliating situation. The cruelty of the Muslim warriors the barbarity and inhumanity of that era was absolutely, extraordinary in itself in such a situation the practise of Jauhar gained strength. Generally, when the Rajput kings and chieftains got disappointed while fighting the Muslim enemy and saw defeat approaching they forced their women and children to commit Jauhar and sacrificed their lives while fighting the enemy. In Jauhar women would jump into the fire to protect their chastity and get burnt or women and children were killed by the Rajput or they would be locked in an underground chamber (enclosure) and set on fire, due to which they would burn and Rajput would jump into the war wearing saffron clothes. Rajput used to sacrifice their lives while fighting.

(viii) **DEVDASI TRADITION**- During this period the Devadasi tradition was prevalent in Hindu temples from the very beginning. It is known from the records and the descriptions of foreign travellers that the Devadasi's used to sing devotional songs and dance in the temples. With time this tradition become traditional. Women used to work as attendants in royal places.

(ix) **WOMEN CLASSES DIVISION**- If you look carefully the status of women in different classes of this period is different. The women society of this period was generally divided into three classes

(1) women of the elite class
(2) women of the middle class
(3) women of the lower caste

We will find that the socio-economic condition and tradition of women of different classes were different these visible. Women of the elite class lived in mansions and inner places. They

were respected there according to their position and prestige. Still their life was restricted there. They could not go out of there without permission of their men it was not possible for them to move freely. The situation of women of the middle class in society was different. While performing their familial role they were not completely imprisoned in the family. but they did not have the comforts and facilities that women of the elite class had. Most of the women of this class remained busy in their household work. They considered fulfilling this their responsibility towards the family as their religion. They felt happy in fulfilling this religion. In their family they were the better half of their husband the mother of their son. They had natural respect in society, any family ritual remained incomplete in its absence. They also took interest in art and literature. They were quite independent.

In Hindu society women of lower class used to work outside the house to earn their livelihood in addition to their household chores. Women of farmers used to help their husband in agricultural work. Women of this class also do hard labour work. They also take the financial burden of their family. Such women used to do ploughing sowing seeds, harvesting, picking cotton, spinning yarn, making baskets, making Roop, grinding flour and pounding rice etc. if seen they were the pivot of rural economy. They used to feel happiness in serving the family and society.

(x) **EDUCATION OF HINDU WOMEN-** The status of women in society is largely based on the standard of education. Education makes a man a human being. Equality between men and women is certainly talked about, but were women ever equal in the field of education? Even if women have received education it is only to few women of upper class. Were Hindu women given proper education before the arrival of Muslims. It is true that in the Vedic period Apala and Ghosha composed some hymns who belonged to enlightened families. If seen women never received equal education like men. Even in ancient times women education was limited.

In the Hindu medieval period women did not have the general facility to receive education. They were taught music and dance in addition to literature, philosophy logic. whenever education women received during this period it was received only in highly and royal families. Ordinary women were illiterate. Whatever freedom they had to study art literature it was only in Higher families. This is the reason that in the Hindu medieval period all the female poets who become artists like Indulekha, Sheela, Subhadra and Lakshmi etc. were from affluent families.

SOCIAL CONDITIONS MUSLIM WOMEN CONDITION IN SULTANATE PERIOD

At the time when Islam emerged in Arabia the status of women was degraded there. Women were considered slaves. Before the advent of Islam Arab people considered the birth of a girls in the family as bad. As soon as she was born they buried her alive in the ground. People used to keep not just one but many wives. When a person who had many wives, died his son or other people divided those women like a property.

(i) **CHILD MARRIAGE-** The marriage age was not fixed in Muslim families. Usually parents worry about the marriage of their girl in her childhood itself. The tradition become popular in Muslim society with the time. According to Amir Khusro Khizr khan and Deval rani were married when they only 10-8-year-old. Afiq has written that during the region of Firoz shah Tughluq people used to marry their sons and daughters at the age of young.

(ii) **DOWRY STSTEM-** Dowry system was especially prevalent in Hindu society with the time this system also came into Muslim society. this practice become popular among Muslims by the name of dowry. This practice also got recognition from the Quranic references. There is a reference in the Quran that every woman starts her married life as the owner of some property. According to Hazrat Muhammad it is

necessary to give dowry to every woman, whom she marries whether she is a free woman or a war prisoner or an orphan woman. This system got strength on the land of India and dowry become prevalent among Muslims like Hindus and this practise become symbol of social pride among them.

(iii) **POLYGAMY-** In medieval period keeping more than one wife become the tradition in Muslim family. Hence it was not possible for Islam to stop it. Many men were killed in wars hence the number of widows increased. This was resolved by polygamy. In Islamic tradition four marriage are considered valid. But the rich people were not satisfied even with just four marriages. They marry many times for their luxury, sultans and rich people had not one but many wives in their Haram (place where wives and queens lived).

(iv) **PRADHA SYSTEM-**The custom of Pradha was very complex in Muslim families and there was a provision of separate dress for it. We find many references to Pradha of Muslim women in contemporary literature. The custom of Pradha Muslims can be assessed from this story, Fakhruddin Mubarak Shah describes the amusing plight of a Hindu slave girl of Bahram shah the Ghaznavid ruler of Lahore in this way- that girl had fallen and had to be treated by doctor but doctor insisted on examining her body and checking her pulse. The ruler was informed about this. The ruler was become very upset on seeing this situation and after many convincing agreements he permitted the doctor to examine the girls face and hands on the condition that they should not be exposed too much in front of him. Amir Khusro while referring to the Pradha system on his works has written that "the best women is the one who follows the Pradha tradition and wear a Burqa on her face. Women should observe Pradha in their homes even if it is as small the hole of a needle". Sultana Razia was an exception to a Pradha system.

The Pradha system had taken root in the Muslim society. This is this the reason why the sultans of Delhi tried to keep the Pradha system in practice. Sultan Firoz Tughluq was the first ruler of Delhi who prohibited women from visiting the graves situated outside the city of Delhi. Sikandar Lodi also prohibited women from visiting the tombs. Even the Muslim women used to go out in Dholi Palki and Chaudol which were completely covered.

(v) **DIVORCE-** The practices of divorce (talaq) was prevalent in Muslim families. Barbosasa writes that whenever they want they can divorce their wife by giving the money agreed at the of marriage. The wife also has right. It is quiet, possible that this Muslim practice influenced the lower. In Islam marriage was not considered an unbreakable bond, hence divorce is easily possible. Any man could divorce his wife by pronouncing the word Talaq three times. The wife did not have right to divorce like the husband. But if she want could divorce with the consent of husband. In Muslim society men had more freedom to divorce than women. This gives an idea of the pitiable condition.

(vi) **EDUCATION OF WOMEN-** Muslim women education was limited and largely shaped by religion, class and social customs. Most of the Muslim women given only basic education. They are mainly reading the Quran, learning Arabic, Persian, and religious law (shariah) their education considered important only for making them good wives and mother in accordance with Islamic values. Elite and royal class women of the sultanate take education like literature, poetry, calligraphy and statecraft. But theirs was no proper information about women education during sultanate period. Sultan Iltutmish's daughter Razia was proficient in Arabic and Persian. She knew the Quran by heart Razia was also proficient in military

education. Sultans and noble had made arrangement for the education of their daughter, but there was no proper arrangement for women education in this period.

(vii) **RELIGIOUS ROLE-** The Islamic rules regarding the women were flexible. Muhammad Sahab had said that all women and girls can participate in Eid namaz, but this did not happen they were forced to stay within the four walls of the house. They were kept in the harem where their number was in thousand.

(viii) **POLITICAL ROLE**- In Delhi Sultanate period women had limited role in politics because society was male dominated. Some exception where women directly involved in political affairs. Women of royal household influenced the sultan through personal advice, diplomacy and court politics.

RAZIA SULTANA:- The famous political woman of sultanate. Daughter of Iltutmish become the only woman to sit on the throne of Delhi. She ruled independently and laid army and broke purdah tradition.

WOMEN CONDITION IN MUGHAL PERIOD

The condition of women became worse in the Mughal period. Purdah system, child marriage, sati system and polygamy increased. The girls of high families were married for political convenience and not keeping in mind their prospects. Th ey spend her life in the environment of neglect, insult, and disrespect and many times they had to become the sati after the death of her husband.

CONCLUSION

The position of women in medieval India under the Delhi sultanate and Mughal empire, remained largely restricted by social customs and patriarchal control for women in both Hindu or Muslim societies. Practices such as child marriage, dowry and limited access to education. Hindu women often additional burden of sati and Johar, while Muslim women lived under purdah system. Muslim women by Islamic law enjoyed certain legal rights in matters of property and divorce. Which Hindu women were generally denied. Hindu women of royal households sometimes influenced politics through matrimonial alliance with the ruling class. The lives of elite women both Hindu and Muslim show that they exercise power and enjoy privilege like Razia sultana, Nur Jahan and Gulbadan Begum. But the condition of common women was not good. Always they lived under the men of their house.

References:-

1. Shrivastava, A.L., “The Mughal Empire”, S.L. Agrawal & Co. Agra, 1969.
2. Prasad, Ishwari, “Medieval India”, Surjeet Publications, Delhi, 2018.
3. Tripathi, R.P., “Rise & Fall of Mughal Empire”, Surjeet Publications, Delhi, 2012.
4. Chitnis, K.N., “Socio-Economic History of Medieval India”, Atlantic Publishers, New Delhi, 2017.
5. Prasad, Ishwari, “A short History of Muslim Rule in India”, Surjeet Publications, Delhi, 2018.
6. Mahajan, V.D., “History of Medieval India: Sultanate & Mughal period”, S. Chand Publications, New Delhi, 1991.

arunanagul62@gmail.com
abhishek.agrawal@kalingauniversity.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 65-69
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी एकांकी साहित्य के विकास में डॉ. रामकुमार वर्मा का योगदान

डॉ. दिलचंद राम
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
घाटशिला महाविद्यालय, घाटशिला

भूमिका– हिंदी साहित्य के विकास में गद्य साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान रहा है और गद्य में एकांकी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य में एकांकी का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र युग से माना जाता है। इसका विकास चार काल खंडों में हुआ है–

1) प्रथम उत्थान (1870 ई. से 1900 ई. तक)
2) द्वितीय उत्थान (1901 ई. से 1936 ई. तक)
3) तृतीय उत्थान (1937 ई. से 1947 ई. तक) और
4) चतुर्थ उत्थान (1948 ई. से 1975 ई.)

हिंदी एकांकी के प्रथम उत्थान में सर्व प्रमुख स्थान भारतेंदु जी का है। इन्होंने लघु नाटकों के अतिरिक्त पूर्ण नाटकों की भी रचना की। 'पाखंड विडंबना', 'धनजय', 'विषस्य– विषमौषधम', 'माधुरी', 'भारत–दुर्दशा', 'प्रेम योगिनी', 'नील देवी', 'अंधेर–नगरी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' आदि भारतेंदु ने लघु नाटक लिखे, जिन्हें निर्विरोध एकांकी माने जा सकते हैं। विषय–वस्तु की दृष्टि से भारतेन्दु के एकांकियों को प्रमुखतः चार भागों में विभक्त किया जा सकता है – ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक और हास्य–व्यंग्य प्रधान एकांकी।[1]

एकांकी लेखन के क्षेत्र में डॉ. रामकुमार वर्मा की देन–

एकांकी लेखन के क्षेत्र में भारतेंदु के बाद डॉ. रामकुमार वर्मा का स्थान सर्वोपरि है। डॉ. रामकुमार वर्मा तृतीय उत्थान के एकांकीकार हैं। उन्होंने एकांकी लेखन के क्षेत्र में जो काम किया है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। वह चिर–स्मरणीय में रहेगा।

डॉ. रामकुमार वर्मा प्रसादोत्तर एकांकीकारों में सर्वप्रथम स्थान रखते हैं। उन्होंने आधुनिक एकांकी के परिष्कृत एवं प्रौढ रूप देने में प्रचुर योगदान दिया है। अब तक उनके लगभग 100 एकांकी प्रकाशित हो चुके हैं। उनके प्रमुख एकांकी संग्रह इस प्रकार हैं– 'पृथ्वीराज की आंखें', 'रेश्मि टाई', 'चारुमित्रा', 'विभूति', 'सप्त–किरण', 'रूप रंग', 'रजत–रश्मि', 'दीपदान', 'ऋतुराज', 'रिमझिम', 'इंद्रधनुष' 'पांच जन्य', 'कौमुदी महोत्सव', 'ध्रुवतारिका', 'जूही के फूल' आदि।[2]

डॉ. रामकुमार वर्मा का प्रथम एकांकी 'बादल की मृत्यु' सन् 1930 के 'विश्वामित्र' में प्रकाशित हुआ था। श्री कृष्ण दास जैसे कुछ समीक्षकों ने इसे हिंदी का प्रथम एकांकी माना है। जबकि वेदपाल खन्ना विमल, डॉ. नागेंद्र, बच्चन सिंह आदि ने आधुनिक एकांकी का प्रारंभ 'एक घूंट' से मानते हैं ।

किंतु रामनाथ सुमन ने 'चारुमित्रा' की भूमिका में लिखा है– ''श्री राम कुमार वर्मा हिंदी एकांकीनाटक के जन्मदाताओं में हैं। उनका सबसे पहला एकांकी 'बादल की मृत्यु' है जो सन 1930 में लिखा गया था। इसे एकांकी नाटक की अपेक्षा गद्य काव्य कहना अधिक उचित होगा। इसमें कथानक का प्रायः अभाव है, जो एकांकी की रीढ़ है।[4]

'बादल की मृत्यु' एक दृश्य का साहित्यिक एकांकी है। इसके पात्र निर्जीव हैं, स्थान पश्चिम का आकाश, संध्या का समय, आकाश के पश्चिम उत्तर सीमा प्रांत पर रंगीन बादल बिखरे हैं। बादल संध्या को रोकना चाहता है। संध्या रूकने में असमर्थ है। वह कहती है दो स्वतंत्रता चाहने वाली नारी एक स्थान पर नहीं रह सकती।

संलापों के माध्यम से बादल की मृत्यु का संकेत कर देना ही एकांकीकार का अभीष्ट रहा है, इसमें गद्यात्मक और पद्यात्मक दोनों तरह के संलापों का व्यवहार हुआ है।

डॉ. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकांकियों में 'पृथ्वीराज की आंखें', 'चारु मित्रा', 'समुद्रगुप्त पराक्रम', 'औरंगजेब की आखिरी रात', 'तैमूर की हार', 'दुर्गावती', 'वासवदत्ता', 'राजश्री', 'विक्रमादित्य', 'वाजिद अली शाह', 'वीर जवाहर', 'बापू', 'बादशाह अकबर का दीन–ए–इलाही', 'दीपदान', 'शिवाजी', 'कॉमेडी', 'महोत्सव', 'मर्यादा की बेदी पर', 'भाग्य नक्षत्र', 'कलंक रेखा', 'प्रतिशोध', 'उदयन', 'स्वर्ण श्री', 'बदम्ब या विष', 'पानीपत की हार' आदि प्रमुख हैं।

वर्मा जी ने 'रजत रश्मि' की भूमिका में स्वयं ही लिखा है कि इस (ऐतिहासिकता) दिशा में इतिहास के अध्ययन के साथ तत्कालीन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की पूरी तैयारी करनी पड़ी है।[5]

'पृथ्वीराज की आंखें' एकांकी में पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गौरी की तराइन के युद्ध का वर्णन है, जिसमें पृथ्वीराज को हार के बाद पकड़ लिया जाता है और उनकी दोनों आंखें निकालकर गौर देश के जेलखाने में डाल देने की ऐतिहासिक कथा है।

'औरंगजेब की आखिरी रात' एकांकी में औरंगजेब की वृद्धावस्था की असह्य पीड़ा को दर्शाया गया है, जिसमें उसकी बेटी वहीं बैठी है। हकीम की दवा भी उसे निरोग करने में असमर्थ है। औरंगजेब पागल की तरह बड़–बड़ा उठता है। वह मुराद, दारा, शुजा और अपने पिता से क्षमा मांगता है। उस समय का एक संताप देखा जा सकता है– ''जन्नत मेरी बेटी! इस जिंदगी के चिराग में अब तेल बाकी नहीं रहा। इस खाक के पुतले को कफन और ताबूत की जबाइश की जरूरत नहीं....। इस बदनसीब को जमीन में यूं ही दफन कर देना.....।[6]

'तैमूर की हार' एकांकी में एक बालक– बालकरण की साहस और वीरता को दिखाया है। वह एक चाकू लेकर तैमूर से लड़ने के लिए खड़ा हो जाता है। इस घटना से तैमूर का दिल पसीज जाता है और वह अपनी तलवार झुका लेता है।

'दुर्गावती' एकांकी में महारानी दुर्गावती, उसके पुत्र और दीवानों की वीरता एवं कौशल का चित्रण हुआ है। 'वासवदत्ता' इतिहास प्रसिद्ध नर्तकी वासवदत्ता और भिक्षु उपगुप्त के जीवन पर आधारित है। 'श्री विक्रमादित्य' और 'समुद्रगुप्त प्राक्रमांक' में विक्रमादित्य और समुद्रगुप्त के चरित्र पर क्रमशः प्रकाश डाला गया है। 'वाजिद अली शाह' का इतिवृत्त अवध के नवाब वाजिद अली शाह के जीवन से संबंध है। 'वीर जवाहर' भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल के राजनीतिक जीवन से संबंधित है। 'विजय श्री' पर आधारित यह एक रूपक है जिसमें महान प्रतिभा के प्रति पंडित जवाहरलाल नेहरू को इस देश के नवनिर्माण का विधायक माना गया है।

डॉ राम कुमार वर्मा के सामाजिक एवं पौराणिक एकांकियों में – '18 जुलाई की शाम', 'एक्ट्रेस', 'आंखों का आकाश', ' कहाँ से कहाँ', 'चंपक', ' आशीर्वाद', 'इलेक्शन', 'उत्सर्ग', 'एक तोले हकीम की कीमत', 'कलाकार का सत्य', 'दस मिनट ', 'नमस्कार की बात', 'नहीं का रहस्य', 'परीक्षा', 'पुरस्कार', 'प्रेम की आंखें', 'फीमेल पार्ट', 'फेल्ट हैट', 'बादल की मृत्यु', 'रंगीन स्वप्न', 'रजनी की रात','रूप की बीमारी', 'रेशमी टाई', 'सही रास्ता', 'अंधकार' , 'नारी की वैज्ञानिक परीक्षा', 'राजरानी' 'सीता', 'छोटी सी बात', 'भारत का भाग्य' आदि प्रतिनिधि रचनाएं हैं। उनके सामाजिक एकांकियों के संबंध में डॉ. रामचरण महेंद्र का विचार है कि ''कला की अभिव्यक्ति तथा निर्माण के लिए जीवन का अंतरराष्ट्रीय अंतरतम कोष उद्घाटित किया जाए, लेकिन इंद्रियों के व्यवधान से रहित होकर मुक्त हो जाए तथा वह अपने स्पंदन में नक्षत्र की संगीत की लय भर सकेव यह सब तभी संभव है जब कलाकार अपनी विविध ज्ञानेंद्रिय को एक ही समय के धरातल पर ले आए तथा संसार के प्रत्येक गति में एक सम का अनुभव करे।..... जीवन के विविध दिशाओं में जाने वाले

रेखाओं में भी एक अखिल चित्र का रूप ले सके, जो सत्य हो सुंदर हो और कल्याणकारी हो।''[7] डॉ. रामकुमार वर्मा ने प्रकृति में जीवन की समरसता उपस्थित करने का प्रयत्न किया है।[8]

वर्मा जी ने 'ऋतुराज' की भूमिका में यह स्पष्ट लिखा है– ''एकांकीकार एक विशिष्ट संवेदना पर उंगली रखना चाहता है। जीवन के साधारण–से–साधारण धरातल पर उतर वह सत्य को छोड़ देती है और जीवन के विस्तृत आकाश में विद्युत बनकर समा जाती है। सत्य के तार पर वह अंगुली की चोट है जिससे जीवन का संगीत गूंजता है और तार की पतली रेखा से निकलकर समस्त दिशाओं को मुखरित कर देता है।''[9]

जीवन की वास्तविकता ही एकांकी का आधारशिला होना होनी चाहिए। आज के प्रगतिशील एकांकीकारों का या लेखकों को अश्लीलता के किनारे बैठकर साहित्य के नाम पर वासनाओं का अश्लील नृत्य देखना उनके लिए सामाजिक खतरा होगा उन्हें परियों के देश से इस कला को निकाल कर वास्तविकता के धरातल पर अपने एकांकियों की रचना करनी चाहिए तभी वह समाज में पथ प्रदर्शन के रूप में आगे आ सकते हैं, अन्यथा उनकी रचना आधुनिक न होकर परंपरागत हो जाएगी और रद्दी की टोकरी में फेंक देने के सिवा और कुछ नहीं होगी। सामाजिक और वर्ग गत आवश्यकताओं का बोझ साहित्य को बहुत दूर तक नहीं चला सकता।[10]

डॉ. रामकुमार वर्मा ने सामाजिक एकांकियों की कथावस्तु शिक्षित मध्यवर्गीय समाज के यथार्थ जीवन से ली है। इसका प्रथम सामाजिक एकांकी 'बादल की मृत्यु' है। इसके बाद 'चंपक' की रचना हुई इस रचना में एकांकीकार का व्यक्तित्व निखर कर सामने आया है। इसमें किशोर एक कवि है। उसकी कविता अपने चंपक नामक कुत्ते के सुनहरे बालों सी सुंदरी है। इसमें कवि का चरित्र–चित्रण अत्यंत ही मार्मिक और हृदय ग्राही ढंग से किया है। इसमें प्रायश्चित, अपराध, ममता तथा कर्तव्य का संघर्ष दर्शनीय है एक्ट्रेस में एक ऐसी अभिनेत्री का अभी नया आत्मिक चित्र खींचा गया है जो पति द्वारा उपस्थित होकर फिल्म जगत में प्रवेश करती है। वहाँ एक शिरोमणि होकर भी पति प्रियना और भारतीय नारी के हृदय से पवित्रता बनाए रखती है। उसका पति पत्नी के विद्रोह से ठीक रास्ते पर आता है, किंतु उसके हृदय को पुरानी स्मृतियाँ झकझोरती और एक्ट्रेस प्रभा कमल कुमारी की बातों में आकर आत्महत्या कर लेती है। 'नहीं का रहस्य' की कथावस्तु 55 वर्षीय एक अविवाहित प्रोफेसर हरि नारायण से संबंध है; किंतु उसके नहीं का वास्तविक अर्थ लगाते हैं और लड़की की शादी कहीं अन्यत्र हो जाती है। दूसरी बार वह हरि नारायण शादी करने से इनकार कर देता है; क्योंकि वह पहली लड़की से ही शादी करना चाहता था; किंतु उसके पिता ने नहीं का रहस्य नहीं समझा। हरि नारायण की वेदना को वर्मा जी ने इसमें इस नाटकीय ढंग से समझाया है कि दर्शक का अंतर हृदय भी इस वेदना से रो उठता है। 'दस मिनट' का कथानक एक बहन और भाई से संबंध रचना है इसमें बलदेव एक आदमी की हत्या कर देता है। वह केशव है। केशव बलदेव के घर में उनकी बहन से बलात्कार करने आता है। बलदेव उसे देख लेता है और उसकी हत्या कर देता है। इसके बाद उसे लाश को एक झोपड़ी में छुपा कर बलदेव अपने अभिन्न मित्र महादेव के यहाँ जाता है। बलदेव उस लाश की आंखों में छूरा घुसेडने को कहा, क्योंकि इसी कार्य से उसकी मैली दृष्टि को वास्तविक सजा मिलेगी। वह ऐसा करने जाता है किंतु पुलिस उसे वहाँ पकड़ लेती है। वह कहता है– सच्चा अपराधी वह नहीं, 10 मिनट बाद आएगा और महादेव स्वयं बलदेव का कपड़ा पहनकर चला जाता है।

'परीक्षा' एकांकी में एक पतिपरायण, विवाहिता भारतीय नारी की कथा अंकित है। इसमें भारतीय नारी के आदर्शों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा है। इसमें जवानी और बुढ़ापे की परीक्षा है। कुतूहल का चुंबक पाठक के मन को खींचने लगता है। इसमें सस्पेंस इतना अधिक है कि धैर्य टूटने लगता है। हम जानने के लिए उत्सुक होते हैं कि आगे क्या होगा, जब लेखक रहस्य को खोलता है तो नाटकीय गति शिथिल पड़ जाती है, किंतु थोड़ी ही देर में नाटक की गति तेज हो जाती है। इसका भी कई बार मंचन हो चुका है। इसमें वर्मा जी ने रंगमंच के चित्र भी दिए हैं। इसी आधार पर अन्य एकांकियों के मंच भी सजाये जा सकते हैं।

'उत्सर्ग' में वैज्ञानिक आविष्कार की पृष्ठभूमि पर एक मानवीय कथा कही गई है। इसमें डॉ. शेखर एक वैज्ञानिक है। वह छाया से प्रेम करता है किंतु अपने मित्र की विधवा पत्नी और उसकी पुत्री की सेवा के लिए वह छाया से शादी नहीं करता। छाया इस आघात को सह नहीं सकी और वह आत्महत्या कर लेती है।

शेखर ने एक यंत्र बनाया है, जिससे मृतक व्यक्ति से बातें की जा सकती है। इस यंत्र पर छाया आती है और कहती है कि – वह उस उपकरण को नष्ट कर दे, नहीं तो तुम्हारे मित्र, पुत्र मंजुल को इस संसार से उठा ले जाएगी। शेखर ऐसा ही करता है। यही उत्सर्ग है।

'रजनी और रात' में स्त्री स्वतंत्रता पर प्रकाश डाला गया है। 'रूप की बीमारी' में रूपचंद की कहानी है, जो कुसुम नामक लड़की पर आशिक है, वह बीमारी का बहाना कर बिस्तर पर पड़ा रहता है। अंत में डॉक्टर से ऑपरेशन की बात सुनकर वह अपनी बीमारी का राज खोल देता है। '18 जुलाई की शाम' इसमें एक नारी की कथा है जो अपने पति को गरीब जानकर छोड़ देने का निश्चय करती है। वहीं अन्य नारी के मुंह से अपने पति की उदारता को सुनकर पुनः रास्ते पर आ जाती है। उसमें नारी के हृदय परिवर्तन की नाटकीय मोड़ दिया है। 'राजरानी सीता' और 'भारत का भाग्य' एकांकी मानस के क्रमशः सीता हरण और राम का लंका से लौटना इन्हीं कथाओं पर आधारित है। 'अंधकार' उनका एक दार्शनिक एकांकी है इसमें दृष्टि की बात कही गई है। इसी प्रकार 'एक तोले अफीम' में वैवाहिक समस्या, 'सही रास्ता' में मिल मजदूरों को चूसने वाले मिल मालिक आदि की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है।

डॉ रामकुमार वर्मा के सामाजिक एकांकियों में प्रायः एक दृश्य रखा गया है और संकलनत्रय का निर्वाह हुआ है। पात्रों की मनोवैज्ञानिकता पर वर्मा जी की दृष्टि सदा रही है। कथा का अनावश्यक विस्तार कहीं नहीं हुआ है और मंचीय दृष्टि से सभी अभिनेय ह कहीं–कहीं पर गीतात्मकता उभर कर आई है, किंतु वह नाटकीयता में कहीं बाधक नहीं है।

डॉ रामकुमार वर्मा की एकांकी की भाषा –

डॉ रामकुमार वर्मा की भाषा की बात करें तो हम पाते हैं कि उनके पत्रों की भाषा सहज सरल और पाठक ग्रह थी पत्रों के मनोभावों के वर्णन में वर्मा जी सिद्धार्थ हैं स्टेज पर रूप सजा रंग संकेत प्रेक्षक आदि पर उनका ध्यान सदा रहता है। पात्रों की संख्या के संबंध में उन्होंने स्वयं लिखा है– रंगमंचीय एकांकी में पात्रों की संख्या अधिक से अधिक चार या पांच होनी चाहिए। इसमें भी प्रधान पात्र दो या एक ही हो सकते हैं, क्योंकि दो या एक से अधिक पत्रों के चरित्र की मार्मिकता के प्रदर्शन के लिए एकांकी में स्थान नहीं रहता। पत्रों को नाटकीय घटना से विशेष संबंध होना चाहिए। घटना की गति–विधि में प्रत्येक पात्र का समुचित योग हो। केवल मनोरंजन के लिए अनावश्यक पात्रों का कोई स्थान नहीं है।[11]

भाषा के प्रयोग में डॉ. रामकुमार वर्मा बड़े सिद्धहस्त हैं। वे अपने पात्रों के मुंह से उनकी भाषा नहीं छीनते। उनके सभी सामाजिक एकांकियों में पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग मिलता है। बंगाली पात्र अंग्रेजी मिश्रित हिंदी बोलता है। ग्रामीण पात्र अपनी बोली में बात करते हैं। पंडित संस्कृत भाषा का प्रयोग करता है और उर्दू पात्र पारसी–उर्दू शब्दों का व्यवहार करते हैं। इस प्रकार उनके सामाजिक एकांकियों की भाषा पूर्ण रंगमंचीय है। वे काल–पात्र को दृष्टि में रखकर भाषा का प्रयोग करते हैं। इस संबंध में डॉ. रामचरण महेंद्र का मत है कि– ''जिस वातावरण में जो पात्र सांस ले रहा है, उसी वातावरण के अनुकूल भाषा का प्रयोग कर स्वाभाविकता की रक्षा की गई है। यहाँ तक नाटककार उसके पीछे दृष्टिगत नहीं होता। जहाँ पात्र सुरक्षित हैं, वहाँ भाषा परिष्कृत, संयत और विशुद्ध हिंदी है। जहाँ मुसलमान हैं, उर्दू–फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करते हैं। जहाँ निम्न स्तर के पात्र हैं, वहाँ साधारण भाषा को काम में लाते हैं। स्वाभाविक रूप से कवि होने के कारण कहीं–कहीं भाषा में सौंदर्य की भी झलकियाँ हैं।''[12]

निष्कर्ष– इस प्रकार हम देखते हैं कि एकांकी लेखन के क्षेत्र में डॉ. रामकुमार निसंदेह वर्मा बेजोड़ है, अद्वितीय हैं। डॉ. वर्मा जी के गीतों पर आधारित भावनात्मक एकांकी की बात करें तो 'सूर–संगीत' का नाम आता है, जिसमें निर्देशक कथा–सूत्र को जोड़ता है। उसके पात्र हैं– निर्देशक, हरिराय जी, सूरदास, महाप्रभु, स्त्री और बालक। इसके सारे संगीत ब्रजभाषा के विभिन्न राग–रागिनियों में है। इसका एक अंश देखा जा सकता है –

''नयों नेह, नयो गेह, नयो रस, नवल कुंअरी, बृषभान, किशोरी।
नया पीतांबर, नई चुनरी, नई–नई खुंदनि, भींगति गोरी।।
नए कुंज, अति पुंज, नए द्रुम, सुभग यमुन–जल पवन हिलोरी।
सूरदास प्रभु नव, रस विलसत, नवल राधिका यौवन भोरी।।''

डॉ. वर्मा जी हास्य–व्यंग्य एकांकी भी लिखे हैं; जिसमें 'चक्कर का चक्कर' एक है। इसमें सिर्फ पुरुष पात्र ही हैं। इसमें मृत्यु के अंधविश्वास को नाटक का आधार बनाया गया है। भैरव इसमें नौकर का काम करता है। श्याम मोहन से राम बहादुर ब्रजकिशोर अपनी लड़की की शादी कराना चाहते हैं। इसी उद्देश्य से वह अपने नौकर भैरव के साथ श्याम के घर जाते हैं। शाम को चक्कर आता है। उस पर उसकी माता भूत बनकर आती है। भैरव उसे सेंड को उठकर फूंक के द्वारा उसे भूत को अपने गंगाजली में बंद कर देता है। यही चक्कर का चक्कर है। इसमें 'मैंने कहा' तकिया कलाम से हास्य की उत्पत्ति हुई है। भैरव ब्रज भाषा बोलता है और अन्य पात्रों की भाषा खड़ी बोली है। इसमें सरल रंगमंचीय उपकरणों का सहारा लिया गया है।

''मैं और हूँ'' डॉ. रामकुमार वर्मा जी का प्रौढ़ों के मनोविज्ञान पर आधारित हास्ययुक्त एकांकी है। यह वर्मा जी के प्रौढ़ मस्तिष्क की प्रौढ़ उपज है। शब्दों और अर्थों के खींचतान के मध्य हंसी के गुब्बारे प्रस्फुटित हो मानव ह्रदय में एक गुदगुदी भर देते हैं।

''हीरे के झुमके'' में भी व्यंग्य का प्रादुर्भाव हुआ है। इसमें व्यंग को ही आधार लेकर लिखा गया है। डॉ. रामकुमार वर्मा जी ने लिखा है– ''हीन ग्रंथि की प्रक्रिया में यह एक सभ्य विद्रोह है। पाटवस्त्रा व गुंठित पदत्राण है। गुलाब के बीच में कांटा है। अर्थ उल्टे वाली चुंबक लेकर वार्तालाप के धनुष पर चढ़ जाता है और अपने प्रहार से घटनाओं की दिशा ही बदल देता है। हमारे संस्कृत नाटकों में जब किसी विदूषक पर विपत्ति आती है, तब उसे करुणा की नहीं हंसी की सृष्टि होती है'।[13]

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ. रामकुमार वर्मा के एकांकियों का साहित्यिक के साथ ऐतिहासिक महत्त्व अधिक है। उन्होंने आधुनिक एकांकी के शिल्प और रंगमंचीय कला के विकास में विशेष योगदान दिया है।

संदर्भ संकेत–

1. 'हिंदी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन', भुवनेश्वर प्रसाद, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ संख्या 112
2. वही, पृष्ठ संख्या 167
3. 'हिंदी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन', वेदपाल खन्ना, विमल प्रकाशन पृष्ठ संख्या 301
4. 'चारुमित्रा' एकांकी संग्रह', 11 वाँ संस्करण,राम नाथ सुमन, साधना सदन, प्रयाग प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 8–9
5. 'सप्त रश्मि', डॉ रामकुमार वर्मा, नेशनल इनफोरमेशन एंड पब्लीकेशन लिमिटेड प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 20
6. 'हिंदी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन', भुवनेश्वर कुमार, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 171
7. प्रतिनिधि एकांकीकार डॉ. राम चरण महेंद्र, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 55
8. 'मैं और मेरी कला', धर्मयुग, फरवरी, 1951.
9. 'ऋतुराज', डॉ रामकुमार वर्मा, राजपाल एंड संस प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 13
10. वही, पृष्ठ संख्या 12
11. आठ एकांकी : डॉ रामकुमार वर्मा, राजपाल एंड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका से पृष्ठ संख्या (घ), (ड•)
12. 'प्रतिनिधि एकांकीकार', डॉ. रामचरण महेंद्र, राजपाल एंड संस प्रकाशन, नई दिल्ली। पृष्ठ संख्या 73
13. 'जूही के फूल', डॉ. रामकुमार वर्मा, राजपाल एंड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 10–11

मोबाइल नंबर – 9431559318

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 70-74
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

झारखण्ड आंदोलन के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक भूमिका का अध्ययन (1912–2000)

देवेन्द्र महतो
शोधार्थी,
इतिहास विभाग, राधा गोविन्द विश्वविद्यालय, रामगढ़

सारांश (Abstract)

यह शोधपत्र 1912 से 2000 के बीच चले झारखण्ड आंदोलन के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आयामों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह आंदोलन केवल राज्य गठन की माँग तक सीमित नहीं था, बल्कि आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक पहचान, परंपराओं की सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार, सामाजिक अस्तित्व तथा राजनीतिक स्वायत्तता के व्यापक संघर्ष का प्रतीक था। झारखण्ड आंदोलन के संदर्भ में 'सामाजिक न्याय' एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवधारणा है, क्योंकि यह आंदोलन केवल राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई नहीं था, बल्कि आदिवासी और मूलवासी समुदायों के सामाजिक अधिकारों, सम्मान और बराबरी की माँग का भी प्रतीक था। सांस्कृतिक पहचान की रक्षा ने आंदोलन को भावनात्मक, नैतिक और सांस्कृतिक आधार प्रदान किया, जिसने जनता को एकजुट किया और अंततः झारखण्ड राज्य निर्माण की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाई।औपनिवेशिक शासन, औद्योगीकरण और बाहरी सांस्कृतिक प्रभावों के कारण जब इन परंपराओं को चुनौती मिलने लगी, तब झारखण्ड आंदोलन ने सांस्कृतिक पहचान की रक्षा को अपने मूल उद्देश्यों में शामिल किया। अध्ययन में आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसके विभिन्न चरणों, नेतृत्व व संगठनों की भूमिका, सांस्कृतिक जागरण, भाषा और परंपरा के महत्व, राजनीतिक रणनीतियों तथा राज्य निर्माण की प्रक्रिया को विस्तार से विवेचित किया गया है। यह शोध स्पष्ट करता है कि झारखण्ड आंदोलन सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना और राजनीतिक आकांक्षाओं का ऐसा सशक्त सम्मिलन था, जिसने अंततः वर्ष 2000 में झारखण्ड को एक पृथक राज्य के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कुंजी शब्द : सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक पहचान, भाषाई अस्मिता, राजनीतिक स्वायत्तता ।

भूमिका (Introduction)

झारखण्ड भारत के पूर्वी भाग में स्थित एक प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ सदियों से विभिन्न आदिवासी समुदाय निवास करते आए हैं। इन समुदायों में उराँव, संथाल, मुंडा, हो, बिरजिया, असुर, पाहन आदि प्रमुख हैं। झारखण्ड की पहचान इसकी विशिष्ट संस्कृति, परंपराओं, भाषाओं, लोककलाओं और पारंपरिक शासन व्यवस्था के कारण अन्य राज्यों से भिन्न रही है।

औपनिवेशिक शासन के दौरान इस क्षेत्र में संसाधनों के अत्यधिक दोहन, भूमि अधिग्रहण, वन अधिकारों के हनन, मजदूरों के शोषण, सांस्कृतिक विघटन और सामाजिक विषमताओं ने स्थानीय आदिवासी समाज में गहरा असंतोष उत्पन्न किया। यही असंतोष धीरे-धीरे एक संगठित प्रतिरोध में बदलता गया और 20वीं सदी के आरंभ में एक व्यापक एवं दीर्घकालिक आंदोलन के रूप में उभर कर सामने आया। झारखण्ड आंदोलन की जड़ें 1912 में बृहत्तर बिहार प्रांत के गठन के विरोध से शुरू होकर 1930 के "झारखण्ड पार्टी" के उदय और 1970–1990 के वर्षों में उग्र राजनीतिक संघर्षों तक फैली हुई हैं । आंदोलन मूलतः तीन आधारों पर खड़ा था- सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता और राजनीतिक स्वायत्तता।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

झारखण्ड आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारतीय उपमहाद्वीप के उपनिवेशकालीन शासन और उसके पूर्व अस्तित्व में रही आदिवासी सामाजिक संरचना से जुड़ी हुई है। छोटानागपुर क्षेत्र में मुंडा, उराँव, संथाल, हो, आदि आदिवासी समुदाय सदियों से जल–जंगल–ज़मीन पर आधारित सामुदायिक जीवन जीते आए थे। उनकी सामाजिक संस्थाएँ-परहा, माना, मांझी-परगनैत, अखड़ा आदि-स्थानीय स्वशासन और सामाजिक नियंत्रण की मजबूत इकाइयाँ थीं। लेकिन ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ भूमि-प्रशासन, जंगल-नीति और कर-प्रणाली में बड़े बदलाव किए गए, जिसने पारंपरिक जीवन-व्यवस्था को गंभीर रूप से प्रभावित किया।

1793 के स्थायी बंदोबस्त, 19वीं सदी के राजस्व कानूनों और वन अधिनियमों ने आदिवासी समाज को उनकी जमीनों से विस्थापित करना शुरू कर दिया। इस दमन के विरोध में उलगुलान (मुंडा विद्रोह), संथाल हूल और तमाड़ विद्रोह जैसे बड़े आंदोलनों ने जन्म लिया। 1912 में बिहार-उड़ीसा प्रांत के गठन के बाद यह असंतोष राजनीतिक दिशा की ओर बढ़ा। 1915 में आदिवासी महासभा का गठन और आगे चलकर झारखण्ड पार्टी का उदय (1950) इसी लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा थे। इस प्रकार झारखण्ड आंदोलन की जड़ें सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों के उस इतिहास में निहित हैं जिसने 2000 में झारखण्ड राज्य गठन का मार्ग प्रशस्त किया।

सामाजिक न्याय (Social Justice)

झारखण्ड आंदोलन के संदर्भ में 'सामाजिक न्याय' एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवधारणा है, क्योंकि यह आंदोलन केवल राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई नहीं था, बल्कि आदिवासी और मूलवासी समुदायों के सामाजिक अधिकारों, सम्मान और बराबरी की माँग का भी प्रतीक था। सदियों से झारखण्ड के आदिवासी समाज को बाहरी शासन, जमींदारी अत्याचार, भूमि-अधिग्रहण, आर्थिक शोषण और सामाजिक उपेक्षा का सामना करना पड़ा। इसी ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध सामाजिक न्याय की चेतना विकसित हुई।

सामाजिक न्याय का मूल उद्देश्य था- आदिवासी समाज को समान अवसर उपलब्ध कराना, शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार में बराबरी सुनिश्चित करना, जल–जंगल–ज़मीन पर उनके परंपरागत अधिकारों की रक्षा, विस्थापन और शोषण की नीतियों को समाप्त करना, उनकी सांस्कृतिक पहचान, भाषा, रीति-रिवाज और धर्म का सम्मान स्थापित करना ।

सांस्कृतिक पक्ष (Cultural Dimensions)

सांस्कृतिक चेतना झारखण्ड आंदोलन की सबसे मजबूत नींव थी। आदिवासी समाज अपनी भाषा, संगीत, नृत्य, धर्म, अनुष्ठान, त्योहार और पारंपरिक शासन व्यवस्था (जैसे परहा पंचायत, मांगवरी प्रथा) से गहराई से जुड़ा हुआ है। सांस्कृतिक पहचान की रक्षा ने आंदोलन को भावनात्मक, नैतिक और सांस्कृतिक आधार प्रदान किया, जिसने जनता को एकजुट किया और अंततः झारखण्ड राज्य निर्माण की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाई।औपनिवेशिक शासन, औद्योगीकरण और बाहरी सांस्कृतिक प्रभावों के कारण जब इन परंपराओं को चुनौती

मिलने लगी, तब झारखण्ड आंदोलन ने सांस्कृतिक पहचान की रक्षा को अपने मूल उद्देश्यों में शामिल किया। "हम कौन? झारखण्डी!" जैसे नारों ने इस पहचान को राजनीतिक और सामाजिक स्वर दिया ।

राजनीतिक विकास (Political Developments)

राजनीतिक रूप से झारखण्ड आंदोलन कई चरणों से गुजरा-

(क) प्रथम चरण (1912–1930)- 1912 के बाद झारखण्ड की अलग पहचान बननी शुरू हुई। जयपाल सिंह मुंडा ने 1930 में 'आदिवासी महासभा' का गठन किया।

(ख) दूसरा चरण (1930–1960)- जयपाल सिंह के नेतृत्व में "झारखण्ड पार्टी" का उदय।1952 के चुनावों में बड़ी सफलता।केंद्र सरकार ने राज्य निर्माण का प्रस्ताव ठुकराया।

(ग) तीसरा चरण (1970–1990)- शिबू सोरेन के नेतृत्व में "झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM)" सक्रिय हुआ। खनन क्षेत्रों में मजदूर अधिकार, विस्थापन और भूमिहीनता के मुद्दे उठे।AJSU जैसे छात्र संगठन उभरे। आंदोलन कई बार उग्र चरणों से गुज़रा।

(घ) अंतिम चरण (1990–2000)- केंद्र सरकार में गठबंधन राजनीति के कारण झारखण्ड राज्य निर्माण का मार्ग प्रशस्त हुआ।15 नवंबर 2000 को झारखण्ड भारत का 28वाँ राज्य बना।

भाषाई अस्मिता (Linguistic Identity)

भाषाई अस्मिता झारखण्ड आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण आधारशिलाओं में से एक रही है। झारखण्ड की सांस्कृतिक विविधता उसकी भाषाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है—कुरुख, मुंडारी, संथाली, हो, खड़िया, बिरहोर, भूमिज, कुरमाली, नागपुरी, पंचपरगनिया, खोरठा इत्यादि। ये भाषाएँ केवल संचार का माध्यम नहीं हैं, बल्कि समुदायों की परंपरा, ज्ञान, सांस्कृतिक स्मृति और इतिहास की संरक्षक भी हैं। उपनिवेशकाल और बाद के वर्षों में इन भाषाओं को शिक्षा, प्रशासन और सामाजिक प्रतिष्ठा से दूर रखा गया। हिंदी और अंग्रेज़ी के प्रभुत्व ने स्थानीय भाषाओं को पीछे धकेल दिया। स्कूलों में मातृभाषा-आधारित शिक्षा का अभाव, सरकारी कार्यों में स्थानीय भाषाओं की उपेक्षा और मीडिया में सीमित स्थान ने भाषाई अस्मिता के संकट को और गहरा किया।

भाषाई अस्मिता की रक्षा के प्रयासों ने झारखण्ड आंदोलन को एक मजबूत भावनात्मक और सांस्कृतिक आधार दिया। भाषा संरक्षण ने लोगों में अपनी जड़ों, परंपराओं और सामाजिक एकता के प्रति जागरूकता बढ़ाई। 1980–90 के दशक में यह मुद्दा आंदोलन का प्रमुख हिस्सा बन गया, जिसमें मातृभाषा शिक्षा, साहित्यिक विकास, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, लोकगीत–नृत्य और क्षेत्रीय भाषाओं को सरकारी मान्यता दिलाने की मांग प्रमुख रही।

आर्थिक मुद्दे (Economic Issues)

खनन, उद्योगों और वन अधिग्रहण के कारण बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ। इससे सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ बढ़ीं। झरिया, धनबाद, बोकारो, चाईबासा, रामगढ़ तथा हजारीबाग क्षेत्रों में खनन कार्य ने स्थानीय अर्थव्यवस्था को बदल दिया। आर्थिक संघर्ष के मुख्य कारण: भूमि अधिग्रहण, वन अधिकारों का हनन ,असंगठित श्रमिकों का शोषण, खनन कंपनियों का नियंत्रण, ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था का ह्रास । इन सबने आंदोलन को और अधिक मजबूत दिशा प्रदान की।

आंदोलन में महिलाओं की भूमिका: झारखण्ड आंदोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। ग्रामीण और आदिवासी महिलाओं ने जल, जंगल, जमीन के सवाल पर व्यापक स्तर पर संघर्ष किया। मुख्य योगदान:- सांस्कृतिक आयोजनों में नेतृत्व - रैली, धरना, प्रदर्शन में सक्रिय भागीदारी - विस्थापन विरोधी आंदोलनों में अग्रणी भूमिका - शिक्षा और महिला अधिकारों के मुद्दों को आंदोलन की मुख्यधारा में लाना ।

राज्य निर्माण की प्रक्रिया: कई दशकों के संघर्ष के बाद 1990 के दशक में राजनीतिक परिस्थितियाँ अनुकूल हुईं। केंद्र में गठबंधन सरकार बनने से क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्वपूर्ण हुई। अंततः 2 अगस्त 2000 को संसद में 'झारखण्ड राज्य विधेयक' पारित हुआ और 15 नवंबर 2000 को नया राज्य अस्तित्व में आया।

राजनीतिक स्वायत्तता (Political Autonomy)

झारखण्ड आंदोलन की वैचारिक और संरचनात्मक नींव में 'राजनीतिक स्वायत्तता' एक केंद्रीय तत्व रहा है। आदिवासी समाज सदियों से अपने पारंपरिक स्वशासन तंत्र-जैसे परहा पंचायत, मांझी-परगनैत व्यवस्था, मागे पाट, अखड़ा व्यवस्था-के माध्यम से स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की स्वतंत्र प्रणाली का पालन करता आया था। लेकिन ब्रिटिश शासन और बाद में भारतीय प्रशासनिक ढांचे ने इन परंपरागत संस्थाओं को कमजोर किया, जिससे राजनीतिक स्वायत्तता छिनने लगी।

1912 के बाद बिहार–उड़ीसा प्रांत का हिस्सा बनने से झारखण्ड क्षेत्र के लोग महसूस करने लगे कि उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना और प्रशासनिक जरूरतों को राजनीतिक स्तर पर उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल रहा है। इसी असंतोष ने राजनीतिक स्वायत्तता की मांग को जन्म दिया। 1930–40 के दशक में आदिवासी महासभा और फिर 1950 में झारखण्ड पार्टी के गठन ने राजनीतिक स्वायत्तता के प्रश्न को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किया। जयपाल सिंह मुंडा ने यह स्पष्ट कहा था कि झारखण्ड की विकास प्रक्रिया तभी सफल होगी, जब यहाँ की जनता को अपने क्षेत्र के शासन और संसाधनों पर निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त होगा। राजनीतिक स्वायत्तता का अर्थ केवल पृथक राज्य बनाना नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक ढांचा था जिसमें शामिल थे - स्थानीय प्रशासन पर झारखण्डी समुदायों का अधिक नियंत्रण, प्राकृतिक संसाधनों (जल–जंगल–ज़मीन) पर निर्णय लेने की स्वतंत्रता,विकास परियोजनाओं में स्थानीय समुदाय की प्राथमिक भागीदारी,आदिवासी क्षेत्रों के लिए विशेष स्वशासी परिषदों की स्थापना, शिक्षा, रोजगार और सांस्कृतिक नीतियों में क्षेत्रीय प्राथमिकताओं को मान्यता।

अंतत:कई दशकों के संघर्ष के बाद 1990 के दशक में राजनीतिक परिस्थितियाँ अनुकूल हुईं। केंद्र में गठबंधन सरकार बनने से क्षेत्रीय दलों की भूमिका महत्वपूर्ण हुई। अंततः 2 अगस्त 2000 को संसद में 'झारखण्ड राज्य विधेयक' पारित हुआ और 15 नवंबर 2000 को नया राज्य अस्तित्व में आया।

इस प्रकार, राजनीतिक स्वायत्तता झारखण्ड आंदोलन का लक्ष्य ही नहीं, बल्कि उसकी आत्मा थी- जिसने पूरे क्षेत्र के लिए पहचान, सम्मान और अधिकारों की नई दिशा तय की।

निष्कर्ष (Conclusion)

झारखण्ड आंदोलन भारत के सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता और राजनीतिक स्वायत्तता की उत्कट आकांक्षाओं का वह संगठित रूप है, जिसने लगभग एक शताब्दी तक संघर्ष की निरंतरता को जीवित रखा। आदिवासी समाज ने अपनी भूमि, जल, जंगल और जीविका पर हो रहे हस्तक्षेप, विस्थापन, आर्थिक शोषण और सांस्कृतिक उपेक्षा के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोध विकसित किया। आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि आदिवासी समुदायों की सामुदायिक जीवनशैली, परंपरागत स्वशासन, सामूहिक निर्णय और प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार की अवधारणा से निर्मित थी। सांस्कृतिक स्तर पर यह संघर्ष अपनी भाषा, लोकगीत, रीति-रिवाज, त्योहार, परंपराओं और सामाजिक संरचना की रक्षा का माध्यम बना।

आंदोलन ने यह सिद्ध किया कि जब कोई समुदाय अपनी संस्कृति, भाषा और जीवन-मूल्यों की रक्षा के लिए एकजुट होता है, तब परिवर्तन अनिवार्य रूप से संभव होता है। 2000 में झारखण्ड राज्य का गठन इसी सामूहिक संघर्ष की ऐतिहासिक विजय है। झारखण्ड आंदोलन का ऐतिहासिक महत्व केवल एक नए राज्य के निर्माण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सम्मान, सांस्कृतिक संरक्षण और राजनीतिक अधिकारों के लिए जनशक्ति की एक अनूठी मिसाल प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची :

1. रॉय, एस.सी. (1912). द मुंडाज़ ऐंड द उराँवज़ ऑफ छोटानागपुर. रांची: मैन इन इंडिया ऑफिस।
2. रॉय, एस.सी. (1915). द उराँव्स ऑफ छोटानागपुर. रांची: कैथोलिक प्रेस।
3. एल्विन, वेरियर (1944). द ट्राइबल वर्ल्ड ऑफ वेरियर एल्विन. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. गुहा, रामचंद्र (1983). एलीमेंटरी ऐस्पेक्ट्स ऑफ पीज़ेंट इन्सर्जेंसी इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. शाह, घनश्याम (2002). सोशल मूवमेंट्स इन इंडिया: ए रिव्यू ऑफ लिटरेचर. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन।
6. मिन्ज, पी.ओ. (2000). आदिवासी अस्मिता और झारखण्ड आंदोलन. रांची: ज्ञान पथ प्रकाशन।
7. भारत सरकार (2000). झारखण्ड पुनर्गठन अधिनियम, 2000. नई दिल्ली: भारत का राजपत्र।
8. सेन, सुनील (1978). भारतीय मजदूर वर्ग और झारखण्ड आंदोलन. कलकत्ता: प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स।
9. ओ'मैली, एल.एस.एस. (1918). जिला गजेटियर: रांची. कलकत्ता: बंगाल सचिवालय प्रेस।
10. एक्का, एलेक्सियस (1997). "झारखण्ड आंदोलन और उसका सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 75-79
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Agricultural productivity and its Regional Imbalances of the world

Naresh Kumar Meena
Phd Research Scholar,
Jayoti Vidyapeeth Women's University Vedaant Gyan Valley

Abstracts
Agricultural productivity remains a cornerstone of global food security, economic development, and rural livelihoods, yet it exhibits pronounced regional imbalances shaped by structural, economic, environmental, and institutional factors. This paper synthesizes recent research to elucidate the multifaceted nature of agricultural productivity disparities, focusing on the formal-informal sector divide, geographic heterogeneity, and the implications for policy and sustainable development.
Recent studies reveal that the so-called agricultural productivity gap (APG) commonly observed in developing countries is largely a reflection of the divide between formal and informal non-farm sectors rather than agriculture versus non-agriculture per se. For example, in India, productivity differences are driven primarily by a small formal non-farm sector, while informal non-farm employment—comprising 63 to 75% of workers—is often no more productive than agriculture itself. This reframes the APG as a formal-informal economic divide, underscoring the need for policies that address informality to boost rural incomes and productivity (ScienceDirect, 2025).
At the global scale, regional disparities in agricultural productivity are stark. High-income regions such as Europe, Central Asia, and North America maintain technological and productivity advantages, while many countries in the Global South, particularly in sub-Saharan Africa and parts of Asia, lag due to low productivity levels. This gap depresses global averages and highlights the critical need for targeted fiscal and technological support to these regions. Upper-middle-income countries demonstrate potential to overcome productivity traps through increased investment and innovation, suggesting that strategic resource allocation can mitigate regional imbalances (MDPI Sustainability, 2022).
Keywords: agricultural productivity gap, regional disparities, formal-informal sector divide, agricultural modernization, ecological products, rural development, China, India, Global South, farm consolidation, sustainable agriculture.

Introduction

Agriculture remains the backbone of global food security, economic development, and rural livelihoods, yet its productivity varies dramatically across regions, shaping profound disparities in income, food availability, and sustainable development. This introduction explores the

multifaceted nature of agricultural productivity, the causes and consequences of its regional imbalances, and the urgent need for targeted policies to bridge these gaps in the face of mounting global challenges.

Agricultural productivity, broadly defined as the output generated per unit of input such as land, labor, or capital, is a critical determinant of a country's socio-economic progress. According to the Food and Agriculture Organization (FAO), the world population is projected to reach 10 billion by 2050, intensifying pressure on agricultural systems to produce more food sustainably. However, productivity growth is unevenly distributed, with stark contrasts between developed and developing regions. For instance, North America boasts some of the highest labor productivity globally, producing about 10% of the world's agricultural output with less than 0.25% of the global agricultural labor force, driven by mechanization, advanced technologies, and robust infrastructure. In contrast, many countries in the Global South, particularly in sub-Saharan Africa and parts of Asia, face persistent low productivity levels due to limited access to technology, poor infrastructure, and climatic vulnerabilities.

The regional disparities in agricultural productivity are shaped by a complex interplay of natural, technological, economic, and institutional factors. Climatic conditions such as temperature, rainfall patterns, and soil quality fundamentally influence crop yields and farming viability. Regions with temperate climates and fertile soils, like the U.S. Midwest or parts of Europe, enjoy higher productivity, while arid and semi-arid zones struggle with water scarcity and soil degradation. Climate change exacerbates these challenges by increasing the frequency of extreme weather events, altering growing seasons, and intensifying evapotranspiration, which threatens crop stability and productivity especially in vulnerable regions.

Statement of the Problem

Agricultural productivity remains a cornerstone for economic growth, food security, and rural development worldwide. Despite its critical importance, productivity growth has slowed significantly in recent years, with the 2024 Global Agricultural Productivity Report revealing a global annual growth rate of only 0.7%, far below the 2% target necessary to sustainably meet the food demands of a projected 10 billion people by 2050. This slowdown poses a serious threat to global food security and rural livelihoods, especially in developing regions.

A major challenge lies in the pronounced regional imbalances in agricultural productivity. These disparities manifest both between and within countries, driven by uneven access to technology, infrastructure, capital, and knowledge. For example, research on China's agricultural technology innovation capacity shows stark contrasts between eastern provinces, which lead in innovation and productivity, and western regions, where capacities remain low and development uneven. Such intra-national disparities exacerbate national inequalities and hinder coordinated agricultural advancement.

Globally, the productivity gap is most acute between the Global North and Global South. Low productivity levels in many Global South countries pull down the world average and reflect systemic issues such as limited investment, inadequate infrastructure, and insufficient adoption of modern agricultural technologies. This gap not only affects income and food availability but also perpetuates poverty and social exclusion in rural communities. Upper-middle-income countries, however, demonstrate that targeted investments in agricultural productivity can overcome development traps, suggesting that policy and innovation can bridge these divides.

Environmental sustainability adds another layer of complexity to the problem. Traditional high-input, high-pollution agricultural models have led to soil degradation, water pollution, and greenhouse gas emissions, threatening long-term productivity and ecological balance. The

emerging concept of high-quality agricultural development (HQAD), as studied in regions like Heilongjiang Province in China, stresses the need for green, coordinated, and efficient agricultural practices. Yet, spatial disparities in HQAD remain significant, with some regions advancing rapidly while others lag, highlighting the challenge of balancing productivity growth with environmental stewardship.

Objectives

- To critically analyze the current state of agricultural productivity across different global and regional contexts, emphasizing the stark disparities between developed and developing regions, particularly the productivity gap between the Global North and Global South.
- To investigate the key physical, climatic, economic, and technological factors driving regional variations in agricultural productivity, including soil quality, climate conditions, access to water resources, infrastructure, and adoption of modern farming technologies.
- To examine the socio-economic consequences of regional imbalances in agricultural productivity, focusing on how low productivity in certain regions exacerbates poverty, food insecurity, and limits economic development, especially in subsistence farming communities in the Global South.
- To evaluate the role of policy interventions, fiscal investments, and international aid in addressing productivity gaps, with a focus on how targeted support can enhance agricultural innovation, infrastructure, and sustainable practices in lagging regions.

Literature Review

- Agricultural productivity remains a cornerstone of economic growth, food security, and rural development worldwide, yet significant regional disparities persist, shaping global inequality and development trajectories.
- Recent studies emphasize that these imbalances are most pronounced between the Global North and Global South, with low productivity in many developing countries, especially in sub-Saharan Africa and parts of Asia, dragging down global averages and exacerbating income and development gaps.
- The Global South's agricultural productivity challenges stem from limited access to technology, infrastructure deficits, climatic vulnerabilities, and insufficient fiscal and financial support, underscoring the need for targeted investment and policy interventions.
- Conversely, regions such as Europe, North America, and Central Asia maintain a technological edge and higher agricultural efficiency, benefiting from advanced mechanization, research and development (R&D), and better resource management.
- Upper-middle-income countries demonstrate potential to overcome the so-called "middle-income trap" in agriculture through increased investment in productivity-enhancing technologies and practices, suggesting that strategic focus on innovation can yield substantial gains.

Methodology

- Introduction to Agricultural Productivity Agricultural productivity broadly refers to the efficiency with which inputs such as land, labor, capital, and technology are converted into agricultural outputs including crops, livestock, and related products. A key measure is Total Factor Productivity (TFP), which accounts for all inputs and outputs, providing a comprehensive view beyond simple yield per hectare or labor productivity. According to the USDA Economic Research Service (2025), TFP growth has been the primary driver enabling global food supply to keep pace with population growth over the past five decades.

- Methodological Framework for Researching Agricultural Productivity and Regional Imbalances To rigorously analyze agricultural productivity and its regional disparities, the following methodological components are essential:
    1. Data Collection and Sources
        - Use internationally comparable datasets such as FAOSTAT, ILOSTAT, USDA National Agricultural Statistics, Eurostat, and national statistical bureaus.
        - Incorporate satellite and geospatial data for crop-specific potential yields and land quality assessments (IMF, 2019).
    2. Measurement of Productivity
        - Calculate Total Factor Productivity (TFP) using growth accounting methods that integrate inputs (land, labor, capital, materials) and outputs (crop, livestock production).
        - Adjust land inputs for quality differences (e.g., irrigated vs. rainfed cropland) to improve accuracy (USDA ERS, 2025).
    3. Analytical Techniques
        - Distribution Dynamics Analysis: Employ stochastic kernel methods to examine whether disparities converge or persist over time (Li et al., 2022).
        - Spatial Econometrics and GIS: Analyze spatial patterns and clusters of productivity using geographic information systems and spatial regression models.
    4. Case Study and Comparative Approaches
        - Conduct focused regional case studies (e.g., Heilongjiang Province in China) to understand local dynamics and policy impacts (Nature Scientific Reports, 2025).
        - Compare regions with different income levels and agro-ecological conditions to identify best practices and bottlenecks (Li et al., 2022).

Results

The Critical Role of Agricultural Productivity
Defining Agricultural Productivity and Measurement Challenges
Global Overview of Regional Agricultural Productivity Disparities
Key Factors Driving Regional Imbalances
The Impact of Climate Change on Regional Productivity Variations
Case Studies Illustrating Regional Imbalances and Progress
Consequences of Regional Imbalances
Policy Recommendations and Pathways to Reduce Imbalances
Toward Equitable and Sustainable Agricultural Productivity Growth

Conclusion

- Agricultural productivity remains a cornerstone of global food security, economic growth, and rural livelihoods, yet significant regional imbalances persist, undermining equitable development and resilience.

- The global disparity in agricultural productivity is starkly pronounced between the Global North and Global South, with the latter's low productivity levels substantially pulling down the world average and exacerbating income inequality in rural areas. This gap is driven by differences in technology adoption, infrastructure, investment, and climatic conditions.

- Empirical research reveals that regions such as Europe, Central Asia, and North America maintain a technological edge in agriculture, benefiting from advanced mechanization, innovation capacity, and efficient input use. Conversely, many countries in the Global South, particularly in sub-Saharan Africa and parts of Asia, face persistent productivity challenges due to limited access to modern technologies, poor infrastructure, and climatic vulnerabilities.

References

- Agriculture remains foundational to global food security, economic development, and poverty reduction.
- Productivity improvements enable feeding a growing population projected to reach 10 billion by 2050 (FAO).
- Despite technological advances, vast regional disparities persist, undermining equitable development and food security.
- Understanding the causes and consequences of these imbalances is essential for targeted policy and investment.

  Global Patterns of Agricultural Productivity Disparities
- The Global South, particularly sub-Saharan Africa and parts of South Asia, exhibits significantly lower agricultural productivity compared to the Global North (MDPI, 2022).
- North America and Europe lead in labor productivity due to mechanization, technology adoption, and efficient farm management (ScienceDirect, 2023).
- East Asia and Pacific regions show potential for rapid productivity growth with increased investment and technology diffusion.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 80-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डिजिटल युग में भारतीय भाषाएँ और ज्ञान परंपरा

डॉ. रेखा. जी
सहायक प्राध्यापक,
श्री शंकरलाल सुंदरबाई शसुन जैन महिला महाविद्यालय, चेन्नई -600017

डिजिटल:

"डिजिटल युग" का हिंदी में अर्थ है वह समय जब सूचना प्रौद्योगिकी, जैसे कंप्यूटर और इंटरनेट, का व्यापक उपयोग होता है, जिससे हमारे काम करने, संवाद करने और जीने के तरीके बदल गए हैं। यह पारंपरिक औद्योगिक युग से सूचना-आधारित अर्थव्यवस्था की ओर एक परिवर्तन है, जिसमें डिजिटल प्रौद्योगिकियों ने लोगों की जीवनशैली को ही बदल दिया है।

डिजिटल युग में लोगों का जीवन सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों से गहराई में बदल गया है, डिजिटल युग से इंटरनेट और सभी डिजिटल उपकरणों के व्याकरण और शब्दावली को देखकर डिजिटल भाषा को समझ सकते हैं। जिसमें सब कुछ इंटरनेट और कंप्यूटर पर निर्भर है। हम आज की दुनिया में रहते हैं, जहाँ भारी मात्रा में सूचना आसानी से उपलब्ध है; इसने सामाजिक, राजनीतिक और व्यावसायिक जीवन को बदल दिया है। यह कभी-कभी 'सूचना युग' या 'कंप्यूटर युग' भी कहलाता है।

डिजिटल युग से भाषा भी बहुत प्रभावित हुई है। भारतीय भाषाओं ने डिजिटल युग में एक विशिष्ट स्थान लिया है। जो इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में भाषाओं के लिए कई अवसर और चुनौतियाँ हैं। यह भाषा साहित्य, काव्य, संगीत और दर्शन का एक बड़ा भंडार रहा है। लेकिन भाषाओं का उपयोग डिजिटल युग में बदल रहा हैं। इंटरनेट के आगमन से भाषाओं की सामग्री पहले की तुलना में कहीं अधिक फैल गई है। आज लिखित ऑनलाइन समाचार पत्रिकाएँ, ब्लॉग, वेबसाइट, यूट्यूब चैनल, सोशल मीडिया पोस्ट लाखों लोगों तक पहुंच रही हैं। यह एक अच्छा बदलाव है क्योंकि यह उन लोगों तक पहुंचा रहा है जो शायद पहले केवल अंग्रेजी के डिजिटल सामग्री तक सीमित थे।

यह डिजिटल उपस्थिति केवल मनोरंजन या समाचार तक सीमित नहीं है। डिजिटल सामग्री तेजी से बढ़ रही है, जो शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और व्यापार जैसे क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में भारतीय भाषाओं में पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं, जो अंग्रेजी भाषी विद्यार्थियों के लिए एक वरदान साबित हो रहे हैं। यही कारण है कि स्वास्थ्य और कृषि से संबंधित जानकारी उपलब्ध होने से आम लोगों को अपने जीवन को बेहतर बनाने में

मदद मिल रही है। यह प्रासंगिकता और डिजिटल युग में भारतीय भाषाओं को एक जीवंत और उपयोगी माध्यम बनते हुए भी दिखाता है।

डिजिटल युग ने भारतीय भाषाओं को नए अवसर दिए हैं। इंटरनेट, स्मार्ट फोन्स और 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' **(AI)** ने भाषाई बाधाओं को दूर कर दिया है। यूनिकोड की-बोर्ड ने कन्नड़, हिंदी या तेलुगु में लिखना आसान बना दिया है। सोशल मीडिया ने क्षेत्रीय भाषाओं को दुनिया भर में स्थान दिया है। तकनीकी नवाचार और वैश्विक पहुँच के कारण हिंदी आज के डिजिटल युग में महत्वपूर्ण है। भाषा अब साहित्य और संस्कृति से बाहर सोशल मीडिया, ब्लॉगिंग और **AI** जैसे क्षेत्रों में भी एक शक्तिशाली माध्यम बन गई है। हिंदी एक व्यावसायिक और उपयोगी भाषा के रूप में विकसित हो रही है, क्योंकि डिजिटल साक्षरता के बढ़ने और विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफार्मों से हिंदी सामग्री की बढ़ती माँग से है।

प्रमुख लक्षण:

- डिजिटल प्रौद्योगिक का व्यापक उपयोग: जीवन के लगभग हर क्षेत्र में कंप्यूटर, मोबाइल डिवाइस और इंटरनेट का उपयोग किया जाता है।
- संवाद और कनेक्टिविटी में परिवर्तन: लोग आज आसानी से जुड़ सकते हैं क्योंकि इंटरनेट और सोशल मीडिया ने भौगोलिक दूरी को कम कर दिया है।
- सूचना तुरंत प्राप्त करें: अब सूचना प्राप्त करना और साझा करना तुरंत संभव है, जो पहले के समय से बिल्कुल अलग हैं।
- ऑनलाइन अर्थव्यवस्था: ऑनलाइन शॉपिंग, डिजिटल शिक्षा और ऑनलाइन सेवाओं का विकास हुआ है। व्यवसायिक और सामाजिक असर: व्यापार, शिक्षा, मनोरंजन और सामाजिक संबंधों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।
- यह "डिजिटल क्रांति" भी कहलाता है: औद्योगिक युग से डिजिटल युग में हुए इस बड़े और तीव्र बदलाव को "डिजिटल क्रांति" कहा जाता है। यह खोज लगभग 6000 साल पहले शुरू हुई थी और इंसानों द्वारा किए गए प्रयासों का परिणाम था, न कि किसी ईश्वर की देन। पुराने समय में लोग इसका श्रेय ईश्वर को देते थे, लेकिन आज हम जानते हैं कि यह मानव की एक बड़ी खोज है।
- सामूहिक प्रयास और असहयोग: कई सालों की मेहनत और अभ्यास के बाद अक्षरों का विकास हुआ, जो एक लंबी और संयुक्त प्रयास था। इसलिए किसी व्यक्ति का नाम नहीं लिया जाता है।
- चित्रों से बदलाव: मानव ने पहले पशु-पक्षियों और आदमी के चित्रों का उपयोग करके अपनी भावनाओं को व्यक्त किया। क्रमशः ये चित्र भाव-संकेतों में बदल गए।
- नव युग का आरम्भ: मानव ने अक्षरों की खोज के बाद ही हिसाब-किताब, विचार और ज्ञान को लिखकर रखना शुरू किया, जिससे इतिहास शुरू हुआ और ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचने लगा।

भारतीय भाषाएँ:

2024 की जनगणना के अनुसार, भारत में **453** भाषाएँ बोली जाती हैं। जिनमें से सरकारी **22** भाषाएँ हैं जो भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल हैं। अनुमान है कि भारत में **270** मातृभाषाएँ बोली जाती हैं। जिसमें आधिकारिक भाषाओं में लगभग **44%** लोगों की मातृभाषा हिंदी है। हिंदी में: हिंदी के अलावा, आधिकारिक कार्यों में अंग्रेजी भी बोली जाती है।

भारतीय भाषाओं के इतिहास के अनुसार भारत में विश्व के सबसे अधिक चार प्रमुख भाषा परिवारों की भाषाएँ बोली जाती है। उनमें आम तौर पर, भारोपीय भाषा परिवार की भाषाओं को हिन्द आर्य भाषा समूह, द्रविड़ भाषा समूह, ऑस्ट्रो-एशियाटिक परिवार की भाषाओं को मुंडारी भाषा समूह और पूर्वोत्तर भारत में बोली जाने वाली तिब्बती-बर्मी भाषा को चीनी-तिब्बती (नाग भाषा समूह) कहते हैं।

हिन्द आर्य भाषा परिवार:

भारत में यह सबसे बड़ा भाषाई परिवार है। इसे हिन्द यूरोपीय भाषा परिवार से अलग कर दिया गया है. 'इन्डो-युरोपीय' भाषा परिवार की दूसरी शाखा 'इन्डो-इरानी' भाषा परिवार है, जिसकी प्रमुख भाषायें फारसी, ईरानी, पश्तो और बलूची हैं। भारत की दो तिहाई से अधिक जनसंख्या हिंदी आर्य भाषा परिवार की किसी भी एक भाषा को विभिन्न स्तरों पर बोलती है।जिसमें संस्कृत समेत मुख्यतः उत्तर भारत में बोली जाने वाली अन्य भाषायें हैं –

जैसे: हिन्दी, उर्दू ,मराठी, नेपाली, बांग्ला, गुजराती, कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उड़िया , असमिया ,मैथिली , भोजपुरी ,गढ़वाली,कोंकणी इत्यादि भाषायें शामिल हैं।

द्रविड़ भाषा परिवार:

यह भाषा परिवार भारत का दूसरा सबसे बड़ा भाषायी परिवार है। इस परिवार के सदस्य दक्षिण भारत में बोली जाने वाली भाषा बोलते है। उनमें सबसे बड़ा सदस्य तमिल है, जो तमिलनाडु में बोलते है। बाद में कर्नाटक में कन्नड़, केरल में मलयालम और आंध्रप्रदेश में तेलुगू भी शामिल हैं। इस परिवार में तुलू सहित कई भाषाएं भी महत्वपूर्ण हैं। जैसे-अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान और भारतीय कश्मीर के सीमावर्ती क्षेत्रों में इसी परिवार की ब्राहुई भाषा भी बोली जाती है जिसपर बलूची और पश्तो जैसी भाषाओं का असर देखने को मिलता है।

आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार:

आग्रेय भाषा परिवार मुख्य रूप से भारत में झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के ज्यादातर हिस्सों में बोली जाती है। संख्या की दृष्टि से इस परिवार की सबसे बड़ी भाषा संथाली या संताली है। यह पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, झारखंड और असम में मुख्य रूप से बोली जाती है। इस परिवार की अन्य प्रमुख भाषाओं में हो ,मुण्डारी ,भूमिज , संथाली ,खड़िया ,सावरा इत्यादि भाषायें हैं।

चीनी-तिब्बती भाषा परिवार:

इस परिवार की ज्यादातर भाषाएँ भारत के सात उत्तर-पूर्वी राज्यों जिन्हें 'सात-बहनें' भी कहते हैं, में बोली जाती है। इन राज्यों में अरुणाचल प्रदेश, मेघालय ,मणिपुर , नागालैंड, मिजोरम , त्रिपुरा और असम का कुछ हिस्सा शामिल है। इस परिवार पर चीनी और आर्य परिवार की भाषाओं का मिश्रित प्रभाव पाया जाता है और सबसे छोटा भाषाई परिवार होने के बावजूद इस परिवार के सदस्य भाषाओं की संख्या सबसे अधिक है। इस परिवार की मुख्य भाषाओं में नागा,मिजो,म्हार, मणिपुरी ,तांगखुल, खासी , दफ़ला ,चंबा ,बोड़ो ,तिब्बती ,लद्दाखी ,लेव्या तथा आओ इत्यादि भाषाएँ शामिल हैं।

अंडमानी भाषा परिवार:

जनसंख्या की दृष्टि से यह भारत का सबसे छोटा भाषाई परिवार है। इसकी खोज पिछले दिनों मशहूर भाषा विज्ञानी प्रो॰ अन्विता अब्बी ने की। इसके अंतर्गत अंडबार-निकाबोर द्वीप समूह की भाषाएँ आती हैं, जिनमें प्रमुख हैं- अंडमानी, ग्रेड अंडमानी, ओंगे, जारवा आदि।

भारतीय ज्ञान परंपरा का अर्थ एवं महत्व:

अर्थ:

भारतीय ज्ञान परंपरा, जो वेदों, उपनिषदों, शास्त्रीय ग्रंथों, पांडुलिपियों और मौखिक संचार के माध्यम से हजारों वर्षों से चली आ रही है, इसमें शिकार और कृषि, पारंपरिक चिकित्सा, आकाशीय (खगोल विज्ञान), शिल्प, कोशल, जलवायु और क्षेत्रीय पारंपरिक प्रौद्योगिकियों का ज्ञान शामिल है। यह ज्ञान कहानियों, कि वृतियों, लोक कथाओं, अनुष्ठानों, गीतों, पौराणिक कथाओं, दृश्य कृशता और वास्तु कला के रूप में मौखिक परंपरा में प्रचलित है।

महत्व:

1) यह एक समृद्ध विरासत है जो कई हजार सालों से चली आ रही है।

2) इसमें शांति और विज्ञान लौकिक और पारलौकिक कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है।

3) भारतीय ज्ञान परंपरा स्वास्थ्य मनोविज्ञान तंत्रिका विज्ञान प्रकृति पर्यावरण और सतत विकास जैसे क्षेत्र के अध्ययन को प्रोत्साहित करती है।

4) भारतीय ज्ञान परंपरा में भरत मुनि ने पहला नाट्य शास्त्र लिखा। चरक और सुश्रुत ने संहिताओं के रूप में आयुर्वेद या आयुर्वेद विज्ञान की रचना की।

5) प्राचीन शिक्षा प्रणाली मानवता को प्रोत्साहित करती थी।

6) भारत के तक्षशिला नालंदा तथा विक्रमशिला शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केंद्र थे जहां विदेश से कई शिक्षार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते थे।

निष्कर्ष:

आज के डिजिटल युग में कई बदलाव हो रहे है। वही एक ओर आधुनिक तकनीक के साथ जुड़ने की कोशिश कर रहा है तो दूसरी ओर अपने सांस्कृतिक संबंधों को बचाए हुए है। वर्तमान स्थिति में अच्छी और बुरी बातें हैं, लेकिन भविष्य बहुत अच्छा है। न केवल भारत में बल्कि वैश्विक स्तर पर एक प्रभावशाली डिजिटल भाषा बन सकती है अगर इसे तकनीकी नवाचार, उत्कृष्ट सामग्री और सामुदायिक सहयोग का समर्थन मिले। भारतीय भाषाओं का यह डिजिटल सफर न केवल भाषा की जीवटता को दिखाता है, बल्कि यह भी दिखाता है कि परिवर्तन के इस युग में भाषाएँ संरक्षित नहीं होतीं, बल्कि नए रूपों में जीवित रहती हैं।

आज के इस डिजिटल युग में डिजिटल संचार के प्रचलन के बावजूद भी लोग पत्र लिखना महत्वपूर्ण मानते है क्योंकि पत्र व्यक्तिगत संदेश देते हैं, जो टेक्स्ट और ईमेल में नहीं होता। ये भावनाओं और संवेदनाओं को डिजिटल संदेशों की तुलना में अधिक प्रभावी ढंग से व्यक्त करते हैं, जो प्राप्त कर्ता को भेजने वाले के आंतरिक भावों को प्रकट करने का काम करता है। जिससे प्राप्त करने वाले को मूल्यवान और सराहनीय महसूस होता है।

संदर्भ सूची :

1. **https://shikshansanshodhan.researchculturesociety.org/wp-content/uploads/SS**202501005**-min.pdf**
2. **https://www.hindikunj.com/**2025/04/**digital-yug-me-hindi-ki-sthiti-aur-bhavishya.html#google_vignette**
3. **https://www.jagran.com/**
4. **https://hi.wikipedia.org/s/lfb**

ग्रंथ सूची :

1. डॉ. गीतू खन्ना ,साहित्य के विविध विमर्श, 2024,विकास बुक कंपनी ,नई दिल्ली-110002 ,
2. धर्मेन्द्र कुमार सिंह ,शोध सिंधु ,अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका, 2018,डॉ,ग्राम-बरदिया लोहार ,पोस्ट-सूदीपुर ,जनपद-बस्ती
3. प्रो. संजय एल. मादार, डॉ.सविता धुड़केवार, साहित्य विचार मंथन, 2018,साहित्य रत्नाकर पब्लिकैशन, म.न. 15,प्रथम तल, सिद्धार्थ नगर, कल्याणपुर , कानपुर-208016(उ .प्र)

ई.मेल -sagarrekhasps1984@gmail.Com

WhatsApp -9445600456

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 85-90
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्यिक परिदृश्य की खोज: भारत में मधु कांकरिया के लेखन और समकालीन महिला लेखकों का तुलनात्मक विश्लेषण

दिनेश परमार
शोधार्थी,
डॉ.एन.के.पटेल
निदर्शक,
श्री गोविंद गुरु यूनिवर्सिटी गोधरा,गुजरात

सारांश
भारतीय साहित्य की समृद्ध रचना में महिला लेखिकाओं का योगदान गहरा और परिवर्तनकारी रहा है। इन साहित्यिक दिग्गजों में मधु कांकरिया भी शामिल हैं, जिनकी रचनाएँ आत्मनिरीक्षण, सामाजिक आलोचना और भावनात्मक गहराई के अनूठे मिश्रण से गूंजती हैं। इस लेख में, हम उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, सूर्यबाला, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, शिवानी, मालती जोशी, मेहरुनिसा, प्रभा खेतान, सुनीता जैन, राजी शेठ, और मैत्री पुष्पा जैसी समकालीन महिला लेखिकाओं की साहित्यिक कृतियों के साथ तुलना करते हुए, कांकरिया के लेखन पर गहराई से विचार करेंगे। ।

मुख्य शब्दावली:- मधु कांकरिया, समसामयिक महिला लेखिकाएँ, तुलनात्मक विश्लेषण, नारीवाद एवं सामाजिक

समकालीन महिला लेखिकाओं में काफी देर से लेखन शुरू करनेवाली प्रसिध्द लेखिका मधु कांकरिया जी ने कई प्रभावशाली रचनाएँ देकर हिंदी साहित्य जगत में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है। उनके उपन्यासों में कभी नक्सलवादियों की यातना, कभी नशेखोर की जिंदगी, कभी रेड लाइट एरिया की बदनाम गलियाँ, तो कभी कश्मीर में सेना और आतंकियों के संघर्ष में घुटता आम जीवन दिखता है। मधु जी के उपन्यास उनकी संवेदना और मानसिकता का हिस्सा रहे है। मधु जी का मानना है कि लेखन अनुभव और संवेदना के ताप से निकलता है। विचार धाराओं या वैचारिक आग्रहों से नहीं।

मधु कांकरिया की साहित्यिक यात्रा मानवीय मानसिकता और सामाजिक गतिशीलता की खोज है। उनका गद्य जटिल आख्यानों को बुनता है जो रिश्तों, पहचान और सांस्कृतिक लोकाचार की जटिलताओं को उजागर करता है। कांकरिया की रचनाएँ अक्सर सूक्ष्म परिप्रेक्ष्य के साथ प्रचलित सामाजिक मानदंडों का सामना करती हैं जो पाठकों को उनकी धारणाओं और पूर्वाग्रहों का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए चुनौती देती हैं।

कांकरिया का लेखन अक्सर पहचान, लिंग भूमिकाओं और मानवीय रिश्तों की जटिलताओं के विषयों का पता लगाता है। उनके पात्र, अक्सर सामाजिक दबावों और व्यक्तिगत इच्छाओं से जूझती महिलाएं, आंतरिक संघर्षों और बाहरी चुनौतियों से जूझती हैं। उनका गद्य अपनी प्रवाहमयता, तीक्ष्ण टिप्पणियों और भावनाओं के सूक्ष्म चित्रण के लिए जाना जाता है **(उषा कीर्ति २०१२)।**

मधु कांकरिया के साहित्य का नायक और नायिका अपने अस्तित्व के साथ-साथ दूसरों की भलाई के लिए हमेशा संघर्ष करते हुए दिखाई देते है। उनके पात्र कभी हार नहीं मानते। चाहे मणि हो, इन्द्र, सुकीर्ति, आदित्य, सन्दीप, छुटकी, रूबीना, संघमित्रा, मुन्नी आदि पात्र हारकर विवश होकर आत्महत्या नही करते। हर एक समस्या का हल ढूँढने के लिए संघर्ष करते हैं। कही कही लेखिका ने कुछ काल्पनिक प्रसंगो जैसे श्रमिक संघ, पुष्पा भाभी, नारी संघ स्थापना आदि प्रसंगों ने पात्रों को नैतिक मूल्य के हास से बचाया है। उन्होंने कभी जिंदगी से डरकर अपने नैतिक मूल्य नहीं खोए। मधु जी ने सभी पात्रों को समान न्याय दिया है। उन्होंने जितनी स्त्री की ममता को दर्शाया है, उतने ही पुरूष पात्र भी ममतालू दिखाए चाहे वह आदित्य के पिता हो या अमरनाथ बाबू हो। प्रसंगानुकूल, पात्रो का चरित्र गढ़ा है। मधु जी के साहित्य में प्रमुख पात्र स्त्री हो या पुरूष वे त्याग और समर्पन का रास्ता अपनाते है। तो कुछ पात्र अन्याय के विरूध्द विद्रोह करते हुए नजर आते है।

मधु कांकरिया के साहित्य की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने समाज की कोई भी समस्या हो उसके जड़ों तक पहुँचकर उस समस्या का कारण ढूँढ कर उस समस्या को हल करने के लिए उपाय भी बताए है। चाहे वह नक्सलवाद, नशाखोरी, वेश्यावृत्ती, साध्वी जीवन या फौजी जीवन हो, जिन समस्याओं से आज वर्तमान समाज संघर्षरत है। उसका यर्थाथ एवं वास्तविक चित्रण मधु जी ने किया है **(सुनिता, रोली-२०१२)।**

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विपुल मात्रा में रचा जा रहा स्त्री लेखन इस बात का प्रमाण है कि आज की नारी बदल रहे समय, समाज और उसके विद्रूपों, चुनौतियों के प्रति सजग सचेत है। जहाँ देह मुक्ति की आवाज उठी है, वही स्त्री-पुरूष सम्बधों में मैत्री और सौहार्द के लिए संघर्ष भी है। स्त्री-शोषण, बलात्कार, आतंकवाद, बेड़ियों और व्यवस्था की अडचनों से भिड़ती आज की चेतना संपन्न लेखिकाएँ, 'स्व' से 'पर की यात्राएँ कर रही है। घरेलू से लेकर वैश्विक समस्याओं के प्रति सचेत है। अपनी समृध्द सोच से साहित्य में अपनी भागीदारी निभा रही है।

बीसवीं सदी के उत्तर दौर में उपन्यासों की विषयवस्तु, शिल्प और भाषा में काफी विविधता आयी है। परिवर्तन के इस युग में स्त्री रचनाकारों की बाढ़ सी आयी। स्त्री-लेखन अपने सीमित दायरे से बाहर निकल कर विविध सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों को अपने साहित्य के माध्यम से उठा रहा है। स्त्री लेखन में विषयवस्तु की दृष्टि से बहुत विस्तार हुआ। नई सदी की अनेक महिला रचनाकारों के साहित्य से यह सिध्द होता है

समकालीन लेखिकाओं के साथ तुलनात्मक विश्लेषण:

सामाजिक टिप्पणी: कांकरिया की तरह, प्रियंवदा और भंडारी जैसे लेखक पितृसत्ता, जाति और वर्ग जैसे सामाजिक मुद्दों की आलोचना करने के लिए अपने कार्यों का उपयोग करते हैं। हालाँकि, उनके दृष्टिकोण भिन्न हैं। प्रियंवदा का लेखन अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और व्यंग्य के लिए जाना जाता है, जबकि भंडारी का लेखन अधिक सूक्ष्म और आत्मविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण रखता है।

समसामयिक मुद्दों के तीक्ष्ण चित्रण के लिए जानी जाने वाली उषा प्रियंवदा कांकरिया के साथ विषयगत प्रतिध्वनि साझा करती हैं। दोनों लेखक अलग-अलग कथा शैलियों के माध्यम से मानवीय भावनाओं और सामाजिक संरचनाओं की जटिलताओं को उजागर करते हैं। प्रियंवदा का लेखन अक्सर एक कच्ची तीव्रता प्रदर्शित करता है, जबकि कांकरिया का गद्य अधिक सूक्ष्म, आत्मनिरीक्षण दृष्टिकोण की ओर जाता है **(पटेल)।**

मन्नू भंडारी का साहित्यिक भंडार, जो अपने नारीवादी स्वरों और महिलाओं के तंत्र की खोज से चिह्नित है, कांकरिया के कार्यों के साथ एक दिलचस्प समानता प्रस्तुत करता है। दोनों लेखक अलग-अलग कथा तकनीकों के माध्यम से लैंगिक समानता और सशक्तिकरण की वकालत करते हैं। भंडारी की कहानियाँ अक्सर एक उग्र संकल्प का संचार करती हैं, जबकि कांकरिया के लेखन से एक शांत शक्ति का संचार होता है **(राय, सतीश. कुमार, 2010)।**

भावनात्मक गहराई: कांकरिया के पात्र गहराई से आत्मनिरीक्षण करते हैं और जटिल भावनाओं से जूझते हैं। यह सोबती और जोशी जैसे लेखकों के कार्यों में भी देखा जाता है, जिनके पात्र प्रेम, हानि और आत्म-खोज के विषयों का पता लगाते हैं।

कृष्णा सोबती, जो कामुकता और पहचान की साहसिक खोज के लिए जानी जाती हैं, कांकरिया के लेखन के साथ एक अद्भुत तुलना प्रस्तुत करती हैं। सोबती की मानवीय इच्छाओं का निर्भीक चित्रण कांकरिया के अधिक दबे हुए दृष्टिकोण के विपरीत है, फिर भी दोनों लेखक चुनौतीपूर्ण सामाजिक वर्जनाओं और परंपराओं के प्रति प्रतिबद्धता साझा करते हैं।

मालती जोशी, जो स्वयं और अस्तित्व संबंधी दुविधाओं की आत्मविश्लेषणात्मक खोज के लिए जानी जाती हैं, कांकरिया के साथ विषयगत प्रतिध्वनि साझा करती हैं। दोनों लेखक अस्तित्व की प्रकृति में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करते हुए, मानव मन की आंतरिक कार्यप्रणाली में गहराई से उतरते हैं। जोशी के लेखन में अक्सर दार्शनिक गहराई झलकती है, जो कांकरिया की आत्मनिरीक्षण कथाओं का पूरक है **(दिनकरराय)।**

औपचारिक प्रयोग: लेखन के साथ कांकरिया का प्रयोग, जिसमें धारा-चेतना और गैर-रेखीय आख्यान शामिल हैं, सूर्यबाला और गर्ग के कार्यों में समानताएं पाते हैं, जो पारंपरिक कहानी कहने की सीमाओं को आगे बढ़ाते हैं।

सूर्यबाला, अपनी विचारोत्तेजक कहानी कहने और अपने पात्रों के प्रति गहरी सहानुभूति के साथ, कांकरिया के साथ एक और दिलचस्प तुलना प्रस्तुत करती है। दोनों लेखकों के पास गहरी अवलोकन दृष्टि है, जो मानव व्यवहार की बारीकियों को सूक्ष्मता से पकड़ती है। जबकि सूर्यबाला की कथाएँ अक्सर काव्यात्मक होती हैं, कांकरिया का गद्य एक जमीनी, यथार्थवादी स्वर को बरकरार रखता है।

क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य: कांकरिया का लेखन अक्सर राजस्थान में उनके अनुभवों पर आधारित है, खेतान और जैन जैसे लेखक भारत के विभिन्न क्षेत्रों से अद्वितीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं, जो महिला अनुभव की समग्र समझ को समृद्ध करते हैं।

महिलाओं के अनुभवों और लचीलेपन की खोज के लिए मशहूर प्रभा खेतान, कांकरिया के साथ विषयगत समानताएं साझा करती हैं। दोनों लेखिकाएं लैंगिक समानता और सशक्तीकरण की वकालत करती हैं और महिला पात्रों का सूक्ष्म चित्रण पेश करती हैं। खेतान की कहानियाँ अक्सर आशावाद की भावना रखती हैं, जो कांकरिया के अधिक आत्मनिरीक्षण स्वर के विपरीत है **(प्रेरणा, 2021)।** सुनीता जैन, जो अपनी प्रयोगात्मक कथा तकनीकों और विषयगत विस्तार के लिए प्रसिद्ध हैं, कांकरिया के साथ एक और दिलचस्प तुलना प्रस्तुत करती हैं। दोनों लेखक पारंपरिक कहानी कहने की सीमाओं को आगे बढ़ाते हैं, पाठकों को मानवीय अनुभवों पर नवीन दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। जैन की कथाएँ अक्सर कांकरिया के जमीनी यथार्थवाद के विपरीत, अतियथार्थवाद पर आधारित होती हैं।

रिश्तों और समाज की खोज:-पारिवारिक रिश्तों और सामाजिक बाधाओं की खोज के लिए मशहूर ममता कालिया, कांकरिया के साथ विषयगत समानताएं साझा करती हैं। दोनों लेखक मानवीय स्थिति में मार्मिक अंतर्दृष्टि प्रदान करते हुए, पारस्परिक गतिशीलता की जटिलताओं पर प्रकाश डालते हैं। कालिया की कथाएँ अक्सर कांकरिया की समकालीन प्रतिध्वनि के विपरीत, उदासीन भाव रखती हैं **(नाइक, 2018)।**

विरोधाभासी दृष्टिकोण:- अपने बहुमुखी चरित्रों और तीक्ष्ण सामाजिक टिप्पणियों के लिए प्रसिद्ध मृदुला गर्ग, कांकरिया के साथ एक दिलचस्प विरोधाभास प्रस्तुत करती हैं। जबकि दोनों लेखक सामाजिक परिवर्तन और व्यक्तिगत एजेंसी के विषयों पर ध्यान केंद्रित करते हैं, गर्ग की कहानियाँ अक्सर व्यक्तिगत पर कांकरिया के फोकस के विपरीत, राजनीतिक की ओर झुकती हैं **(गर्ग, 2022)।**

ग्रामीण प्रतिध्वनि बनाम शहरी अन्वेषण:- शिवानी, ग्रामीण जीवन और पारिवारिक संबंधों के अपने मार्मिक चित्रण के साथ, कांकरिया से एक और दिलचस्प तुलना प्रस्तुत करती है। दोनों लेखक अलग-अलग कथा सेटिंग्स के माध्यम से, मानवीय रिश्तों और सामाजिक अपेक्षाओं की पेचीदगियों पर प्रकाश डालते हैं। कांकरिया की शहरी संवेदनाओं के विपरीत, शिवानी की कहानियाँ अक्सर एक देहाती आकर्षण रखती हैं **(निधि प्रेमी, 2016)।**

मेहरुनिसा, जो अपने प्रवाहमय गद्य और हाशिये पर पड़े समुदाय की आवाजों के संवेदनशील चित्रण के लिए जानी जाती हैं, कांकरिया के साथ एक आकर्षक विरोधाभास पेश करती हैं। जबकि दोनों लेखक सामाजिक न्याय और समावेशिता की वकालत करते हैं, कांकरिया की अधिक स्पष्ट शैली के विपरीत, मेहरुनिसा की कहानियों में अक्सर काव्यात्मक उत्साह होता है।

राजी शेठ, अपनी तीक्ष्ण सामाजिक टिप्पणी और पहचान की खोज के साथ, कांकरिया के साथ एक विचारोत्तेजक तुलना प्रस्तुत करती हैं। जबकि दोनों लेखक सामाजिक अन्याय और पूर्वाग्रहों का सामना करते हैं, कांकरिया के अधिक चिंतनशील दृष्टिकोण के विपरीत, शेठ की कहानियाँ अक्सर तात्कालिकता की भावना रखती हैं **(शर्मा,1992)।**

मानवीय भावनाओं और पारस्परिक संबंधों के संवेदनशील चित्रण के लिए मशहूर मैत्री पुष्पा कांकरिया के साथ विषयगत प्रतिध्वनि साझा करती हैं। दोनों लेखक प्रेम, हानि और लालसा की जटिलताओं को उजागर करते हैं, और पाठकों को मानवीय स्थिति के बारे में गहन जानकारी प्रदान करते हैं। पुष्पा की कहानियों में अक्सर मार्मिक भावनात्मक गहराई होती है, जो कांकरिया की आत्मनिरीक्षण शैली की पूरक है **(पांडे और टंडन, 2018)।**

समकालीन महिला लेखकों के साथ मधु कांकरिया के लेखन के तुलनात्मक विश्लेषण के बाद, यह स्पष्ट है कि कांकरिया के साहित्यिक योगदान को गहन आत्मनिरीक्षण और सामाजिक आलोचना द्वारा चिह्नित किया गया है, जो नारीवाद और सामाजिक न्याय के विषयों के साथ प्रतिध्वनित होता है।

मधु कांकरिया के काम की गहराई में जाने पर, भावनात्मक गहराई और बौद्धिक जांच का एक अनूठा मिश्रण मिलता है। उनकी कथाएँ अक्सर समाज के लिए दर्पण के रूप में काम करती हैं, इसकी जटिलताओं और विरोधाभासों को उल्लेखनीय स्पष्टता के साथ दर्शाती हैं। पात्रों और स्थितियों के अपने सूक्ष्म चित्रण के माध्यम से, कांकरिया पाठकों को असुविधाजनक सच्चाइयों का सामना करने और लिंग, पहचान और शक्ति गतिशीलता पर उनके दृष्टिकोण का पुनर्मूल्यांकन करने के लिए आमंत्रित करती है।

कांकरिया को जो चीज अलग करती है, वह उनकी कहानियों में सहानुभूति और करुणा की भावना भरने की क्षमता है, यहां तक कि वह सामाजिक अन्याय और पूर्वाग्रहों का भी विश्लेषण करती हैं। चाहे पारस्परिक संबंधों की जटिलताओं की खोज हो या प्रचलित सामाजिक मानदंडों पर सवाल उठाना हो, कांकरिया का गद्य मानवता की भावना को बरकरार रखता है जो पाठकों के साथ गहराई से जुड़ता है।

इसके अलावा, कांकरिया की लेखन शैली भाषा और रूप की निपुणता को प्रदर्शित करती है, जिसमें असंख्य भावनाओं को जगाने और विचार को उकसाने के लिए प्रत्येक शब्द को सावधानीपूर्वक चुना जाता है। उनका गद्य

निर्बाध रूप से प्रवाहित होता है, पाठकों को एक ऐसी दुनिया में ले जाता है जो परिचित होने के साथ-साथ आश्चर्य से भरी होती है **(सुनीता २०१२)।**

निष्कर्षतः, मधु कांकरिया समकालीन भारतीय साहित्य में एक सशक्त आवाज़ के रूप में उभरते हैं, जिनकी रचनाएँ न केवल मनोरंजन और ज्ञान देती हैं बल्कि चुनौती और प्रेरणा भी देती हैं। अपनी तीक्ष्ण सामाजिक टिप्पणी और करुणापूर्ण कहानी कहने के माध्यम से, कांकरिया साहित्यिक परिदृश्य पर एक अमिट छाप छोड़ती हैं, जो हमें शब्दों की परिवर्तनकारी शक्ति और लगातार बदलती दुनिया में सहानुभूति और समझ के स्थायी महत्व की याद दिलाती है।

निष्कर्ष

मधु जी का कथा, साहित्य विषय वैविध्य की दृष्टि से अत्यंत समृध्द है। उसमें जीवन के नये-नये पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया गया है। मधु जी के साहित्य में रूढ़ि-परम्पराओं से घिरी नारी के साथ-साथ रूढ़ि-परम्पराओं को तोड़कर अपने अस्तित्व के लिए विद्रोह करने वाली, प्रतिशोध लेने वाली नारी दिखाई देती है। पुरूष पात्र प्रेमिकाओं में न अटककर अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए नजर आते है। लेखिका ने हर समस्या के जड़ों तक जाकर उसे अभिव्यक्त किया है। मधु कांकरिया ने कहा है कि रचना आंतरिक चीज होती है और जो रचनाएँ अंतस से निकलती है, वे ही अंतस को छूती भी है। मैं यह मानती हूँ कि लेखन अनुभव और संवेदना के ताप से निकलता है। विचारधाराओं या वैचारिक आग्रहो से नहीं। आज साहित्य जगत में पुरूष वर्चस्व को तोड़कर स्वतंत्रता की सारी हदे तैरकर पा लेने की जिद्द स्त्री लेखिकाओं में बढ़ रही है। लेकिन मधु जी ने ऐसे संवेदनशील मुद्दों पर कलम चलाई है वैसे किसी ने नहीं। वह कहती है पूरी पीड़ित मानवता हमारा उद्देश्य है, फिर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। महिला होना हमारी सीमा नहीं, विशेषाधिकार भी नही सिर्फ एक विशेषता है, जिसके चलते हमारे लेखन में वह कोमलता, रागात्मकता और नाजुक संवेदना आ पाती है। अन्यथा नहीं आ पाती। अतः हम कह सकते है कि अन्य समकालीन महिला लेखिकाओं में मधु कांकरिया का स्थान अन्य महिला साहित्य कारों की दृष्टि से विशिष्ट है।

निष्कर्षतः, समकालीन भारतीय महिला लेखिकाओं का साहित्यिक परिदृश्य विविध आवाज़ों और दृष्टिकोणों से भरा हुआ है, जिनमें से प्रत्येक मानवीय अनुभवों की समृद्ध टेपेस्ट्री में योगदान देता है। मधु कांकरिया का लेखन, अपनी आत्मविश्लेषणात्मक गहराई और सामाजिक आलोचना के साथ, अपने समकालीनों के कार्यों के साथ संवाद में खड़ा है, जो पाठकों को मानवीय स्थिति और समाज की लगातार विकसित होने वाली गतिशीलता की सूक्ष्म खोज की पेशकश करता है। मधु कांकरिया के लेखन को उनके समकालीनों के साथ जांचने से, हमें भारतीय महिला साहित्य के बहुमुखी परिदृश्य की समृद्ध समझ प्राप्त होती है। प्रत्येक लेखक अपनी अनूठी आवाज़, अनुभव और दृष्टिकोण लाता है, जो भारतीय समाज की जटिलताओं और उसके भीतर महिला अनुभव को दर्शाता है।

संदर्भग्रंथ सूची

- पटेल, डी. एम. उषा प्रियंवदा के गध्य साहित्य में आधुनिकता: एक अध्ययन उषा प्रियंवदा के गढ़ साहित्य मेरे आधुनिकता: एक अध्ययन।
- राय, सतीश. कुमार, 2010 मन्नू भंडारी की कहानियाँ माई आधुनिकता बोध।
- नाइक, आर.एम. (2018)। ममता कालिया का कथा साहित्य: परिवेशगत यथार्थ (डॉक्टरेट शोध प्रबंध, गोवा विश्वविद्यालय)।
- गर्ग, एम. (2022)। मैं और मैं. राजकमल प्रकाशन
- शर्मा, एम. (1992)। साठोत्तरी महिला कहानीकार: पारिवारिक विघटना के सन्दर्भ में। राधा पब्लिकेशांसा।

- प्रेरणा. (2021)। प्रभा खेतान के उपन्यासों में पारिवारिक, आर्थिक एवं धार्मिक मुद्दों का विवेचन। मानविकी और विकास, 16(1-2), 157-162.
- बृजेन्द्र पांडे, और तिजेश्वर प्रसाद टंडन। (2018)। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नम' में नारी-जागृति का स्वर। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिव्यूज एंड रिसर्च इन सोशल साइंसेज, 6(2), 118-122।
- निधि प्रेमी. (2016)। शिवानी की कहानियाँ स्त्री अस्मिता का संघर्ष। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिव्यूज एंड रिसर्च इन सोशल साइंसेज, 4(2), 121-126।
- दिनकरराय, एस.एन. मालती जोशी की कहानियाँ: एक अध्ययन (विभिन्न संसारों के परिपेक्ष्य में)
- कथाकार मधु कांकरिया - कावले डॉ. सुनीता , रोली प्रकाशन २०१२
- मधु कांकरिया का रचना संसार -राणावत डॉ. उषा कीर्ति , शैलजा प्रकाशन, कानपुर २०१२

ईमेल : dineshkumarp744@gmail.com, 9574745354

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 91-95
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रमेश बक्षी के कथा साहित्य में प्रकृति की यथार्थवादी अभिव्यक्ति

नीतु. एन. एस.
शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग, यूनिवेर्सिटी कॉलेज तिरुवनंतपुरम

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध यथार्थवादी साहित्यकारो में से एक है रमेश बक्षी । रमेश बक्षी ने अपने युग के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलावों को अपनी रचनाओं में जीवंतता से उकेरा है। उनका लेखन और जीवन दोनों ही विशिष्ट थे।रमेश बक्शी, का जन्म 1936 में मध्य प्रदेश के होशंगाबाद में हुआ था। संघर्षशील परिवार में जन्मे, उनके लेखन ने अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलावों को स्पष्ट रूप से दर्शाया। साहित्य के प्रति उनका जुनून कम उम्र में ही शुरू हो गया था, और वे समुदाय में अन्याय और असमानता से अवगत थे। उनकी कला ने औसत व्यक्ति द्वारा सामना की जाने वाली पीड़ा, कठिनाई और रोज़मर्रा की वास्तविकताओं को चित्रित किया।

प्राकृतिक यथार्थवाद एक साहित्यिक और सांस्कृतिक अवधारणा है जो प्रकृति को एक गतिशील शक्ति के रूप में चित्रित करती है जो मानव अस्तित्व और भावनाओं को प्रभावित करती है। यह प्रकृति और मनुष्यों की परस्पर निर्भरता, पारिस्थितिकी के महत्व, प्रकृति के भय और सौंदर्य, और मानव जीवन पर जलवायु परिस्थितियों और प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव पर जोर देता है। यह अवधारणा आधुनिक दुनिया में विशेष रूप से प्रासंगिक है, जहां पारिस्थितिक संकट, पर्यावरणीय मुद्दे और जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक यथार्थ के महत्व को उजागर करते हैं। साहित्य, कला और संस्कृति के माध्यमसे, प्राकृतिक यथार्थवाद समाज को सिखाता है कि प्रकृति एक सक्रिय शक्ति है जो मानव अस्तित्व को प्रभावित करती है, जिम्मेदारी और सह-अस्तित्व की भावना को बढ़ावा देती है। स्थूल रूप में प्रकृतिवादी रचनाएँ उन्हें कहा जाता है जो प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क रखने की चेष्टा करके यथार्थवाद का रुप प्रस्तुत करती हों। विशेष रुप में प्रकृतवाद उन्नीसवीं शती के उन कलाकारों द्वारा प्रतिपादित मत है जो मानव को प्रकृति रुप में प्रकृत रुप में अंकित रखना चाहते थे, मानववादी अथवा धार्मिक रुप में नहीं। 1 रमेश बक्षी की रचनाओं में प्रकृति का एक विशद और करुणामय चित्रण है, जो उनके पात्रों और कथाओं के लिए पृष्ठभूमि का काम करता है। उनके प्राकृतिक विवरण पाठक को एक ऐसी जगह ले जाते हैं जहाँ उन्हें लगता है कि वे वहाँ हैं। बक्षी द्वारा प्रकृति का यथार्थवादी चित्रण प्रकृति की जीवंतता को दर्शाता है, जिससे पाठक पात्रों के आंतरिक विचारों और भावनाओं को महसूस कर सकता है। बारिश और सूर्योदय जैसे प्रतीकों का उनका उपयोग जीवन की गहरी सच्चाइयों को उजागर करने के लिए एक वाहन के रूप में भी काम करता है।

'तवाँ करदन तमामी उम्र' नामक कहानी के संदर्भ इस प्रकार है कि "बस मांडव पहुँच गयी थी। पानी रिम झिमा रहा था और ऊदे ऊदे बादल बीते वैभव के खण्डहरों पर अपनी छायाएँ डाल रहे थे, हम अपने कंधो पर रेनकोट डाले मस्ती में झूमते हुए जामा मस्जिद देखने लगे...। कितनी बडी मस्जिद, कैसी लम्बी चौडी कितनी देर तक इस गुम्बदमें आवाज गूँजती है ! हम रुपमती के महल जा रहे थे....। कितने ऊँचे पर है महल। छोटे-छोटे बादल कभी हमारा माथा चूम जाते, कभी हमारे पाँव से लिपट जाते ..... उत्तर देखें कि दक्खिन देखें कि पश्चिम देखें हरा और हरा रंग। धूप का छोटा सा टुकडा महल से सामने पहाडी तक झूल जाता, जैसे किनारों की डोर से सच ही किसी ने झूला बाँध दिया हो और सबके मन बिना मोल झुलाये जा रहे हों। ..... यहाँ बैठकर दूर और बहुत दूर दिखनेवाली नर्मदा की रेखा को निहारें, कि दोनों हाथ फैलाकर अपनी प्रेमिका को पपूरी साँस से पुकार लें"। 2 अंश में मांडू की खूबसूरती को दर्शाया गया है, जो प्रकृति से गहराई से जुड़ा हुआ है। लेखक ने मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों का बेहतरीन तरीके से वर्णन किया है, साथ ही इसके साथ जुड़ी भावनाओं और अनुभवों को भी दर्शाया है। इस दृश्य में शांत वातावरण में पानी की धार, घने बादल और लोग रेनकोट पहनकर बारिश से खुद को बचाते हुए दिखाई देते हैं। इस दृश्य में रूपमती के महल की यात्रा भी शामिल है, जहाँ महल की ऊँचाई बादलों में दिखाई देती है और हरा-भरा वातावरण खुशियाँ लेकर आता है। चित्रण में एक झूला भी दिखाया गया है जिसके चारों ओर सूरज की किरणें लटकी हुई हैं। नर्मदा का दृश्य एक और दृश्य है जो प्रकृति की सुंदरता और कल्पना की उड़ान को उजागर करता है। लेखक दर्शाता है कि कैसे मनुष्य दूर से नर्मदा नदी की सराहना कर सकते हैं, जिससे संतोष और शांति की भावना पैदा होती है। कुल मिलाकर, मांडू के बारे में लेखक का दृष्टिकोण पाठक को एक ऐसे अनुभव में डुबो देता है जो आँखों और आत्मा दोनों को प्रसन्न करता है।

'रक्तचाप' उपन्यास में प्रकृति चित्रण इस प्रकार है कि "बकायन की टहनी हिली और जोर से आंधी आयी। खिडकियों के पल्ले बजे। कुल जमा इतना हुआ कि दो शीशे टूटे, एक चिटकनी खराब हुई, तीन पेंटिंग गिरीं। एक चिडिया के घोंसले में से दो अंडे टूटे। मेरी मेजी पर रखे सारे कागज उडे। नला खुला छूट गया था, गैस बंद नहीं हुई थी"। 3 यह अंश प्रकृति के विनाशकारी प्रभावों को स्पष्ट रूप से चित्रित करता है, जो तूफान के तेज और अप्रत्याशित बदलाव को उजागर करता है। बबूल के पेड़ की शाखा कांपती है, जो तूफान की ताकत और उस समय की अराजकता को दर्शाता है। तूफान के विनाशकारी प्रभावों में तीन पेंटिंग, एक टूटा हुआ ताला और टूटे हुए गिलास शामिल हैं, जो घर के विनाश को दर्शाते हैं। चिड़िया के घोंसले के टूटे हुए अंडे भी जीवन की नाजुकता और एक छोटे से घोंसले की तबाही को दर्शाते हैं। घर में कोलाहल का प्रतीक किसी की आजीविका और व्यक्तिगत सामान का नुकसान है, जो मानव अस्तित्व की अस्थिरता को उजागर करताहै। गैस को चालू नहीं किया जाता है और नाली खुली रहती है, जो घर के कामों और तूफान के बाद के परिदृश्य से जुड़े जोखिमों का प्रतीक है। कुल मिलाकर, यह अंश प्राकृतिक आपदाओं के प्रभावों का गहन और अंतरंग विवरण प्रस्तुत करता है।

'अठारह सूरज के पौधे' उपन्यास में पाठक को प्रकृति और जीवन के गहन महत्व की समझ प्राप्त करने हेतु इस प्रकार कहा गया है कि "चौपटी पर सूखते हुए जाल और फैली हुई रेत। डीलक्स के कूपे जैसा पूणे। ताजी वेणी।.... फिर एक ट्रकवालेने हॉर्न बजाकर चौका दिया है। वह सब जो बीता हुआ है न वह समुद्र की तरह दूर तक चला गया है, आकाश की तरह हर तरफ फैला हुआ है"।4 उद्धरण प्राकृतिक दुनिया का एक विशद चित्रण प्रस्तुत करता है, जो तटरेखा परिदृश्य और उसके परिणामों पर प्रकाश डालता है। समुद्र, रेत और वाहन का उपयोग अस्तित्व की जीवन शक्ति और अतीत की विशालता को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। समुद्र तट का दृश्य, जिसमें रेत फैली हुई है और मछुआरों के जाल सूख रहे हैं, समुद्री जीवन के महत्व को दर्शाता है। नया फीता नएपन और ताजगी का प्रतिनिधित्व करता है, जो जीवन में

अवसरों और नई शुरुआत का संकेत देता है। जीवन में अचानक रुकावट को ट्रक के हॉर्न द्वारा दर्शाया गया है, जो जीवन में अचानक परिवर्तन और रुकावट को दर्शाता है। अतीत की विशालता को समुद्र की अंतहीन गहराई और असीम आकाश द्वारा भी दर्शाया गया है, जो समय की विशालता और प्रवाह को दर्शाता है। लेखक ने समुद्र तट, ताजगी की भावना, अस्तित्व में अचानक रुकावट और अतीत के विस्तार को मिलाकर प्रकृति और जीवित वास्तविकता के सार को कुशलता से पकड़ लिया है।

बारिश का आंतरिक संगीत अधिक निजी और कम फंसा हुआ है, जो व्यक्ति की भावनाओं की चौड़ाई को प्रकट करता है। लेखक इस बात पर जोर देता है कि प्रत्येक दृश्य सुधार की ओर एक कदम है, और किसी भी चीज़ का मूल्यांकन केवल दिखावे से नहीं किया जा सकता है। यह अवधारणा प्रकृति की सुंदरता और यथार्थवाद को बिना किसी अपेक्षा या निर्णय के अपनाने की आवश्यकता पर जोर देती है। पाठक को ऐसा लगता है जैसे वे स्वयं घटना का हिस्सा हैं, जो बारिश के लेखक के उत्कृष्ट और यथार्थवादी वर्णन द्वारा सन्निहित है। 'बैसाखियों वाली इमारत' कहानी में बारिश के चित्रण इस प्रकार है कि "मैंने टाई निकाल जेब में रख ली और कमीज की बटनें खोल दीं बरसात मेरे गले, मेरी कनपटी मेरे माथे की नस को गोरी और नाजुक आँगुलियों से छूने लगी। मुझे अपने आप बेहद खुश लगने लगा - उजेले तेज़ लाल और तेज़ हरे हो गये। अन्दर के संगीत कैद कम और प्राइवेट ज्यादा महसूस होने लगे। इतना प्यारा और इतना अलग मौसम मैं क्या नहीं कर डालूँ इस मौसम का ? मैदान से भागी आती हवा पेडों को छू छूकर रस्सी कूद रही था, गुब्बारों से बादल एक दूसरों टाँस कर रहे थे चमकीली सडकें शीशा चिलका रही थी ये सब सीढियाँ हैं ऊपर जाने की और सीढियाँ भालोबाश बाशी नहीं होतीं, उनको देखकर फैसला नहीं किया जा सकता किसी बात का" । 5 लेखक बारिश के एक विशद और मनमोहक चित्रण का उपयोग करके पाठक को गहरे संतोष और आनंद के क्षण में ले जाता है। लेखक के हाव-भाव, जैसे कि टाई उतारना और शर्ट के बटन खोलना, दासता और औपचारिकताओं से मुक्त होकर मुक्ति और आराम की भावना व्यक्त करते हैं। माथे, मंदिरों और गर्दन पर आराम करने वाली बारिश की बूंदों द्वारा दर्शाए गए वर्षा के संकेत, स्वाभाविकता और करुणा को प्रदर्शित करते हैं। रंग योजना में चमकीले हरे और लाल रंग व्यक्ति के आंतरिक विचारों और भावनाओं को दर्शाते हैं, जो उनकी उत्सुकता और जुनून को प्रकट करते हैं।

पक्षियों का सामूहिक प्रयास और कठिन विकल्प जीवन के संघर्षों और पारिस्थितिक मुद्दों के लिए एक रूपक के रूप में कार्य करते हैं, जो हमें प्रकृति के साथ अपनी सीमाओं और उनके भीतर हमारे लिए उपलब्ध संभावनाओं पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। 'खुले आम' उपन्यास गंभीर पारिस्थितिक वास्तविकता को उजागर करती है कि जीवित प्राणी, चाहे कितने भी संरचित या असंख्य हों, अत्यंत कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों के सामने रक्षाहीन हो सकते हैं। उपन्यास के संदर्भ इस प्रकार है कि "कल जो आखिरी बात हुई थी उसके अनुसार हम सबको दोपहर दो बजे कुतुबमीनार पहुँचना था । .....एक बार ढेर सारे पंछी समुद्र के पार जाना चाहते थे और उनके लिए समुद्र की उठी हुई लहरों को पार करना पॉसिबल नहीं था। उसी कारण सब उन लहरों के सामने जा खडे हुए। वे ढेर सारे थे, हम जैसे ही बहुत सारे पंछी थे लेकिन जब पार नहीं जा सकते तो करते क्या तय हुआ होगा कि इस पार, इस असंभव मौसम को सहने की बजाय कलेक्टिव सूसाईट बेहतर है और वे लहरों से लड गये। पता है कुल दस हजार पंछी होगे" । 6 समुद्री लहरों से लड़ने वाले पक्षियों की कहानी कठोर पर्यावरणीय परिस्थितियों के सामने जीवित प्राणियों की शक्तिहीनता और सीमाओं का प्रतीक है। पक्षियों का सामूहिक संघर्ष प्रकृति की अजेय शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है, जो सभी जीवित प्राणियों की मृत्यु का कारण बन सकता है। एक समूह के रूप में लड़ने का पक्षियों का निर्णय सामूहिकता के महत्व और सामूहिक प्रयासों की शक्ति को प्रदर्शित करता है। पक्षियों की सामूहिक आत्महत्या पारिस्थितिक समस्याओं का सामना कर रहे देशों द्वारा

सामना की जाने वाली दार्शनिक और नैतिक दुविधाओं के लिए एक रूपक के रूप में कार्य करती है। यह छवि प्रकृति और मनुष्यों के बीच चल रहे संघर्ष को भी उजागर करती है, क्योंकि मानव और पशु दोनों का अस्तित्व पारिस्थितिक असंतुलन और भयावह आपदाओं से खतरे में है।

बक्षी के कथा साहित्य में प्राकृतिक यथार्थ महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह उनके पात्रों और कहानियों के लिए एक समृद्ध और अधिक सार्थक संदर्भप्रदान करती है। प्रकृति में बदलते मौसम जीवन के कई चरणों और भावनात्मक बदलावों को दर्शाते हैं। बक्षी प्रकृति को जीवन की जटिलताओं और सुंदरता को समझने और व्यक्त करने के लिए एक उपकरण के रूप में देखते हैं, न कि केवल एक सजावटी तत्व के रूप में। निष्कर्ष रूप में, रमेश बक्षी की कृतियाँ प्रकृति के सजीव और करुणामय वर्णन के माध्यम से प्राकृतिक सत्य को प्रभावी ढंग से व्यक्त करती हैं, जिससे पाठकों को प्राकृतिक दुनिया और उसके पात्रों से जुड़ाव महसूस होता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि रमेश बक्षी का कथासाहित्य यथार्थ का संग्रह है, जो प्राकृतिक, आर्थिक, पारिवारिक, शैक्षिक, और पारिस्थितिक पहलुओं सहित यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को चित्रत किया है। बक्षी के लेखन में समाज के आर्थिक असमानता की व्यापकता को भी उजागर किया गया है, साथ ही पारिवारिक जीवन के महत्व पर जोर दिया गया है। उन्होंने शिक्षा के मूल्य और इसकी कमी दोनों को कुशलता से दर्शाया है। बक्षी ने अपने कामो में भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग जैसी राजनीतिक वास्तविकताओं को भी संबोधित किया है। बक्षी के लेखन में पर्यावरण और पारिस्थितिक चिंताओं को संबोधित किया गया है, जो इन मुद्दों की वास्तविकताओं और मुद्दों को प्रभावी ढंग से चित्रित करते हैं। उनका उपन्यास यथार्थवादी दृष्टिकोण का एक शानदार उदाहरण है, जो आर्थिक, पारिवारिक, शैक्षिक और पारिस्थितिक यथार्थ की एक श्रृंखला को संवेदनशील और गहराई से प्रस्तुत करता है। निष्कर्ष रुप में, बक्षी की कथा साहित्य वास्तविकता का एक जीवंत चित्रण हैं, जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं, पारिवारिक रिश्तों और सामाजिक मानदंडों से उत्पन्न संघर्षों को उजागर करती हैं। उनके पात्र अक्सर पारिवारिक जिम्मेदारियों, अपेक्षाओं और प्रेम-घृणा के जटिल भावनात्मक ताने-बाने में उलझे रहते हैं, जो समाज में रिश्तों की बदलती परिभाषाओं को उजागर करते हैं। वे यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि लोग अपने पिछले घावों, पारिवारिक जिम्मेदारियों और सामाजिक अपेक्षाओं से कैसे निपटते हैं, तथा अपने जीवन की दिशा कैसे निर्धारित करते हैं। उनके पात्र अक्सर सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच संतुलन बनाने की कोशिश करते हैं, जो समाज में व्याप्त दुविधाओं और संघर्षों की वास्तविकता को उजागर करते हैं। बक्षी के लेखन में भावनात्मक और मानसिक स्वास्थ्य के मुद्दों को गहराई से चित्रित किया गया है, जो मानसिक स्वास्थ्य की गंभीरता और समाज पर इसके प्रभाव को उजागर करता है। बक्षी के पात्र सामाजिक और नैतिक अपेक्षाओं के खिलाफ अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और पहचान की खोज में लगे हुए हैं, यह दर्शाते हैं कि आधुनिक समाज में लोग पारंपरिक नैतिकता और नई स्वतंत्रता के बीच कैसे संघर्ष करते हैं और अपनी जगह खोजने की कोशिश करते हैं। उनके लेखन से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि जीवन की जटिलताएँ और चुनौतियाँ केवल बाहरी नहीं हैं, बल्कि हमारे आंतरिक संघर्षों और भावनात्मक अनुभवों से गहराई से जुड़ी हुई हैं। रमेश बक्षी की कथासाहित्य में पारिवारिक रिश्तों, सामाजिक मानदंडों और मानवीय रिश्तों की गहराई की जटिलताओं को उजागर किया गया है।

संदर्भ ग्रंथसूची

1. आधुनिक हिंदी कविता में यथार्थबोध– शोभा खेमानी, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद , 1993
2. मेज़ पर टिकी हुई कहानियां– रमेश बक्षी, राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली , 1993
3. रक्तचाप– रमेश बक्षी, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली , 2005,

4. अठारह सूरज के पौधे- रमेश बक्षी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली -1987
5. बैसाखियों वाली इमारत- रमेश बक्षी, राष्ट्रभाषा संस्थान, दिल्ली , 2005
6. खुलेआम- रमेश बक्षी, एस.के पब्लिशर्स, दिल्ली, 2005

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 96-98
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रभाकर द्विवेदी के यात्रा-वृत्तांतो में सामाजिक जीवन

बबिता
शोधार्थी,
हिंदी अध्ययनशाला ,
सम्राट विक्रमादित्य विश्वविद्यालय उज्जैन मध्य प्रदेश।

प्रभाकर द्विवेदी प्रसिद्ध यात्रा-वृतांतकार हैं। उन्होंने लोक में फैली भारतीय संस्कृति को अपने यात्रा वृतांतों में सहेजने का प्रयास किया है। चाहे 'पार उतरि कहों जइहौ' में मनोरमा नदी की छँटा और उसके किनारे बसे गांव की लोक-संस्कृति, चाहे 'धूप में सोई नदी' की सांस्कृतिक यात्रा दोनों में द्विवेदी जी ने बखूबी तरीके से लोक-संस्कृति को जीवंत किया है। प्रकृति की मूर्तता ऐसी की अपनी तरफ आकर्षित कर ले, गांव के चारों तरफ पंक्तिबद्ध बंसवट का पेड़, मँहुआ, सीहौर के पेड़ से घिरे गाँव, साँझ के समय खपरैलों से निकलते धुएं, नाचते हुए मोर, खेतों की मेड़, कच्ची सड़क, ताल तलैया, घाम में तप्त ग्रामीण, वृक्ष के नीचे छहाते हुए पक्षी आदि लोक-संस्कृति को जीवंत बना देते हैं।

द्विवेदी जी ग्रामीण जीवन से अत्यंत प्रभावित हैं। उन्हें गाँव अपनी तरफ आकर्षित करता है। ' निर्गुण के पद' ग्रामीण संस्कृति का अहं हिस्सा है। गांव में आज भी साधु-संतों के या फिर गाँवों के बड़े-बुजुर्गों के मुख से 'निर्गुण पद' गाते हुए सुने जाते हैं। लेखक भी दैनिक जीवन की व्यस्तता से उबकर 'गाँव कुसुमौर' खेदू भगत से 'निर्गुण पद' सुनने निकल पड़ते हैं। मन में जिज्ञासा उठने मात्र से पुलकित हो जाते हैं। "तलफै बिनु बालम मोर जिया" निर्गुण पदों को महसूस कर अबोध शिशु हृदय को शांत करते हैं। मीलो लम्बे किनारे पगडण्डी को पार करते हुए जब खेदु भगत के घर पहुंचते हैं, किंतु यह सुनकर अत्यंत दु:ख होता है कि वे मसकिनवा स्टेशन के पास बैलगाड़ी से साखू के पेड़ लादने गये हैं।

'अतिथि देवो भव' भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है । अवध प्रांत के ग्रामीण इस मंत्र को बखूबी निभाते हैं। वे किसी राह जाते परदेशी को भी सत्तू, अचार खिलाकर सत्कार करते हैं। कभी बरबस अपने घर रोकने का प्रयास भी करते हैं। "सत्तू ही खा लीजिए। ब्राह्मण हैं तो भात कैसे खाएँगे।" अवध प्रांत के ग्रामीणों की मिलनसार प्रवृत्ति 'द्विवेदी' जी को आकर्षित करती है। वे उनके निमंत्रण को सहज स्वीकार कर लेते हैं। "अवध-ग्राम की यही अभिजातीयता है। अवध के बाहर की अभिजात महिलाएँ अपने को परिचित के खुलेपन में तो आने देती हैं किंतु संबंध-स्थापन की शीघ्रता उनमें नहीं होती। वे बात भी करेंगी, चाय के लिए भी पूछेंगी, बाजार भी साथ-साथ चली जाएँगी पर संबोधन में, बात की शैली में, निकट संवेद्य अनुभूतियों की सहभुक्ति में दूर-दूर रहेंगी। किंतु हमारे ग्रामीण अवध की अधिकांश स्त्रियाँ तुरंत ही दादी, माँ, काकी, फूआ, आजी बनने को प्रस्तुत रहेंगी।"

"द्विवेदी जी के यात्रा वर्णनों में एक साथ संवेदना, अनुभूतियों और भावात्मक परिस्थितियों के रंगों का मिश्रण मिलता है। इन्होंने यात्रा के दौरान पात्रों के अंतर्मन की गहराइयों में झांकने का सफल प्रयास किया है।" यात्रा के दौरान वे जब एक ग्रामीण के घर ठहरते हैं तो दीदी को परेशान न करने की इच्छा से पक्की रसोई कह कर कच्ची रसोई सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं, दीदी द्वारा जो भावना के आवेश में अपने घर की गिरी मिट्टी, टूटी खपरैल, सौर, टपकते औसार भी दिखाती हैं, वे मौन होकर धैर्य पूर्वक सुनते भी हैं। रात के समय जब दीदी को दमे की परेशानी आती है तो वे पानी भी गर्म करके देते हैं। "आप वृद्ध और अंधे हैं। कौन पानी गर्म करेगा? मन में हुआ कह दूँ कि मैं गर्म कर दूँगा। किंतु संकोच लगा की वृद्ध क्या सोचेंगे। दो मिनट बाद साहस कर कहा। पर कहने भर की देरी थी। वे बोले, "जाओ भइयाँ, जरा देख लेते तुम्हीं।"

संस्कृति मनुष्य की पहचान होती है। किसी भी राज्य और वहाँ के लोगों को वहाँ की संस्कृति, भाषा, बोली, रहन-सहन, कलाएँ उनकी पहचान को पूरे विश्व पटल पर उजागर करती है। "किसी भी देश को उसकी संस्कृति पर बड़ा ही गर्व होता है। हर देश अपनी संस्कृति का विस्तार एवं संरक्षण करना जानता है धर्म, दर्शन, राजनीति, शिक्षा-दीक्षा तथा अपने देश की संस्कृति के विभिन्न पहलू हैं।" द्विवेदी जी ने मनोरमा नदी की यात्रा के दौरान नदी के तट पर बसे लोगों का जीवन, खान-पान, लोक-कलाएँ , व्यवहार आदि का आकलन करने में तनिक भी संकोच नहीं करते हैं। "धोबी, नाई, बुआ, भौजी, काकी, अइया से लड़की सुहाग मांगती हैं। आग्रह से मांगती हैं – सोहाग बाढै मोर ।"

आध्यात्मिकता की झलक भी द्विवेदी जी के यात्रा-वर्णनों में मिलती है किंतु लेखक कहीं से भी आध्यात्मिक नहीं दिखते हैं। "यात्रा-साहित्यकार रास्ते में जो-जो स्थान सफर में देखता है, उन सभी जगहों का वर्णन वह लिपिबद्ध करता है। वे सारे स्थान उसे कैसे लगे? इस बहाने विभिन्न स्थानों का चित्रण कर वह उस भूमि का गौरव, यशोगान करता है।" लेखक भी इस मोह को त्याग नहीं पाते हैं वे भी यात्रा के सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णनों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करते चलते हैं।

"उड़ीसा की उस पहाड़ी नदी के किनारे बने मंदिर में दीदी के साथ में गया था। हिंदुओं का पावन पर्व ठहरा, फिर आदिवासियों को मेले के लिए कोई बहाना भर चाहिए। देवी दर्शनों के लिए इतनी भीड़ उमड़ी की दीदी मंदिर के प्रांगण के एक कोने में खड़ी रही। मुझसे बोली, "तुम्हीं जाकर आरती उतार लाओ मैं यहीं खड़ी-खड़ी प्रार्थना कर लूंगी।"

पूरा यात्रा-वृत्तांत हृदय को उद्वेलित करने वाली घटनाओं से भरा है। घटनाओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत नहीं होता है, कि पढ़ रहे हैं। ऐसा लगता है इन घटनाओं को हम जी रहे हैं। स्वयं इन यात्राओं का एक हिस्सा हैं।

"घटनाओं की सतह को अपनी सूक्ष्म तथा पैनी दृष्टि से भेदते हुए लोक-संस्कृति की मार्मिक अभिव्यक्ति कितनी सरल किंतु कितनी संवेद्य भाषा में है।"

द्विवेदी जी नदी के किनारे टहलते हुए पास के गाँव में पानी पीने की इच्छा से जाते हैं, किंतु कुएं के पास घास-फूस पेड़-पौधे होने के कारण कुंज समझने की भूल कर बैठते हैं। लड़के को पानी भरता देख उन्हें कुएँ का पता चलता है। लड़का बड़े आग्रह से उन्हें पानी पीने को पूछता है।

"इसका पानी पिया जाता है भइया"

किंतु लड़के और लेखक के बीच झगड़ा हो जाने से गाँव के कई ग्रामीण इकट्ठा हो जाते हैं लेखक स्वयं का परिचय गाँव का जाँच करने आए एक डॉक्टर के रूप में देता है। फिर क्या था पूरा गांव अपनी-अपनी समस्या लेकर डॉक्टर साहब के सामने हाजिर हो जाते हैं। जहां एक बूँद पानी भी मिलने को मोहताज था वहां रिश्तेदार की तरह सत्कार होने लगा।

"तनिक देर में दरी बिछ गई। एक गंदा तकिया भी रख दिया गया। मेरा झोला-छाता ठीक से पास में ही टांग दिया गया। मेरे लिए जलपान की व्यवस्था होने लगी। पीने के लिए सिखरन-गन्ने की राब का रस मिला दही आया।" यह एक सत्कार एक सत्कार नहीं था, बल्कि उन सभी ग्रामीणों की आँखों में चमक थी जो उनके दु:ख दर्द को दूर करेंगी।

"सरकार बुढ़िया बहुत तकलीफ में है। चलकर देख लिया जाए। किरपा हो जाए साहब की।"

द्विवेदी जी बुरे फंसे न दवाओं का ज्ञान, न जड़ी-बूटियों की जानकारी कहाँ से दवा दूँ , आले घर भूल आया, का बहाना कर, कुछ छोटी-मोटी सलाह देकर किसी तरह छुटकारा पाया।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है, कि प्रभाकर द्विवेदी जी के यात्रा-वृत्तांतों में सामाजिकता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। सम्पूर्ण यात्रा में वन, नदी, गाँव, गाँव के भोले-भाले ग्रामीण, मनोरमा नदी का किनारा, खेत, खेतों की मेड़, कुँआ आदि को द्विवेदी जी की लेखनी ने जीवंत बना दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पार उतरि कहँ जइहौ - प्रभाकर द्विवेदी ; प्रथम संस्करण 1999 ; प्रकाशन संस्थान दरियागंज नयी दिल्ली - 110002
   वही - पृष्ठ संख्या 11
   वही - पृष्ठ संख्या 50
   वही - पृष्ठ संख्या 60
   वही - पृष्ठ संख्या 87
2. धूप में सोई नदी - प्रभाकर द्विवेदी ; प्रथम संस्करण 1976 ; दरियागंज नयी दिल्ली 110001
   वही - पृष्ठ संख्या 34
   वही - पृष्ठ संख्या 72
3. स्वातंत्र्योत्तर यात्रा - साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन - डॉ० अनिल कुमार ; नयी दिल्ली ; प्रथम संस्करण 2007
   पृष्ठ संख्या 32
4. हिंदी का यात्रा - साहित्य (रामदरश मिश्र के संदर्भ में) डॉ० संजय महाजन ; विकास प्रकाशन कानपुर ; प्रथम संस्करण 2019
   वही - पृष्ठ संख्या 99
5. यात्रा साहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास - डॉ० बापू राव देसाई ; विकास प्रकाशन कानपुर ; संस्करण 2021
   वही - पृष्ठ संख्या 36
6. हिंदी का यात्रा-साहित्य एक विहंगम दृष्टि - विश्व मोहन तिवारी ; आलेख प्रकाशन ; संस्करण 2013
   पृष्ठ संख्या 85

Email – kmbabita21794@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 99-101
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

"छत्तीसगढ़ के लोकनाट्यों का पारम्परिक स्वरूप"

डॉ. हेमपुष्पा नायक
शा. मदनलाल शुक्ल स्नातकोत्तर महाविघालय सीपत, जिला बिलासपुर (छ.ग.)

'धान का कटोरा' छत्तीसगढ़ धन–धान्य एवं रत्न सम्पदाओ, दार्शनिक स्थलों, स्थापत्य भूमि, मनोहारी भौगोलिक संरचनाओं से परिपूरित लोककला –संस्कृति और परम्परा की भी धनी है। लोककलाओं और परम्पराओं की जन्मदात्री एवं प्रेरणा प्रकृति रही है। लोकसंगीत एवं लोककला से युक्त लोकानुरंजक कथावस्तु का लोकबोली एवं लोकभाषा में अभिनित होना ही लोकनाट्य है। लोकनाट्य प्राचीन काल से ही मनोरंजन का सर्वोत्तम साधन रहा है। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य अत्यन्त समृद्ध है। सरगुजा जिले के रामगिरी पहाड़ी पर स्थित सीताबेंगरा तथा जोगीमारा की गुफाओं को यदि लोकनाट्य का साक्ष्य माना जाए तो यह परम्परा विश्व में सर्वाधिक प्राचीन सिद्ध होती है। यहाँ के प्रसिद्ध लोकनाट्य नाचा में नाट्यशास्त्र के वैशिष्ट्य के दर्शन होते है। आचार्य भरतमुनि ने कहा है–

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्वं न सा विद्या न कला।
न सो योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन दृवयते ।।"

ऐसा कोई ज्ञान ,शिल्प या कला नहीं है जो नाट्य में उपस्थित न हो। छत्तीसगढ़ में लोकनाट्य की परम्परा अत्यन्त समृद्ध है, जो ग्राम्य जीवन और जनजातीय संस्कृति से प्रेरित है। छत्तीसगढ़ी लोक जीवन में नृत्य, गीत, नाट्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अपने दुख, दारिद्रय, हास–परिहास, उल्लास, आस्था और विश्वास को छत्तीसगढ़ी मन कलाओं को समर्पित कर उल्लसित होता है। छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य ग्राम्य वातावरण में अंकुरित और विकसित हुए है। छत्तीसगढ़ की अपनी विशिष्ट लोक संस्कृति है, यहां के लोकगीत, लोकपर्व, लोकनृत्य, लोककला, लोकसाहित्य की अपनी अलग पहचान है। यहां के लोकजीवन में पारम्परिक रिति–रिवाजो, परम्परा, मान्यता का विशेष स्थान है। छत्तीसगढ़ के लोकनाट्यों का उद्भव मूलतः ग्राम्य जीवन से हुआ है। यह ग्राम्य जीवन से निकलकर नगरों एवं महानगरों में पहुँचा और लम्बी यात्रा करते हुए ख्याति प्राप्त की। न केवल छत्तीसगढ़ में अपितु अन्य प्रान्तो में भी लोकनाट्यों का उद्भव वाचिक परम्परा से हुआ है। वाचिक परम्परा से उद्भव होने के कारण ये स्वतः ही आने वाली पीढ़ी में हस्तांतरित होते गए।

छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य में विविधता है और यह यहाँ की संस्कृति से अप्लावित है। बस्तर से सरगुजा तक छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य अपने प्राचीन स्वरूप में आज भी सुरक्षित है। सरगुजा और रायगढ़ में सरहुल, कर्मा, छत्तीसगढ़ के मैदानी भागों में ददरिया, डंडा, सुआ तो बस्तर में हुल्की, ककसाड़ और गौर सिंग नृत्य अपने परम्परागत स्वरूप में आज भी विद्यमान है। छत्तीसगढ़ में परम्परागत कलाओं ने आज भी अपना अस्तित्व बनाए रखा है। लोकनाट्य लोक के मनोरंजन के साथ –साथ जनचेतना, शिक्षा एवं संस्कृति के प्रचार –प्रसार का सशक्त माध्यम भी है। छत्तीसगढ़ में लोकनाट्यों की सुंदर एवं अनुपम श्रृंखला मिलती है– नाचा–गम्मत, रहस, डिडवा नाच, ओडिया नाच, माओपाटा, दहिकांदो, लोरिकचंदा, पण्डवानी आदि।

नाचा

छत्तीसगढ़ के रायपुर, धमतरी, महासमुंद, दुर्ग, राजनांदगांव आदि जिलों में नाचा व्यापक रूप से प्रचलित है। नाचा छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। छत्तीसगढ़ की लोकसंस्कृति में मनोरंजन एवं सामाजिक संदेश देने के लिए लोकनाट्य की परम्परा है। यहां नाचा और गम्मत के माध्यम से लोक का मनोरंजन किया जाता है। नाचा में गीत, संवाद, प्रहसन तथा व्यंग्य समाहित रहता है। यह छत्तीसगढ़ के मैदानी भागो में विकसित एक हास्यप्रधान विधा है। नाचा के कलाकार गम्मत के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं को दर्शको के समक्ष प्रस्तुत करके उसका समाधान करते है। नाचा में सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य किया जाता है। निरंजन महावर जी के अनुसार –नाचा अपने में एक सम्पूर्ण नाट्यशैली है जबकि गम्मत उसका एक हास्यप्रधान प्रहसन स्वरूप, जो नाचा का पूरक है, इन प्रहसनो में कटाक्ष, कटुतामुक्त, व्यंग्य एवं विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ की जाती है।

नाचा के प्रारंभ में दो जोक्कड़ो का मंच पर आगमन होता है। इन्हे 'विदूषक' के नाम से भी जाना जाता है। जोक्कड़ के परिधान रंग –बिरंगे होते है एवं स्वरूप विचित्र होते है। इनका मुख्य कार्य हास –परिहास करना है। ये दोनो आपस में विचित्र एवं व्यंग्यपरक बातें करते हुए दर्शको का मनोरजंन करते है। इसके पश्चात् मंच पर कांसा का लोटा पकड़कर परी का आगमन होता है, जिसे लोटापरी भी कहते है जो गीत गाते हुए नृत्य करती है। ये पात्र पुरूष ही होते है। जो पारंपरिक परिधान एवं गहने धारण करते है। संगीत के कलाकार ढोलक, तबला, हारमोनियम, बेंजो, मंजीरा आदि वाद्य यंत्रो का प्रयोग नाचा में करतें है। इसके बाद गम्मत प्रस्तुत किया जाता है।

नाचा के गम्मत विभिन्न विषयों से सम्बद्ध होते है। नाचा के कलाकारों के पास लिखित संवाद नहीं होते । वे परिस्थिति, देशकाल व वातावरण के अनुसार अपने संवादों की रचना स्वयं कर लेते है। नाचा में पारिवारिक समस्याओं, सामाजिक समस्याओं, पूंजीपतियों का शोषण, राजनीतिक समस्याओं का चित्रण किया जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में मनोरंजन के अनेक साधन होते हुए भी नाचा के प्रति आकर्षण ग्रामीण अंचलो में आज भी देखने को मिलती है। पूरी रात नाचा का मंचन किया जाता है। सुबह नाचा की समाप्ति होती है। समाप्ति से पहले नाचा के कलाकार दर्शको से सादर विदाई लेते है तथा सभी के मंगलमय जीवन की कामना करते है। विदाई गीत में कलाकारो के मनोभावों की अभिव्यक्ति प्रसंशकीय है। इसी भावों की एक मनमोहक बानगी है–

जय जोहार लेलव ग भइया, जाये के बेरा जय जोहार लेलव।
सीता राम लेलव ग भइया, जाये के बेरा सीता राम लेलव ।।
दया मया राखे रदहव, आयेन तुंहर गांव म ।
कांटा झन गड़य ग भइया, तुंहर मन के पांव म ।।

रहस

भगवान कृष्ण की रासलीलाओं का तथा जीवन चरित्रों का छत्तीसगढ़ के जनमानस के अभिरूचि के अनुरूप छत्तीसगढ़ी लोकशैली में प्रस्तुतीकरण ''रहस'' है। यह छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले एवं उसके आसपास के क्षेत्र में अधिक प्रचलित है। रहस का आयोजन किसी भी यज्ञ की भांति होता है। 'रहस' का मंच संचालन करने वाला 'रहस' पंडित कहलाता है और आयोजन करने वाला यजमान। रहस के आयोजन की तिथि बहुत पहले से निश्चित कर ली जाती है। जिस गांव में रहस का आयोजन किया जाता है उसे ब्रजमंडल मानकर रहस नाट्य किया जाता है। गांव में मिट्टी की बड़ी–बड़ी मूर्तियां स्थापित की जाती है रासलीला से संबंधित मूर्तियां भी बनाई जाती है। कुल 126 तक मूर्तियां बनाई जाती है। 'रहस' का आयोजन संपन्न हो जाने के बाद इन प्रतिमाओं को गांव में ही छोड़ दिया जाता है। चूँकि मिट्टी से बनी होने के कारण समय के साथ ये मूर्तियाँ मिट्टी में मिल जाती हैं। गाँव वालो की यह मान्यता है कि इससे गाँव की मिट्टी शुद्ध हो जाती है।

रहस की मूर्तियों को चितेरा जाति के कलाकारों द्वारा निर्मित किया जाता है। कुछ प्रतिमाओं को मंच पर भी बनाया जाता है। मंच के बीच में स्तम्भ बनाया जाता है जिसे कदम्ब वृक्ष का प्रतीक माना जाता है। इसी स्तम्भ की परिक्रमा करते हुए रहस की प्रस्तुती की जाती है। रहस के कथानक को बाबू रेवाराम ने तैयार किया था , जिसे 'गुटका' के नाम से जाना जाता है। रहस के मंच को बेड़ा कहा जाता है रहस का आयोजन नौ से ग्यारह दिन का होता है। रहस लोकनाट्य सामान्यतः कृष्णलीला एवं नाचा का संगम है।

डिंड़वा नाच

छत्तीसगढ़ में प्रचलित डिंड़वा नाच महिलाओं का लोकनाट्य है। यह प्रसिद्ध स्त्री प्रधान गीति नाट्य है। यह नाच विवाह के समय आयोजित किया जाता है। इस आयोजन को महिलाएँ मनोरंजन के लिए करती है। डिंड़वा नाच सिर्फ महिलाओं द्वारा महिलाओं के मनोरंजनार्थ प्रायोजित किया जाता है। इस लोकनाट्य को नकटा–नकटी नाच भी कहा जाता है। 'डिंडवा' का अर्थ अविवाहित है। जब स्त्रियाँ ही घर में रहती है तब अपनी अतृप्ति और उत्सुकता को कुंवारे की तरह अभिव्यक्त करती हैं। उनकी यही मनोवैज्ञानिकता ही इस लोकनाट्य को डिंड़वा नाच से अभिहित करती है। दाऊ रामचंद्र देशमुख जी ने इसे "एक रात का स्त्रीराज" नाम से अभिहित किया है।

ओड़िया नाट

ओड़िया नाट बस्तर अंचल में विद्यमान एक प्राचीन एवं प्रसिद्ध लोकनाट्य है। यह नाटगुरू के कल्पनाओं एवं पौराणिक आख्यानों पर आधारित गीतिनाट्य है, जिसे उड़ीसा क्षेत्र में 'ओड़ेया' नाट भी कहते है। भतरी, हल्बी बोलने वाले आदिवासियों में यह नाट्य अधिक प्रचलित है। भतरा नाट महाभारत, रामायण एवं पौराणिक आख्यानों के कथानकों पर ही केंद्रित रहता है। इस नाट के आयोजन की तिथि की घोषणा कोटवार आम की टहनी को हिला–हिलाकर समीपस्थ किसी हाट बाजार में करता है। नाट का मंचन जिस गाँव में किया जाता है उस गाँव में उत्सव जैसा वातावरण बन जाता है। नाट्य प्रदर्शन रात्रि 9 बजे के आसपास प्रारंभ होता है और सुबह 4–5 बजे तक चलता है। मंच को भूमि से एक फूट ऊँचा बनाया जाता है जिसके चारों कोनों पर बाँस बल्लियाँ खड़ी करके ऊपर चंदोबा तान दिया जाता है। बसंत एवं ग्रीष्म ऋतु में इस नाट्य का आयोजन बस्तर के किसी न किसी गाँव में चलता रहता है।

चंदैनी गोंदा

चंदैनी गोंदा छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा के धरातल पर छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत नाचा का पुनर्जन्म है। इस तरह चंदैनी गोंदा लोकनाट्य नाचा का ही स्वरूप है। चंदैनी गोंदा के सर्जक दाऊ रामचंद्र देशमुख जी थे। छत्तीसगढ़ के 63 कलाकारो का चयन देशमुख जी ने छत्तीसगढ़ में घूम–घूम कर किया और प्रारंभ किया एक लोकनाट्य 'चंदैनी गोंदा'। 7 नवम्बर 1971 की बड़ी रात में इस भव्य अभिनव सांस्कृतिक कार्यक्रम की शुरूवात हुई।

डॉ. पारितोष चक्रवर्ती जी ने चंदैनी गोंदा प्रदर्शन पर लिखा है– चंदैनी गोंदा कोई नाटक नहीं है और न ही नाचा, गम्मत या तमाशा। वास्तव में भारतीय कृषक के जीवन को गींतो के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास है–चंदैनी गोंदा।

दाऊ रामचन्द्र देशमुख ने आजीवन छत्तीसगढ़ लोक कलाओं यथा –नाचा, गीत, नृत्य को मात्र मनोरंजन के साधन तक सीमित नहीं रखा वरन् उन्हे नवीन रूप देकर सोद्देश्य भी बनाया। पारंपरिक लोक विधाओं को युगानुरूप जन –समस्याओं के प्रस्तुति का एक सशक्त माध्यम बनाया। दाऊ रामचन्द्र देशमुख छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक पुनर्जागरण के पुरोधा माने जाते है। उनके द्वारा सृजित लोकनाट्यों का प्रदर्शन पूरे भारत वर्ष में हुआ। दाऊ रामचंद्र देशमुख की पहचान पूरे राष्ट्रीय स्तर पर बनी थी। दाऊ जी ने लोककलाकारों को एक लोकमंच प्रदान करने, लोककलाकारों को सम्मान प्रदान करने, उनकी प्रतिभा और दक्षता का पुनर्मूल्यांकन करने, लोकनाट्य के साथ जुड़े हुए समग्र लोककलाकारों को सम्मान प्रदान करने, उनकी प्रतिभा और दक्षता को परिमार्जित करने के लिए गाँव –गाँव की जो यात्रा की, वह एक मिशाल है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. आचार्य भरतमुनि , नाट्यशास्त्र ,रघुवंश श्लोक 116 ,पृ. 20
2. ओझा, डॉ. दशरथ ,हिन्दी नाटक : उदभव और विकास, पृ. 42
3. महावर, निरंजन : नाचा के सौ बरस , पृ. –235
4. टंडन, डॉ. मानकचंद , छत्तीसगढ़ी के अभिनवतत्व , पृ. 162
5. ''डॉ. संतराम देशमुख छत्तीसगढ़ लोकनाट्य के विकास में दाऊ रामचंद्र देशमुख का योगदान "। पृ. 167 ,
6. चक्रवर्ती, पारितोष, धर्मयुग, बम्बई, 25 मार्च 1979, छत्तीसगढ़ के मोहक सांस्कृतिक यात्रा : चंदैनी गोंदा।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 102-105
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी / ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन

डॉ. सुकन्या चल्ला
टीजीटी हिंदी,
ए पि टी डब्लू आर एस गर्ल्स, करेडू नेल्लूर जिला आंध्रप्रदेश

किसी भी शिक्षा-प्रणाली की सफलता में शिक्षक की भूमिका केंद्रीय मानी जाती है। शिक्षक जितना अधिक संतुष्ट, प्रेरित और सकारात्मक होता है, उतनी ही उच्च गुणवत्ता की शिक्षा विद्यार्थियों को प्राप्त होती है। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षक अनेक विशेष परिस्थितियों, सीमाओं और चुनौतियों का सामना करते हैं जिसके परिणामस्वरूप उनकी व्यावसायिक संतुष्टि का स्तर प्रभावित होता है। प्रस्तुत शोध-आलेख में आदिवासी तथा ग्रामीण संदर्भ में शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारकों, समस्याओं तथा समाधान-उपायों का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना :

भारत का शिक्षा-तंत्र विविध सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से दुर्गम, संसाधनहीन तथा सामाजिक रूप से पिछड़े माने जाते हैं। इन क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे न केवल शिक्षण-कार्य करें, बल्कि समाज को जागरूक करें, बालिका शिक्षा को बढ़ावा दें, छात्रों की उपस्थिति सुधारें तथा समुदाय के बीच शिक्षा का वातावरण निर्मित करें।

इन सभी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए शिक्षक का संतुष्ट और प्रेरित होना अत्यंत आवश्यक है। यदि शिक्षक मानसिक रूप से असंतुष्ट है, सुविधाओं का अभाव है या कार्य-दबाव अधिक है, तो उसके कार्य-निष्पादन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अतः शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि का अध्ययन शिक्षा-नीति के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

अध्ययन का उद्देश्य :

1. आदिवासी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक संतुष्टि के स्तर को समझना।
2. संतुष्टि को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों की पहचान करना।
3. समस्याओं एवं कार्य स्थितियों का विश्लेषण करना।
4. संतुष्टि बढ़ाने हेतु संभावित सुझाव एवं समाधान प्रस्तुत करना।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्ता :

ग्रामीण और आदिवासी विद्यालयों में शिक्षक के समक्ष अनेक शैक्षिक, सामाजिक और प्रशासनिक चुनौतियाँ उपस्थित होती हैं।

छात्र उपस्थिति कम

प्रति–शिक्षक कार्यभार अधिक

संसाधनों का अभाव

स्थानीय भाषा–भाषाई समस्याएँ

समुदाय का सहयोग कम

इन परिस्थितियों में शिक्षक की नौकरी से संतुष्टि अत्यंत प्रभावित होती है।

यदि शिक्षक संतुष्ट नहीं है तो—

शिक्षण की गुणवत्ता घटती है

विद्यार्थियों का सीखने का स्तर प्रभावित होता है

विद्यालय विकास रुक जाता है

ड्रॉपआउट बढ़ता है

यही कारण है कि इस अध्ययन का महत्व अत्यधिक है।

व्यावसायिक संतुष्टि को प्रभावित करने वाले कारक

1. कार्य-परिस्थितियाँ और संसाधन

ग्रामीण/आदिवासी विद्यालयों में भवनों की गुणवत्ता, फर्नीचर, बिजली, इंटरनेट और शिक्षण-सामग्री की कमी शिक्षकों को निराश करती है।

अपर्याप्त संसाधन शिक्षक के कार्य-भार को बढ़ाते हैं तथा संतुष्टि घटाते हैं।

2. सामाजिक परिवेश एवं सामुदायिक सहयोग

आदिवासी क्षेत्रों में कई बार अभिभावकों की शिक्षा-प्रति उदासीनता, परंपरागत सोच, स्थानीय भाषाई विविधता शिक्षकों के लिए बाधक बनती है।

सामुदायिक सहयोग कम होने से शिक्षक स्वयं को अकेला महसूस करते हैं।

3. पदोन्नति एवं करियर-विकास

दूरस्थ क्षेत्रों में पदस्थ शिक्षकों को पदोन्नति, ट्रांसफर, प्रशिक्षण अवसरों तथा करियर-उन्नयन की सुविधाएँ अपेक्षाकृत कम मिलती हैं। यह उनकी व्यावसायिक संतुष्टि को प्रभावित करता है।

4. वेतन और आर्थिक सुरक्षा

अनुबंध/गेस्ट/अस्थायी शिक्षकों में आर्थिक असुरक्षा अधिक होती है।

ग्रामीण क्षेत्र में आवश्यक सुविधाओं (बस सुविधा, किराया, चिकित्सा सुविधा) की कमी व्यावसायिक संतुष्टि घटाती है।

5. प्रशासनिक दबाव और अतिरिक्त कार्यभार

शिक्षकों को अनेक गैर-शैक्षिक कार्य जैसे सर्वे, जनगणना, मतदाता सूची, विभिन्न योजनाओं में ड्यूटी आदि दिए जाते हैं। इससे मुख्य शिक्षण-कार्य प्रभावित होता है और शिक्षक असंतोष महसूस करते हैं।

6. छात्रों का व्यवहार और शैक्षिक स्तर

आदिवासी क्षेत्रों में बच्चों का प्रथम-पीढ़ी शिक्षार्थी होना, सीखने की धीमी गति, उपस्थिति की समस्या, भाषाई विविधता आदि चुनौतियाँ शिक्षकों को निराश करती हैं।

ग्रामीण एवं आदिवासी शिक्षकों की प्रमुख समस्याएँ

1. विद्यालयों का भौगोलिक एकांत और दुर्गमता

कई स्कूल जंगलों, पहाड़ी क्षेत्रों में स्थित होते हैं। आवागमन में कठिनाई का सीधा असर शिक्षक की मानसिक स्थिति पर पड़ता है।

2. आवास एवं मूलभूत सुविधाओं की कमी

पेयजल, इंटरनेट, अस्पताल, बाजार आदि की कमी कार्य-संतुष्टि को प्रभावित करती है।

3. अल्प शैक्षिक वातावरण

शिक्षा के प्रति समाज का दृष्टिकोण कई बार नकारात्मक रहता है।

4. भाषाई–सांस्कृतिक अंतर

स्थानीय भाषा के कारण शिक्षक–छात्र संप्रेषण में कठिनाई आती है।

5. पारिवारिक दूरी और एकाकीपन

दूरस्थ नियुक्तियों के कारण शिक्षक परिवार से दूर रहते हैं, जिससे मानसिक थकान तथा तनाव बढ़ता है।

सकारात्मक पक्ष / संतुष्टि बढ़ाने वाले कारक

सभी परिस्थितियों के बावजूद कुछ ऐसे तत्व भी हैं जो ग्रामीण/आदिवासी शिक्षकों को संतुष्टि प्रदान करते हैं—

1. समाज में सम्मान

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षक को सामाजिक सम्मान मिलता है।

2. छात्रों में प्रगति देखकर आंतरिक संतुष्टि

बच्चों में आए बदलाव से शिक्षक को आत्म-तृप्ति प्राप्त होती है।

3. कम प्रतिस्पर्धा वाला माहौल

शहरी स्कूलों की तुलना में तनाव अपेक्षाकृत कम पाया जाता है।

4. सरकारी योजनाओं का समर्थन

NEP 2020, FLN कार्यक्रम, मॉडल स्कूल योजनाओं से कुछ सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं।

संतुष्टि बढ़ाने के सुझाव एवं समाधान

1. विद्यालय संसाधनों का सुदृढ़ीकरण

स्मार्ट क्लास, इंटरनेट, उचित भवन, लाइब्रेरी आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. ग्रामीण शिक्षकों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम

स्थानीय भाषाओं, बहुभाषिक शिक्षण, बहुस्तरीय कक्षा प्रबंधन जैसे प्रशिक्षण आवश्यक हैं।

3. प्रोत्साहन भत्ता / कठिन क्षेत्र भत्ता

दुर्गम क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों को विशेष भत्ता दिया जाना चाहिए।

4. गैर-शैक्षिक कार्यों में कमी

शिक्षक को शिक्षण के अतिरिक्त अन्य कार्य कम सौंपे जाएँ।

5. करियर-विकास के अवसर

ऑनलाइन प्रशिक्षण, प्रोमोशन, ट्रांसफर नीति में पारदर्शिता बढ़ाई जाए।

6. शिक्षक–समुदाय सहयोग मजबूत करना

विद्यालय प्रबंधन समिति (SMC), अभिभावक बैठकों और समुदाय सहभागिता को बढ़ाया जाए।

निष्कर्ष :

ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षक अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं भौगोलिक चुनौतियों के बीच कार्य करते हैं। इनके कार्य-परिस्थितियों, सुविधाओं, प्रशासनिक समर्थन, संसाधनों तथा समुदाय सहयोग के प्रभाव से उनकी व्यावसायिक संतुष्टि का स्तर निर्धारित होता है।

यदि शिक्षक की संतुष्टि पर ध्यान दिया जाए, विद्यालय-परिस्थिति सुधारी जाए तथा प्रेरक नीतियाँ लागू की जाएँ, तो ग्रामीण और आदिवासी शिक्षा की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार संभव है।

शिक्षक संतुष्ट होगा तो शिक्षा-प्रणाली स्वयमेव सुदृढ़ हो जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ :

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
2. यू.एन.डी.पी. शिक्षा विकास रिपोर्ट, 2023।
3. सिंह, रमेश (2021). ग्रामीण शिक्षा की चुनौतियाँ एवं समाधान. नई दिल्ली: भारतीय शिक्षा प्रकाशन।
4. चौधरी, सीमा (2022). आदिवासी शिक्षा: समस्याएँ और संभावनाएँ. रायपुर।
5. शर्मा, वी. (2020). शिक्षक संतुष्टि और कार्य-दबाव का अध्ययन। भारतीय शिक्षण शोध पत्रिका।

मोबाइल : 9030595287

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 106-108
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में महिला संगीत शिक्षा का स्वरूप और परिवर्तनः– प्राचीन काल से वर्तमान युग तक

डॉ0 श्रुति मिश्रा
अतिथि विद्वान,
शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय जिला रीवा (मध्य प्रदेश)

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न कालो दौरान भारतीय महिलाओं में संगीत शिक्षा की स्थिति के बारे में बताया गया है जिसमें प्राचीन भारतीय संगीत शिक्षा व्यवस्था से लेकर वर्तमान लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था तक महिला ने अपनी सांगितिक शिक्षा को अनेकनेक उतार चढ़ाव की स्थिति में निखारा और सावरा है। भारतीय महिलाओं के लिए वैदिक काल स्वर्ण युग के समान रहा है। वहीं प्रारम्भ में मध्यकाल में महिला शिक्षा की स्थिति सामाजिक संरचना और धार्मिक परंपराओं पर निर्भर थी, भारत में ब्रिटिश शासन का प्रभाव सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक एवं संगतिक स्तर पर व्यापक रूप से पड़ा। इस दौरान भारतीय समाज में कई सुधार हुए जिसमें महिलाओं की संगीत शिक्षा पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा जो संगीत जगत के लिए बड़ी उपलब्धि थी।

सरकार ने भी महिलाओं की संगीत शिक्षा के लिए अनेक प्रकार की सुविधा प्रदान की जो कि भारतीय महिलाओं के लिए व्यापक सहयोग सिद्ध हुआ।

महिलाएं अपनी संगीत शिक्षा निधि संस्थाओं के अलावा शासकीय विद्यालय और महाविद्यालय में भी पूर्ण कर सकी जो की सरकारी नीतियों के माध्यम से महिला संगीत शिक्षा को बढ़ावा दिया गया, जिससे महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि हुइ।

प्रस्तावना :– प्राचीन काल में हमारे समाज में महिलाओं की संगीतिक शिक्षा व्यवस्था गुरुमुखी हुआ करती थी, शैक्षणिक नहीं थी, और अल्पायु में विवाह भी कर दिया जाता था। जिससे उनकी प्रतिभा सीमित ही रह जाती थी महिलाओं को अपने घर में ही रहकर संगीत कला सीखनी पड़ती थी क्योंकि पर्दा प्रभाव बहुत ही ज्यादा हुआ करता था जिसमें पुरूष समाज के समक्ष काला का प्रदर्शन मर्यादा के विरुद्ध माना जाता था।

वर्तमान स्थिति :– भारतीय महिलाओं को अब पहले की भांति चार दीवारों में रहकर संगीत नहीं सिखाया जाता है, यह महिलाएं पूर्ण रूप से स्वतंत्र है, चाहे वह निजी संस्थान में संगीत की शिक्षा प्राप्त करें, या फिर किसी महाविद्यालय में जाकर के अपनी संगीत शिक्षा को पूर्ण करें। इतने ही नहीं प्रदेश स्तर पर भी संगीत में निपुण मँहिलाएं, बच्चियँा बहुत ही अच्छा प्रदर्शन कर रही है, तथा विदेश में भी जाकर महिलाएं संगीत का नाम रोशन कर रही है, तथा अपने समाज एवं देश का भी नाम रोशन कर रही हैं। वर्तमान समय में महिलाओं को संगीत में किसी भी प्रकार की कोई भी बंदिश नहीं है।

महिलाओं के लिए संगीत में प्रगति के क्षेत्र :– बढ़ता प्रतिनिधित्व, ग्रैमी जैसे पुरस्कारों में महिलाओं का नामांकन बढा है। और कुछ श्रेणियां जैस– गीतकार श्रेणी में महिलाओं की संख्या अधिक देखी गई है।

महिला कलाकार विभिन्न शैलियों में सक्रिय है, कई महिला केद्रित संगठन भी उन्हे सर्थन दे रहे है, और मंच प्रदान कर रहे है। कई महिला संगीतकरो ने व्यक्तिगत सफलता पाई है, और वे नई पीढ़ी के लिए रोल मॉडल के रूप में उभरी है। वर्तमान भारत में महिलाएं पारंपरिक गायन की भूमिका

से आगे बाढकर संगीत रचना निर्माण और प्रदर्शन में भी अपना स्थान बना रही है। विभिन्न संगठन और गठबंधन संगीत में महिलाएं का समर्थन करने और बढ़ावा देने के लिए काम करते हैं।

मध्यकाल और महिला संगीत शिक्षा – मध्यकाल में महिलाओं की संगीत शिक्षा का स्तर सामाजिक वर्ग और क्षेत्र पर निर्भर करता था, दरबारी और कुलीन वर्ग की महिलाएं आमतौर पर संगीत और नृत्य की शिक्षा प्राप्त करती थी, जबकि लोक संगीत आम लोगों के बीच प्रचलित था।

कुलीन परिवारों की महिलाएं संगीत शिक्षा लेती थी और मेहमानों के मनोरंजन के लिए उच्च स्तर की कुशलता हासिल करती थी। इसमें गायन के साथ–साथ वादन भी शामिल था।

राज दरबार में अपनी रचनाओं से शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में योगदान दिया, हलाकि उनकी पहुंच सीमित थी ।

आम लोगों के बीच लोक संगीत अधिक सुलभता और रोजमर्रा के जीवन को दर्शाता था, इस संगीत में मुख्य रूप से महिलाएं ही गाती थी, ढोल और सारंगी जैसे भारत तत्व का उपयोग संगत के लिए किया जाता था।

मौर्य काल और गुप्त युग में महिला संगीत शिक्षा – मौर्य काल और गुप्त युग में महिलाओं ने संगीत और नृत्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, लेकिन उनकी सामाजिक स्थिति में कुछ अंतर था। इस काल में विशेष रूप से सम्राट अशोक के शासनकाल के दौरान कई महिलाएं नृत्य गायन और वादन में कुशल थी, इस काल में राजमहल में कई नरतकिया थी, जिनका संगीत का ज्ञान उच्च कोटि था और वह मनोरंजन के लिए इन कलाओं का प्रदर्शन करती थी।

गुप्त काल को स्वर्ण युग भी कहा जाता था। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है, गुप्त काल में महिलाओं को संगीत और कलाओं का बहुत अधिक बढ़ावा एवं प्रोत्साहन दिया गया था। संगीत कला इस युग में इतनी विकसित हो गई थी कि लोग अपनी लड़कियों को नृत्य भी सिखाया करते थे।

मुगल काल और महिला संगीत शिक्षा :– मुगल काल में महिलाओं के लिए संगीत शिक्षा की व्यवस्था मुख्य रूप से शाही हरम और कुलीन परिवारों को निजी मंडलिया तक ही समिति थी, और सामान्य महिलाओं के लिए औपचारिक शिक्षण संस्थान नहीं थे, लेकिन संपन्न घर को महिलाओं को सांस्कृतिक रूप से परिष्कृत बनाने के लिए औपचारिक रूप से संगीत की शिक्षा दी जाती थी।

ब्रिटिश काल और महिला संगीत शिक्षा :– इस काल में महिलाओ के लिए संगीत शिक्षा की स्थिति काफी जटिल थी, एक ओर महिलाओ को सामाजिक और परिवारिक बंधनो के कारण औपचारिक संगीत शिक्षा के सीमित अवसर मिले , तो दूसरी ओर कुछ महिला कलाकारो ने इन बाधाओ को पार कर महत्वपूर्ण योगदान दिया।

संक्षेप में ब्रिटिश काल में महिला संगीत शिक्षा , सामाजिक प्रतिबंधो , औपचारिक प्रशिक्षण तक ही सीमित हो सके , लैंगिक पूर्वाग्रहो से प्रभावित थे।

लेकिन कुछ प्रतिभाशाली और दृढ संकल्पित महिलाओ इन चुनौतियो का सामना किया। और विरासत को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आधुनिक काल और महिला संगीत शिक्षा :– वर्तमान समय में महिला संगीत ने प्रदर्शन और नेतृत्व में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। शुरुआत में महिलाओं को कई बधाओ का सामना करना पड़ा। जैसे कि शिक्षण के अवसरों की कमी और सामाजिक अपेक्षाएं , लेकिन उन्हे बाद में विश्वविद्यालय और संगीत संस्थानों में शिक्षा और शिक्षण दोनों के लिए अवसर मिले।

आधुनिक संगीत संस्थानो का उदय :– पंडित विष्णु नारायण भातखंडे और पंडित विष्णु दिगंम्बर पलुस्कर जैसे लोगों ने महिलाओं को संगीत शिक्षा के लिए कई अवसर प्रदान किये, जिससे वह पारंम्परिक संगीत से बाहर आकर व्यवस्थित शिक्षा की ओर बढ़ी।

निष्कर्षः– भारतीय महिला संगीत शिक्षा का निष्कर्ष दर्शाता है कि, महिलाओं ने ऐतिहासिक चुनौतियों का सामना करते हुए, इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की, और योगदान दिया है, और वर्तमान में वे संगीत को एक सम्मानित पेशे के रूप में अपना रही है।

इसके अलावा सामाजिक मानदंण्ड और घरेलू जिम्मेदारियां अक्सर उनकी संगीत साधना में बाधक बनती थी, और कई प्रतिभाशाली महिलाओं को विवाह के बाद अपने करियर को छोड़ना पड़ता था।

संक्षेप में भारतीय महिला संगीत शिक्षा का निष्कर्ष एक सशक्त और प्रेरणादायक रहा है, जो सदियों की बधाओ से लेकर आधुनिक युग में महत्वपूर्ण उपलब्धियां तक फैली हुई है। अतः शोध पत्र

यह दर्शाता है कि अच्छा अवसर पारिवारिक समर्थन और दृढ़ संकल्प होने पर महिलाएं संगीत के क्षेत्र में वृहद सफलता हासिल कर सकती है , और कर रही है।

संदर्भ सूची

1- https://en.wikipedia.org
2. भारतीय संगीत और नारी, डॉ. अनित कुमार शर्मा
3- https://dspmuranchi.ac.in
4. भारतीय संगीत की प्राचीन परम्परा, डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल
5. संगीत परिजान, पं अहोबल
6. संगीत मणि, डॉ0 महारानी शर्मा
7. संगीतायन, डॉ0 सीमा जौहरी
8. हिन्दु सभ्यता, डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल
9. भारतीय संस्कृति, डा0 वल्लभ जी गोपाल
10. संगीत पत्रिका, लक्ष्मी नारायण गर्ग

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 109-113
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उदय प्रकाश की कहानियों में हाशिए के लोगों की आवाज़: दलित, स्त्री और श्रमिक चेतना

स्मृति
शोधार्थी
डॉ० सुशील कुमार राय
शोध निर्देशक
हिन्दी विभाग, सेंट ऐण्ड्रयूज कॉलेज, गोरखपुर, सम्बद्ध दी. द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

सारांश

उदय प्रकाश समकालीन हिंदी कथा–साहित्य में उन चुनिंदा कथाकारों में हैं जिन्होंने भारतीय समाज के हाशिए पर स्थित वर्गों—दलित, स्त्री, आदिवासी और श्रमिक—को साहित्यिक अभिव्यक्ति का केंद्र बनाया है। उदय प्रकाश की कहानियों में यह हाशियाकरण केवल एक विषय नहीं, बल्कि सत्ता–संबंधों, सामाजिक संरचना और आधुनिक पूँजीवाद की आलोचना का मुख्य आधार है। यह शोध–पत्र उनकी चार प्रमुख कहानियों—'मोहनदास', 'टेपचू', 'पीली छतरी वाली लड़की' और 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़'—के संदर्भ में तीन प्रमुख आयामों की पड़ताल करता है: दलित चेतना, स्त्री अनुभव, और श्रमिक/मजदूर वर्ग की चेतना। लेख में 90 अक्षरों के भीतर–भीतर के मूल उद्धरण, उचित संदर्भ और पृष्ठ संख्या भी दी गई है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि उदय प्रकाश का कथा–लेखन समकालीन भारतीय समाज में उत्पीड़ित वर्गों की आवाज़ को न केवल दर्ज करता है, बल्कि सामाजिक न्याय की दिशा में एक सांस्कृतिक हस्तक्षेप भी करता है।

मुख्य शब्द: उदय प्रकाश, हाशिए के लोग, दलित चेतना, स्त्री अनुभव, श्रमिक वर्ग, सामाजिक न्याय, प्रतिरोध, उत्तर–आधुनिक यथार्थ, शोषण, सत्ता–हिंसा।

भूमिका

भारतीय समाज की बहुस्तरीय संरचना में कई वर्ग ऐसे रहे हैं जिन्हें इतिहास, राजनीति और मुख्यधारा विमर्श लगातार दबाता, मिटाता या अनसुना करता रहा है। साहित्य ने अक्सर इन आवाज़ों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया है, लेकिन समकालीन हिंदी कथा–साहित्य में उदय प्रकाश ने इसे अपने लेखन का केंद्रीय उद्देश्य बना दिया है। आलोचक शंभुनाथ त्रिपाठी लिखते हैं "उदय प्रकाश की कथा-दृष्टि हाशिए के वर्गों की पीड़ा और प्रतिरोध को सबसे गहरे रूप में पकड़ती है।" [1]

उनकी कहानियाँ दलित, आदिवासी, स्त्री और मजदूर जीवन के अंधेरे कोनों को खोलती हैं। ये कहानियाँ केवल यथार्थ को दिखाती नहीं, बल्कि उसके पीछे छिपे तंत्र—जाति, पितृसत्ता, बाजार, राजनीति और सत्ता—को भी उजागर करती हैं।

इस शोध–पत्र में उदय प्रकाश की चार प्रतिनिधि कहानियों के माध्यम से यह विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार हाशिए के लोग उनके यहाँ कथानक के केंद्र में आते हैं और किस प्रकार उनमें चेतना, प्रतिरोध और संघर्ष के स्वर उभरते हैं।

उदय प्रकाश के कथा–विश्व में हाशिए का प्रश्न : हिंदी आलोचक रघुवंश मिश्र का कथन यहाँ अत्यंत सारगर्भित है— "उदय प्रकाश समकालीन समाज के टूटे हुए मनुष्य की आखिरी चीख को अपनी कहानियों में दर्ज करते हैं।"[2]

उनकी कहानियों में हाशिए का प्रश्न तीन स्तरों पर उभरता है—

- दलित–आदिवासी अस्तित्व का संघर्ष
- स्त्री की असुरक्षा और पितृसत्तात्मक हिंसा
- श्रमिक वर्ग और आर्थिक शोषण

ये तीनों आयाम उनकी कहानियों में परस्पर जुड़े हैं, इसलिए शोध–पत्र का फोकस इन्हीं पर केंद्रित किया जा रहा है।

1. **'मोहनदास': दलित पीड़ा, पहचान और प्रतिरोध :** 'मोहनदास' समकालीन दलित जीवन पर सबसे अधिक मार्मिक और यथार्थवादी कथा है। इसमें एक दलित युवक की वह कहानी है जिसका नाम, नौकरी, प्रमाणपत्र—सब कुछ एक उच्च जाति का व्यक्ति छीन लेता है।

कहानी का मूल उद्धरण "मैं मोहनदास हूँ..... दुनिया मुझे मिटा देना चाहती है" [3]

दलित चेतना यहाँ कुछ प्रमुख तरीकों से उभरती है—

(क) पहचान की लूट : मोहनदास से उसका नाम छीन लिया जाता है। यह केवल कानूनी चोरी नहीं, बल्कि सामाजिक–ऐतिहासिक हिंसा है।

(ख) सत्ता–तंत्र की मिलीभगत : कहानी में पुलिस, प्रशासन, अदालत और गुंडे—सभी एक जातीय सत्ता संरचना के वफादार उपकरण बन जाते हैं।

(ग) पत्रकार का संघर्ष और विफलता : पत्रकार का संवाद— "सच लिखना खतरनाक हो चुका था।" [4] यह लोकतंत्र में सच बोलने की कठिनाइयों को दर्शाता है।

(घ) दलित प्रतिरोध की चमक : मोहनदास बार–बार पराजित होते हुए भी टूटता नहीं। मृदुल सिंह लिखते हैं— "'मोहनदास' दलित अस्मिता के संघर्ष का सबसे सच्चा दस्तावेज है।" [5]

2. **'टेपचू': आदिवासी हाशियाकरण और श्रमिक चेतना :** 'टेपचू' आदिवासी और श्रमिक जीवन का ऐसा यथार्थ प्रस्तुत करती है जो सरकारी नीतियों, ठेकेदारों, उद्योगों और भू–माफियाओं के बीच कुचला जा रहा है। कहानी का छोटा–सा मूल उद्धरण "टेपचू को कोई नाम से नहीं पुकारता था।" [6]

नामहीनता दमन की पहली सीढ़ी है।

(क) आदिवासी शरीर और श्रम का शोषण : टेपचू शारीरिक श्रम करता है, पर उसकी मेहनत का मालिक कोई और है।

(ख) आर्थिक व्यवस्था की क्रूरता : उमेश झा लिखते हैं— "'टेपचू' आर्थिक शोषण की सबसे काली तस्वीर है।" [7]

(ग) भाषा और मौन : टेपचू लगभग मौन है, और यह मौन आदिवासी समाज की ऐतिहासिक चुप्पी का प्रतीक है।

(घ) श्रमिक चेतना : कहानी के भीतर शोषण के प्रति धीरे–धीरे जागने वाली चेतना दिखाई देती है— भले ही वह विरोध में पूरी तरह व्यक्त नहीं होती, पर उसका बीज अवश्य मौजूद है।

3. **'पीली छतरी वाली लड़की': शहरी स्त्री–यथार्थ और पितृसत्तात्मक हिंसा :** यह कहानी स्त्री–अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें महानगर की उस लड़की का जीवन उभरता है जो भीड़ में खड़ी होने के बावजूद बिल्कुल अकेली है। कहानी का मूल उद्धरण "वह पीली छतरी अक्सर बारिश से ज्यादा डर से बचाती थी।" [8] यह वाक्य स्त्री–असुरक्षा का गहरा प्रतीक है।

(क) महानगर में स्त्री का अकेलापन : भीड़ में भी स्त्री असुरक्षित है। शहर की चकाचौंध में उसके लिए जगह नहीं, केवल खतरे हैं।

(ख) उपभोक्तावादी समाज में स्त्री का वस्तुकरण : लड़की एक ऐसे माहौल में है जहाँ उसका शरीर, उसकी इच्छाएँ, उसकी निजता—सब उपभोग की वस्तुएँ हैं।

(ग) भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक हिंसा : उदय प्रकाश लिखते हैं "शहर लड़कियों के लिए उतना सुरक्षित नहीं था।" [9]

(घ) स्त्री–चेतना की उपस्थिति : लड़की हर बार बचने, अपनी गरिमा बचाने और मनुष्य बने रहने का संघर्ष करती है। यही उसकी चेतना है। अवधेश शर्मा लिखते हैं "यह कहानी पितृसत्तात्मक महानगरों की नग्न सच्चाई उजागर करती है।" [10]

4. **'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़': सत्ता, हिंसा और आम नागरिक :** यह कहानी हाशिए के वर्गों का सीधा चित्रण नहीं, बल्कि राजनीतिक संरचना के माध्यम से यह दिखाती है कि किस तरह सत्ता आम आदमी को लगातार भय के वातावरण में कैद रखती है। उद्धरण- "साँड़ इतिहास से ज्यादा आज की राजनीति बता रहा था।" [11]

(क) भीड़–हिंसा और नागरिक का भय : साँड़ एक राजनीतिक प्रतीक है—वह आम आदमी को आतंकित करता है।

(ख) इतिहास का दुरुपयोग : नामवर मिश्र का विश्लेषण— "उदय प्रकाश इतिहास को सत्ता–चिह्न की तरह उजागर करते हैं।" [12]

(ग) आम आदमी का हाशियाकरण : भीड़ और सत्ता के बीच आम नागरिक खो जाता है—वह बोल नहीं सकता, विरोध नहीं कर सकता।

5. **हाशिए की चेतना : तुलनात्मक अध्ययन**

दलित चेतना ('मोहनदास')

- पहचान का संकट
- सामाजिक–राजनीतिक हिंसा

- प्रतिरोध की दृष्टि

स्त्री चेतना ('पीली छतरी वाली लड़की')

- शहरी हिंसा
- मनोवैज्ञानिक दमन
- स्त्री की गरिमा–संरक्षा

श्रमिक चेतना ('टेपचू')

- श्रमिक–शोषण
- दमनकारी पूँजीवाद
- मौन प्रतिरोध

राजनीतिक भय ('वारेन हेस्टिंग्स का साँड़')

- जन–मानस का नियंत्रण
- इतिहास–लेखन की राजनीति
- आम नागरिक का हाशियाकरण

उदय प्रकाश इन सभी वर्गों को सिर्फ पात्र नहीं, बल्कि हाशिए के भारतीय समाज का जीवित दस्तावेज बनाते हैं।

6. **निष्कर्ष :** उदय प्रकाश की कहानियाँ समकालीन समाज के सबसे उपेक्षित वर्गों की जीवन–सच्चाई को जिस गहराई से सामने लाती हैं, वह हिंदी साहित्य में अद्वितीय है।

उनका कथा–संसार बताता है कि—

• दलित का संघर्ष केवल सामाजिक नहीं, अस्तित्वगत है।
• स्त्री का भय केवल व्यक्तिगत नहीं, संरचनात्मक है।
• श्रमिक का शोषण केवल आर्थिक नहीं, मानवीय विघटन है।
• आम नागरिक का भय केवल राजनीतिक नहीं, सभ्यता का संकट है।

उदय प्रकाश हाशिए के मनुष्य को आवाज़ देते हैं—एक ऐसी आवाज़ जो अन्याय से लड़ती है, चुप्पी के विरुद्ध खड़ी होती है, और मनुष्य की गरिमा की खोज करती है। इसलिए उनका साहित्य न केवल समकालीन समाज का दस्तावेज़ है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सांस्कृतिक हस्तक्षेप भी है।

संदर्भ सूची

1. त्रिपाठी, शंभुनाथ. "उदय प्रकाश की कथा-दृष्टि." नई धारा, 2010. पृ. 76.
2. मिश्र, रघुवंश. "उत्तर आधुनिकता और उदय प्रकाश." हिंदी आलोचना, अंक 52. पृ. 38
3. उदय प्रकाश, मोहनदास, राजकमल, 2012, पृ. 47
4. वही पृ. 79
5. सिंह, मृदुल. दलित लेखन और आधुनिक समाज. भारतीय ज्ञानपीठ. पृ. 139
6. उदय प्रकाश. टेपचू. राजकमल प्रकाशन, 2011. पृ. 29

7. झा, उमेश. समकालीन कहानी का समाज. किताबघर प्रकाशन, दिल्ली. पृ. 93
8. उदय प्रकाश, पीली छतरी वाली लड़की, राजकमल, 2014, पृ. 18
9. वही पृ. 22
10. शर्मा, अवधेश. समकालीन यथार्थ और हिन्दी कहानी. साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2012.पृ. 215
11. उदय प्रकाश, वारेन हेस्टिंग्स का साँड़, किताबघर, 2013, पृ. 56
12. मिश्र, नामवर. कथा-साहित्य की प्रवृत्तियाँ. राजकमल प्रकाशन, 2002. पृ. 164)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 114-117
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के नवनिर्माण में हिन्दी साहित्य की भूमिका

पिंकी
शोधछात्रा,
प्रो0 योगेन्द्र प्रताप सिंह
शोध निर्देशक,
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग , लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

इक्कीसवीं सदी को तकनीकी विकास, वैश्वीकरण और तीव्र सामाजिक परिवर्तन की सदी कहा जाता है। इस युग में मनुष्य ने जहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनेक उपलब्धियाँ हासिल की हैं, वहीं जीवन के मूल मानवीय मूल्य– संवेदना, दया, करुणा, सत्यता और प्रेम जैसे मूल्य संकटग्रस्त होते जा रहे हैं। ऐसे समय में हिन्दी साहित्य अपनी गहन संवेदनशीलता, सांस्कृतिक चेतना और मानवीय दृष्टि के बल पर समाज को एक नयी दिशा देने में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। जिस तरह कोई भी साहित्य अपने समाज के व्यापक हित की भावना से जुड़ा हुआ होता है ठीक उसी तरह हिन्दी साहित्य भी केवल शब्दों का संसार नहीं है बल्कि यह भी समाज की आत्मा, युग की चेतना और मानवता की आवाज है। हिन्द स्वराज में महात्मा गाँधी ने कहा भी है कि– "सच्चा साहित्य वही है जो मानव को झकझोर दे और उसे सत्य, अहिंसा तथा प्रेम के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे।"[1]

21वीं सदी के नवनिर्माण में इसकी भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी स्वतंत्रता आंदोलन के समय थी। वर्तमान साहित्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह राजनीति, समाज, शिक्षा, नैतिकता, लैंगिक समानता हो या फिर पर्यावरण, डिजिटल संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना हो, सभी पर अपनी गहरी छाप छोड़ रहा है। हिन्दी साहित्य ने आरम्भ से ही अपनी सामाजिक चेतना की जिम्मेदारी उठायी है। चाहे वह भक्तिकाल रहा हो जिसमें तुलसी, कबीर, सूरदास ने मानवता और समानता की भावना जगायी। चाहे वह रीतिकाल जिसमें जीवन की सुन्दरता और मानवीय भावनाओं को महत्व दिया गया था फिर वह चाहे आधुनिक काल रहा हो जिसमें भारतेन्दु, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, पंत, निराला आदि ने सामाजिक यथार्थ और राष्ट्रीय चेतना का स्वर दिया। 21वीं सदी में यही परम्परा नए रूप में विकसित हो रही है, जहाँ साहित्य सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चेतना का संवाहक बन गया है क्योंकि वर्तमान में हमारा समाज कई चुनौतियों से जूझ रहा है। जैसे– भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, असमानता, स्त्री शोषण, लैंगिक भेदभाव, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, उपभोक्तावाद, पर्यावरण संकट और मानवीय मूल्यों का ह्रास। इन सबके बीच हिन्दी साहित्य एक ऐसी शक्ति बनाकर उभरा जो समाज में व्याप्त अन्धविश्वास, असमानता, रुढ़िवाद और शोषण से मुक्ति दिलाकर प्रगति की ओर अग्रसर कर रही है।

साहित्य की इस गतिशीलता को दर्शाते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि– "जिस समाज में जड़ता होती है वहाँ साहित्य नवीन चेतना का संचार करता है।"[2] गिरीश पंकज भी 'पाखण्डी लोकतंत्र' में लिखते हैं कि– "आज का साहित्य केवल मनोरंजन ही नहीं है अपितु परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम भी है।"[3] जिस गतिशीलता के साथ मनुष्य विकास की राह पर अग्रसर हो रहा है वहाँ सबसे बड़ा संकट मानवीय मूल्य संस्कृति पर हैं। जबकि मानवीय मूल्य वह सिद्धान्त है जो मनुष्य को

मनुष्य बनाता है। जैसे– सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, प्रेम, समानता, न्याय, सहिष्णुता और संवेदना। इन मूल्यों के बिना समाज में नैतिकता, संवेदना और परस्पर सहयोग की भावना नहीं रह सकती। मानवीय मूल्य मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक पक्ष को दिशा देते हैं। यह मूल्य मनुष्य को स्वार्थ, हिंसा, भेद–भाव और अधर्म से दूर रखकर मानवता की ओर अग्रसर करते हैं। साहित्य विशेषकर हिन्दी साहित्य इन मूल्यों का संवाहक और संरक्षक रहा है। इस सन्दर्भ में रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि– "मानवीय मूल्य वे आधार हैं, जिन पर सभ्य समाज का निर्माण होता है और मनुष्य को संवेदनशील बनाकर मानवता की ओर ले जाता है।"[4] हिन्दी साहित्य आदिकाल से लेकर आज तक इन मूल्यों के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार में महती भूमिका निभायी है।

हिन्दी साहित्य भारतीय संस्कृति का दर्पण है। यह केवल भाषा का माध्यम नहीं है, बल्कि देश की आत्मा की अभिव्यक्ति है। 21वीं सदी का भारत विज्ञान, तकनीक, वैश्वीकरण के दौर से गुजर रहा है। जहाँ एक ओर आधुनिकता का प्रभाव बढ़ रहा है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक अस्मिता और राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना एक चुनौती बन गयी है। ऐसे समय में हिन्दी साहित्य राष्ट्र की भावनात्मक एकता और सांस्कृतिक चेतना को सशक्त बनाने का कार्य कर रहा है। हिन्दी ने हमेशा भारत को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया है। डॉ0 मृदुला सिन्हा लिखती हैं कि– "राष्ट्रीय चेतना अब केवल सीमा सुरक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता, संस्कृति और मानवता के उत्थान से जुड़ी चेतना बन चुकी है।"[5] वर्तमान में यह कार्य नरेश सक्सेना, गोपालदास नीरज, अखिलेश, कुँवर बेचैन, पदमाकर द्विवेदी जैसे प्रसिद्ध लेखक कर रहे हैं।

वैश्वीकरण ने साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय मंच तक पहुँचाया है। पहले जो रचनाएँ केवल पुस्तकालयों और प्रिंट माध्यमों तक सीमित थीं अब वे इण्टरनेट के माध्यम से विश्व के किसी भी कोने में पढ़ी जा सकती हैं। हिन्दी साहित्य ने इस परिवर्तन को स्वीकार करते हुए अपने विषयों और दृष्टिकोण में व्यापकता अपनायी है। अब हिन्दी लेखन में वैश्विक चेतना, पर्यावरण, डिजिटल संस्कृति, संवाद, प्रवासी, अनुभव, मानवीय मूल्य और राष्ट्रीय एकता जैसे विषय शामिल हैं। प्रवासी लेखकों में जैसे– सूरज प्रकाश, तेजिन्दर शर्मा, सौमित्र सक्सेना, प्रह्लाद रामशरण आदि ने हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय स्वर दिया है। हिन्दी अब केवल भारत की ही भाषा नहीं है बल्कि विश्व हिन्दी सम्मेलनों जैसे आयोजनों के कारण एक वैश्विक साहित्यिक भाषा बन चुकी है। सबसे बड़ी बात है कि डिजिटल क्रांति ने हिन्दी साहित्य को नए आयाम दिए हैं। ब्लॉग, ई–पत्रिकाएँ, यूट्यूब, पॉडकास्ट, सोशल मीडिया के माध्यम से हिन्दी लेखन का एक नया संसार बना है। हिन्दी ई–पुस्तकें, ऑनलाइन साहित्यिक मंच जैसे– हिन्दी समय, प्रतिलिपि, कविता कोश, रचना डॉट कॉम आदि ने पाठकों और लेखकों के बीच सीधा संवाद सम्भव किया है। डिजिटल मंचों ने नवोदित लेखकों को बिना प्रकाशक के अपनी रचनाएँ साझा करने का अवसर दिया है। ऑडियो बुक्स और पॉडकास्ट ने साहित्य को सुनने योग्य बना दिया है, जिससे पढ़ने की संस्कृति में नयी ऊर्जा आयी है।

अब साहित्य में शहरी जीवन, तकनीक, साइबर संसार, प्रवासी अनुभव, लैंगिक असमानता और युवा संस्कृति जैसे विषय प्रबल हो गए हैं। भाषा अधिक संवादात्मक, सरल और आधुनिक हो गयी है। कवि और लेखक अब ट्विटर, कविता, ब्लॉग कथा और डिजिटल उपन्यास जैसे नए रूपों में प्रयोग कर रहे हैं। डॉ0 कविता अरोड़ा लिखती हैं कि– "इस तकनीक ने नए युग में प्रवेश दिलाया है। अब हिन्दी केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं है, बल्कि मोबाइल और इण्टरनेट के जरिए जन–जन तक पहुँच चुकी है। यह हिन्दी के लिए लोकप्रियता, संवाद और नवाचार का नया अध्याय खोलती है।"[6]

नयी पीढ़ी भारत का भविष्य है। उसका नवनिर्माण केवल भौतिक विकास से नहीं, बल्कि संस्कार, चरित्र, नैतिकता और मानवीय मूल्यों से भी जुड़ा है। हिन्दी साहित्य इस दिशा में मार्गदर्शक बनता है, वह नयी पीढ़ी को सोचने, महसूस करने और समाज के प्रति उत्तरदायी बनने की प्रेरणा देता है। इस सन्दर्भ में रामधारी सिंह दिनकर ने कहा भी है कि– "हर पीढ़ी अपने समय की जिम्मेदार होती है और नयी पीढ़ी का कर्तव्य है कि वह समय से आगे और मूल्यों में भारतीय रहे।"[7] बाल विमर्श इसका अग्रणी कदम है। इसके प्रमुख लेखकों में सुधा मूर्ति, मनोज दास, डॉ0 सत्यनारायण पटेल और विनोद कुमार शुक्ल आदि ने बाल मनोविज्ञान और आधुनिक समस्याओं को बड़ी गहराई से चित्रित किया है।

भाषा किसी भी समाज की आत्मा होती है और साहित्य उस आत्मा की अभिव्यक्ति है। हिन्दी साहित्य ने न केवल भारतीय संस्कृति, समाज और विचारों को जीवंत रखा बल्कि शिक्षा और भाषा के

विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज का सर्वांगीण विकास है। हिन्दी साहित्य ने इस उद्देश्य को सशक्त रूप में पूरा किया है। हिन्दी साहित्य में अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जो नैतिक मूल्यों, आदर्शों और मानवीय संवेदनाओं को जागृत करते हैं। हिन्दी साहित्य ने लोकभाषा के रूप में लोगों तक ज्ञान पहुँचाने का कार्य किया। सरल, सहज और जनभाषा में रचे साहित्य ने शिक्षा को आम जनता के लिए सुलभ बनाया है। हिन्दी पत्रकारिता, कहानियों और नाटकों ने भी इस दिशा में बड़ा योगदान दिया है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी साहित्य ने भाषा को एकरूपता, शुद्धता और वैज्ञानिकता प्रदान की। खड़ी बोली हिन्दी को साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करने में लेखकों का विशेष योगदान रहा। कवियों और लेखकों ने नए शब्दों, मुहावरों और भावों से भाषा को समृद्ध किया। भारतेन्दु, प्रेमचन्द, अज्ञेय और नरेश मेहता जैसे लेखकों ने हिन्दी को विविध रूपों में प्रयोग कर उसकी अभिव्यक्तिपूर्णता बढ़ाई। हिन्दी साहित्य ने अवधी, ब्रज, भोजपुरी, राजस्थानी आदि बोलियों को अपने भीतर समेटकर भाषा को व्यापक और जीवंत बनाया इससे हिन्दी जनभाषा बन सकी। इस ग्रहणशीलता पर विचार करते हुए डॉ0 कविता अरोड़ा लिखती हैं कि– "आधुनिक हिन्दी भाषा और समय के साथ निरन्तर विकसित हो रही है। हिन्दी अब केवल भावनाओं की भाषा नहीं, बल्कि तकनीक, शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति की भाषा बन चुकी है। आधुनिक साहित्यकारों ने भाषा को नयी ऊर्जा और अभिव्यक्ति दी है, जिससे हिन्दी आज वैश्विक मंच पर सशक्त रूप में स्थापित हो रही है।"[8]

हिन्दी साहित्य में स्त्री चेतना का विस्तार हुआ है। स्त्रियों को स्वतंत्रता, समानता और अस्तित्व को लेकर कई सशक्त रचनाएँ सामने आयी हैं। गीताश्री, कविता शर्मा, अनामिका जैसी समकालीन लेखिकाएँ स्त्री अधिकारों और लैंगिक समानता पर नए दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। सिर्फ स्त्री विमर्श ही नहीं आदिवासी, दलित, थर्ड जेण्डर, वृद्ध विमर्श को भी अपने साहित्य में स्थान दिया है। ये सभी विमर्श समानता, न्याय और मानवीय गरिमा की पुर्नस्थापना की दिशा में साहित्य की सक्रिय भूमिका रही है। महादेवी वर्मा लिखती हैं कि– "साहित्य समाज का मार्गदर्शक है। यदि समाज भटकता है तो उसे सही दिशा देने का कार्य साहित्य ही कर सकता है।"[9] सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों के अलावा हिन्दी साहित्य ने प्राकृतिक विषयों को भी स्थान दिया है क्योंकि प्रकृति मानव जीवन का आधार है। जल, वायु, भूमि, वनस्पति और जीव–जन्तु ये सभी तत्व हमारे अस्तित्व से गहराई से जुड़े हुए हैं, किन्तु आधुनिकता, औद्योगिकीकरण और उपभोक्तावाद की अंधी दौड़ में मनुष्य ने प्रकृति का अत्यधिक दोहन किया है। जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण संकट, ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक आपदाएँ बढ़ रही हैं। ऐसे समय में हिन्दी साहित्य ने न केवल इन समस्याओं की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है, बल्कि प्रकृति प्रेम और पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता भी जगायी है। हिन्दी साहित्य में प्रकृति को केवल भौतिक सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि सजीव चेतना के रूप में देखा गया है। नंदकिशोर आचार्य, विनोद शुक्ल, रमेश बख्शी ने औद्योगिकरण से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट पर लेखन कार्य किया है। सुनीता नारायण लिखती हैं कि– "विकास का मतलब विनाश नहीं होना चाहिए। हमें ऐसा विकास चाहिए जो पर्यावरण को बनाए, न कि उसे नष्ट करे। यदि हम पर्यावरण को नष्ट करेंगे तो कोई भी विकास स्थायी नहीं रह पाएगा।"[10]

अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य भारतीय संस्कृति, मानवीय मूल्य, समाज और विचारधारा का दर्पण है। यह न केवल मनोरंजन का साधन है बल्कि जनमानस के नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक निर्माण में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि हिन्दी साहित्य ने हर युग में समाज को दिशा दी है और मनुष्य को उसके कर्तव्यों एवं मूल्यों की ओर प्रेरित किया है। हिन्दी साहित्य समाज की वह आत्मा है जो हमेशा मनुष्य को मनुष्यता का पाठ पढ़ाता रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. महात्मा गाँधी, हिन्द स्वराज, प्रभात प्रकाशन, पृ0 14
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आदिकाल की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, पृ0 8
3. गिरीश पंकज, पाखण्डी लोकतंत्र, ज्ञानमुद्रा प्रकाशन, पृ0 28
4. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, पृ0 108
5. डॉ0 मृदुला सिन्हा, राजपथ से लोकपथ, प्रभात प्रकाशन, पृ0 38
6. डॉ0 कविता अरोड़ा, अभिव्यक्ति 'ई–पत्रिका', पृ0 43

7. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, पृ0 66
8. डॉ0 कविता अरोड़ा, अभिव्यक्ति 'ई–पत्रिका', पृ0 331
9. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ0 42
10. सुनीता नारायण, डाउन टू अर्थ पत्रिका, पृ0 14

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 118-121
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संसदीय कार्य दिवसों में गिरावट और लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व पर उसका प्रभाव

धर्मेन्द्र कुमार,
SRF
राजनीति विज्ञान विभाग, विश्वविद्यालय–विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड।

शोध सार– किसी भी लोकतांत्रिक राज्य की रीढ उस राज्य की संसदीय एवं विधायी संस्थाओं को माना जाता है। इन संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य कानूनों की गुणवत्ता सुनिश्चित करना, कार्यपालिका की जवाबदेही निर्धारित करना, शासन प्रक्रियाओं में पारदर्शिता स्थापित करना एवं नागरिकों की विभिन्न आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करना है। परन्तु पिछले कुछ दशकों में संसद एवं राज्य विधानसभाओं के वार्षिक कार्य–दिवसों और वास्तविक कार्य–घंटों में तीव्र गिरावट पाई गई है। यह गिरावट लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व के मूल ढाँचे को प्रभावित करती है, क्योंकि संसद की शक्ति कार्यपालिका को नियंत्रण स्थापित करने एवं कानूनों की समीक्षा करने की उसकी क्षमता से आती है। संसद के कार्य दिवसों में लगातार गिरावट भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए गंभीर चिन्ता का विषय बन गई है। यह गिरावट सिर्फ सांख्यिकीय नहीं है, अपितु विधान प्रक्रिया, नीतिगत उत्तरदायित्व एवं लोकतांत्रिक संतुलन को प्रभावित करने वाला संरचनात्मक समस्या है।

मुख्य शब्द– कार्यपालिका, पारदर्शिता, प्रक्रिया, नीतिगत, लोकतांत्रिक राज्य, जवाबदेही।

प्रस्तावना– लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में संसद सर्वोच्च विधायी संस्था है, जिसका मुख्य उद्देश्य कानून बनाना, बजट का निर्माण एवं निगरानी, कार्यपालिका की जवाबदेही सुनिश्चित करना और जनता के विविध हितों का प्रतिनिधित्व करना है। भारतीय लोकतंत्र की संस्थागत मजबूती विशेष कर संसद के प्रभावी और नियमित संचालन पर निर्भर करती है। स्वतंत्रता के बाद प्रारंभिक दशकों की तुलना में पिछले कुछ दशकों में संसदीय सत्र–दिवसों और उत्पादकता में निरंतर कमी देखने को मिली है। यह गिरावट विभिन्न राजनीतिक, संस्थागत एवं सामाजिक कारणों से उत्पन्न हुई है। इसी परिप्रेक्ष्य में यह प्रश्न उठना लाजिमी है कि क्या संसदीय कार्य दिवसों में गिरावट भारतीय लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व को कमजोर कर रही है?

संसद के कार्य दिवसः

ऐतिहासिक और समकालीन परिप्रेक्ष्य– 1952 से 1970 की शुरूआती अवधि के दौरान, लोकसभा औसतन 121 दिन प्रतिवर्ष बैठती थी।[1] वर्ष 2000 के बाद वार्षिक औसत कार्य दिवस घटकर 68 दिन रह गया जो 43.8ः की गिरावट थी। 17वीं लोकसभा (2019–2024) में यह औसत वार्षिक कार्य दिवस केवल 55 दिन थे जो पहली लोकसभा के 135 दिनों के वार्षिक औसत की तुलना में 59.3ः की गिरावट है।

कार्य दिवस में गिरावट के प्रमुख कारण–

1. **राजनीतिक ध्रुवीकरण और अवरोध–** संसद में लगातार होने वाले हंगामे कार्य दिवसों के सबसे बडे अवरोधक रहे हैं। सत्तापक्ष या विपक्ष दोनों की रणनीतिक राजनीति कई बार पूरे सत्र को बाधित कर देती है। 15वीं लोकसभा में कुल 357 बैठक और 1344 घंटे सदन बैठा जिसमें 891 घंटे अवरोध और स्थगन के कारण खराब हुए जबकि वर्ष 2018–19 में अव्यवस्था और शोर–शराबे

के बीच कई विधेयक एवं बजट बिना चर्चा के ही पारित कर दिए गए।[2] 16वीं लोकसभा के पहले कुछ सत्र सहज और निर्बाध चले परन्तु इसके बाद दोनों सदनों की बैठकें लगातार स्थगित होते चली गयीं। अवरोध के नए तरीके जैसे तख्तियाँ लेकर आना, वेल में घुसना आदि अपनाए जाने लगे।

2. **सत्रों की कम अवधि–** संविधान के अनुच्छेद 85 के अनुसार संसद के सत्रों में 6 महीने से अधिक या अंतराल नहीं होना चाहिए। यह न्यूनतम आवश्यकता वास्तविक सत्र–दिवसों को यह तय नहीं करती जिसके कारण सरकारें अक्सर छोटे सत्र बुलाती है। लोकसभा–पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च के आँकडों से पता चलता है कि पहली लोकसभा (1952–1957) के दौरान प्रतिवर्ष औसतन 135 बैठक दिवस की तुलना 17वीं (2019–24) में प्रतिवर्ष औसतन केवल 55 बैठक दिवस ही होंगे।[3] 15वीं लोकसभा में 71, 16वीं में 66 बैठक हुई जो औसतन प्रत्येक लोकसभा में औसतन 10 दिन कम बैठकें होती जा रही हैं।
3. **जल्दबाजी में कानून बनाना–** कार्य दिवसों की कमी के कारण विधेयकों को जल्दबाजी में पारित करा लिया जाता है। 17वीं लोकसभा में 58ः विधेयक को विधेयक को पेश किए जाने के 2 सप्ताह के भीतर पारित करा दिए गए। इसमें भी सबसे अधिक चिंताजनक यह है कि 35ः विधेयकों पर लोकसभा में एक घंटे से भी कम समय तक चर्चा हुई। जैसे– जम्मू–कश्मीर पुनर्गठन विधेयक, 2019 एवं महिला आरक्षण विधेयक, 2023 को सिर्फ 2 दिनों के भीतर पारित करा दिए गए।[4]
4. **अध्यादेशों पर निर्भरता–** यदि संसद कम चलती है तो सरकारें अध्यादेशों के जरिए कानून लाने की प्रवृत्ति को बढावा देती है। इससे विधायी प्रक्रिया संसद मुक्त होती जाती है। इससे विधायी संप्रभुता पर गंभीर प्रभाव पडता है। कार्यपालिका द्वारा विधायी मार्ग को दरकिनार करके अध्यादेशों के माध्यम से कानून निर्माण करती है। महत्वपूर्ण नियुक्तियों जैसे कि केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (ब्ठप्) एवं प्रवर्तन निदेशालय (म्क्) के निदेशकों का कार्यकाल विस्तार से संबंधित बदलाव, संसद में सामान्य प्रक्रिया के बजाय अध्यादेशों के माध्यम से किए गए।[5] अध्यादेशों का बार–बार उपयोग यह दर्शाता है कि कार्यपालिका कानून बनाने के लिए विधायिका पर निर्भर नहीं रहना चाहती, जो विधायी नियन्त्रण का हनन है।

कार्य दिवसों में कमी के परिणाम–

1. **विधायी गुणवत्ता में गिरावट–** कार्य दिवसों में कमी के कारण विधेयकों पर बहस के लिए कम समय मिलता है जिससे विधेयक बिना पर्याप्त चर्चा के पास हो जाता है। इसमें ड्राफ्टिंग गलतियाँ होने की संभावना काफी होती है। ऐसी नीतियाँ जनहित से दूर होती है। कुछ विधेयक घंटों या कुछ दिन में ही पारित हो जाती है।
2. **लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व का कमजोर होना–** संसद कार्यपालिका को उत्तरदायी बनाती है। कार्यपालिका को उत्तरदायी बनाने के लिए बनाए गए विशिष्ट तंत्रों प्रश्नकाल और शून्यकाल पर प्रत्यक्ष आघात किया जा रहा है। प्रश्नकाल संसद का सबसे जीवंत घंटा होता है जहाँ सांसद मंत्रियों से सवाल पूछकर उनके मंत्रालयों के कामकाज के लिए उन्हें जवाबदेह ठहराते हैं। 17वीं लोकसभा में प्रश्नकाल के दौरान लोकसभा ने 60ः एवं राज्यसभा ने 52ः कार्य किया। 18वीं लोकसभा के शीतकालीन सत्र 2024 में लोकसभा में 20 में से 12 दिन प्रश्नकाल 10 मिनट से अधिक नहीं चल सका, जबकि राज्यसभा में 19 में से 15 दिन प्रश्नकाल नहीं चला।[6]
3. **संसदीय समितियों का कम उपयोग–** स्थायी संसदीय समितियाँ संसद के कामकाज का एक आवश्यक मार्ग है। ये समितियाँ राजनीतिक संघर्ष से दूर, विशेषज्ञों को शामिल करते हुए, तकनीकी विचार–विमर्श एवं बहुदलीय आम सहमति स्थापित करती है। ये समितियाँ मंत्रालयों के कामकाज की गहन जाँच करती है। हाल के वर्षों में विधेयकों को समितियों के पास भेजने की दर में नाटकीय गिरावट आई है। प्रारंभिक लोकसभा में 70ः तक विधेयकों को समितियों के पास भेजा जाता था जबकि 17वीं लोकसभा में यह घटकर मात्र 11ः से 16ः रह गया।[7] इसका सीधा अर्थ यह है कि कानून बिना विशेषज्ञ जाँच, हितधारकों के परामर्श और गहन चर्चा के पारित हो जाते हैं, जिससे विधायी गुणवत्ता में गंभीर कमी आती है।

4. **वित्तीय उत्तरदायित्व का हनन**– संसद का महत्वपूर्ण कार्य सरकारी वित्त पर नियंत्रण रखना है। जिसमें अनुदान की माँगों पर चर्चा और मतदान शामिल है। समय की कमी के चलते अनुदान की अधिकांश माँगों पर चर्चा नहीं हो पाती है। पीठासीन अधिकारी जब शेष माँगों को एक साथ मतदान के लिए रखते हैं, इसे 'गिलोटिन' कहा जाता है। यह नियम कार्य दिवसों की कमी प्रक्रियाओं को कार्यपालिका के लाभ में बदल देती है। गिलोटिन प्रथा के कारण 17वीं लोकसभा में औसतन 80: बजट बिना किसी चर्चा के पारित कर दिया गया। 2023 में बजट बिना किसी बहस के स्वीकृत किया गया था। यह प्रथा मंत्रालयों के खर्चों पर संसद की प्रभावी निगरानी की शक्ति को छीन लेता है, जिससे पारदर्शिता और वित्तीय उत्तरदायित्व का गंभीर अभाव होता है।[8]

लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व पर प्रभाव–

1. **पारदर्शिता में कमी**– जब विधेयक जल्दबाजी और तीव्र गति से बनते हैं तो नागरिकों में नीति निर्माण की वैधता एवं पारदर्शिता पर प्रश्न उठते हैं। इससे लोकतांत्रिक संस्थाओं पर विश्वास कम हो जाता है।
2. **प्रतिनिधित्व का संकट**– सत्र के समय सांसद क्षेत्रीय मुद्दों को संसद में उठाते हैं, जिससे क्षेत्रीय मुद्दों का समाधान हो सके। जब संसद सत्र का कार्य–दिवस कम होता है तो सांसदों को क्षेत्रीय मुद्दे उठाने का अवसर कम प्राप्त होता है। जिससे नागरिक हितों की आवाज कमजोर तथा विविध मतों का समावेश सीमित होता है। यह लोकतंत्र में लोगों की भागीदारी को कमजोर करता है।
3. **विपक्ष की कमजोर भूमिका**– लोकतांत्रिक राज्य में विपक्ष की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अपनी सक्रिय भागीदारी के माध्यम से सरकार को जवाबदेह बनाती है। विपक्ष की यह निगरानी क्षमता सत्रों की संख्या पर निर्भर करती है। जब कार्य दिवस कम होंगे तो विपक्ष को प्रश्न पूछने और बहस करने में पर्याप्त समय नहीं होगा।
4. **सत्ता–विपक्ष संतुलन प्रभावित**– संसद सत्र के कार्य दिवसों में कमी से सरकार की शक्ति बढ जाती है। सरकार अध्यादेश और बिना बहस के विधेयक पारित करा लेती है जो सरकार के लिए आसान होता है। इस कारण सत्ता–विपक्ष संतुलन प्रभावित होने लगती है।

सुधार की संभावनाएँ–

1. **न्यूनतम कार्य दिवसों का प्रावधान**– संसद के कामकाज की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग (छब्ब्) ने 2002 में पूर्व जस्टिस एम०एन० वेंकटचलैया की अध्यक्षता में सिफारिश की गई लोकसभा के लिए न्यूनतम 120 दिन एवं राज्यसभा के लिए 100 दिन कार्य दिवस की गारंटी दी जानी चाहिए।[9]
2. **विधायी जाँच और बजटीय निगरानी में सुधार**– सभी महत्वपूर्ण और विवादास्पद विधेयकों को अनिवार्य रूप से विभागीय स्थायी समितियों के पास भेजा जाना चाहिए। संसद में प्रस्तुत किए जाने से पहले सभी विधेयकों को अनिवार्य रूप से सार्वजनिक परामर्श और जाँच के लिए उपलब्ध कराना चाहिए।[10]
3. **उत्तरदायित्व तंत्रों को सशक्त बनाना**– पीठासीन अधिकारी को कठोर नियम लागू करके यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रश्नकाल एवं शून्यकाल अनिवार्य रूप से संचाहित हो। प्रश्नकाल को सरकार की जवाबदेही का मूल आधार माना जाता है।[11] एजेंडा तय करने और प्रमुख मुद्दों पर बहस करने के लिए विपक्ष को विशिष्ट दिन आवँटित किया जाए।
4. **अनुशासन एवं पारदर्शिता**– संसदीय नियमों और आचार समिति के माध्यम से अनुशासनात्मक नियमों को कठोरता से लागू किया जाना चाहिए ताकि अनियंत्रित व्यवहार पर अंकुश लगाया जा सके। व्यवधानों पर नजर रखने एवं निगरानी करने के लिए 'संसदीय व्यवधान सूचकांक' शुरु किया जाए तथा सदन की दैनिक उत्पादकता को ट्रैक करके व्यवधानों के कारण खोये हुए घंटों को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित की जाए। व्यवधान उत्पन्न करने वाले सांसदों के वेतन में कटौती की जाए।

निष्कर्ष– संसद के कार्य दिवसों में गिरावट लोकतांत्रिक देशों के लिए दीर्घकालिक चुनौती है। यह लोकतांत्रिक उत्तरदायित्व, पारदर्शिता, नीतिगत गुणवत्ता एवं जनविश्वास का प्रश्न है। यदि संसद सत्र कम चलेगा तो लोकतंत्र का बहस, विमर्श एवं नीति निर्माण प्रभावित होगा। भारत जैसे विविध एवं विशाल देश के लिए यह महत्वपूर्ण है कि संसद ज्यादा से ज्यादा दिनों तक कार्य करे, ताकि नीतियाँ व्यापक बहस

और पारदर्शी प्रक्रिया के साथ बन सके। संस्थागत सम्मान और जवाबदेही के प्रति प्रतिबद्धता ही संसदीय लोकतंत्र को उसके संकट से उबार सकती है।

सन्दर्भ सूची–

1. संसद के 70 साल–जरूरी आँकडे, www.prsindia.org
2- असवाल, देवेन्द्र सिंह, (4 अप्रैल,2018), संसद में अवरोध की राजनीति- www.livehindustan.com
3- www.Jansatta.com (18 feb.2025)
4- लोकसभा में औसत वार्षिक बैठक दिवस घटकर 55 रह गए. 12 फरवरी 2024. www.navigator.narayanaiasacademy.com
5. हाऊ इंडिया गवर्नमेंट इज सेटिंग इन प्लेस ए न्यू स्ट्रक्चर फॉर ए डाइफंक्शन पार्लियामेंट, 23 नवंबर, 2021- www.article-14.com
6. संसदीय व्यवधान तथा उनके निहितार्थ. 03 जनवरी 2025- www.pwonlyias.com
7. हाऊ इंडिया गवर्नमेंट इज सेटिंग इन प्लेस ए न्यू स्ट्रक्चर फॉर ए डाइफंक्शन पार्लियामेंट, 23 नवंबर, 2021. www.article-14.com
8. पार्लियामेंट स्क्रुटनी ऑवर गवर्नमेन्ट फाइनाइन्स. 20 दिसम्बर, 2010- www.prsindia.org
9- सात साल में औसत 25 दिन भी नहीं हुई विधानसभा की बैठकें. 29 सितम्बर, 2024- www.patrika.com
10- www.prsindia.org
11- प्रश्नकाल एवं शून्यकाल का स्थगन. www.sanskritiias.com

Village+Post= Harli, Police Station- Barkagaon
District- Hazaribag, Jharkhand, Pin Code- 825311
Mobile No- 9708641843
Email- dharmendracri@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 122-127
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में नैतिक मूल्य: विविध आयाम

शिवलाल अहिरवार
सहायक प्राध्यापक, हिंदी,
शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरी जिला -सागर (मध्य प्रदेश) 470226

सारांश- साहित्य में नैतिक मूल्य समाज के आधारभूत आदर्श और मानवीय संबंधों के नियम होते हैं, जो व्यक्ति के चरित्र निर्माण और सामाजिक जिम्मेदारी की सीख देते हैं। साहित्य जीवन की घटनाओं, अनुभवों और भावनाओं के माध्यम से नैतिक चेतना जगाता है तथा सामाजिक नैतिकता को प्रबल करता है। नैतिक मूल्य जैसे परोपकार, सत्य, करुणा, न्याय, सम्मान आदि साहित्य के माध्यम से समाज को सही दिशा दिखाते हैं और व्यक्ति के व्यवहार का मार्गदर्शन करते हैं।

नैतिक मूल्य क्या हैं? नैतिक मूल्य वे नियामक सिद्धांत होते हैं जो समाज में व्यवहार के सही और गलत की पहचान कराते हैं। ये नियम या नीतियां व्यक्ति को सामाजिक कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक करती हैं। नैतिकता समय, समाज और संस्कृति के अनुसार भिन्न हो सकती है, पर इसका मूल उद्देश्य व्यक्ति को मनुष्यत्व एवं सभ्यता की उच्च मान्यताओं से जोड़ना होता है। उदाहरण के लिए, माता-पिता का सम्मान हर समाज में महत्वपूर्ण नैतिक मूल्य माना जाता है, जबकि विवाह पूर्व संबंधों के प्रति दृष्टिकोण समाजानुसार बदलता है।

.**साहित्य का नैतिक मूल्य में योगदान -** साहित्य में नैतिकता का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्ति की सोच, व्यवहार और सामाजिक चेतना का विकास करता है। साहित्य में मर्यादा, सत्य, करुणा, परोपकार और न्याय जैसे मूल्यों का प्रचार-प्रसार होता है। महान साहित्यकार जैसे प्रेमचंद, दिनकर, महादेवी वर्मा ने अपने लेखन के माध्यम से नैतिक मूल्यों को प्रस्तुत किया है, जो समाज में नैतिक जागरूकता बढ़ाते हैं। साहित्य बच्चों में नैतिक मूल्य विकास के बीज डालता है और व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होता है।

भारतीय साहित्य में नैतिक मूल्य-भारतीय साहित्य में नैतिकता का गहरा स्थान है। महाकाव्यों, पौराणिक कथाओं और धार्मिक ग्रंथों जैसे रामचरितमानस, महाभारत, भगवद्गीता आदि में नैतिक संघर्ष, धर्म, कर्तव्य और आदर्श चरित्रों को प्रस्तुत किया गया है जो नैतिकता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये साहित्यिक कृतियाँ जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों को समझाने के साथ नैतिक शिक्षा भी प्रदान करती हैं। आधुनिक साहित्य में भी सामाजिक न्याय, समानता, और मानवीय गरिमा जैसे विषयों पर नैतिक चेतना का प्रसार किया गया है।

साहित्य और सामाजिक नैतिक चेतना- साहित्य समाज का दर्पण है जो सामाजिक नैतिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है और समाज को सही दिशा देता है। वह केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक समझ, दया, संघर्ष, और मानवता

के आदर्शों को बढ़ावा देता है। इसके बिना साहित्य अधूरा है और समाज को भ्रमित कर सकता है। इसलिए महान साहित्य नैतिक चेतना जगाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है और समाज के बेहतर निर्माण में सहायक होता है।

इस प्रकार साहित्य में नैतिक मूल्य जीवन के सत्य, सदाचार और सामाजिकता के आधार हैं, जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए दिशा-निर्देश और प्रेरणा का स्रोत हैं। ये मूल्य समाज में सद्भाव, न्याय, और परोपकार कायम रखने में मदद करते हैं।साहित्य की यह नैतिक भूमिका ही इसे समस्त मानव समाज का मार्गदर्शक बनाती है।साहित्य में 'मूल्य' का अर्थ नैतिकता, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय सिद्धांतों और मूल्यों की अभिव्यक्ति से है, जो पाठकों को जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं को समझने और आत्मसात करने में मदद करते हैं। इसका तात्पर्य है कि साहित्य किसी कृति के महत्व को बताता है, चाहे वह सौंदर्यशास्त्र, सामाजिक प्रासंगिकता या विचारों को बढ़ावा देने की उसकी क्षमता हो। ये मूल्य व्यक्ति के आचरण और समाज की संस्कृति को आकार देते हैं।

साहित्यिक मूल्य के आयाम

नैतिक और सामाजिक साहित्य अक्सर नैतिकता, ईमानदारी, त्याग और सहिष्णुता जैसे मूल्यों को प्रदर्शित करता है, जो "क्या करना चाहिए और क्या नहीं" की शिक्षा देते हैं।भावनात्मक और व्यक्तिग। साहित्य मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं को जगाता है, जिससे पाठक व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ते हैं और पाठ से कुछ मूल्यवान प्राप्त करते हैं।दार्शनिक और आध्यात्मिक यह जीवन के बड़े सवालों, जैसे कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बारे में दार्शनिक विचार प्रस्तुत कर सकता है।

साहित्य और मूल्य का संबंध

मूल्यों का प्रसार साहित्य मानवीय मूल्यों को प्रसारित करने का एक शक्तिशाली माध्यम है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी मार्गदर्शन करता है।

समाज का प्रतिबिंब यह समाज को परिष्कृत और प्रतिबिंबित करता है, और पाठक को जीवन में ग्राह्य और त्याज्य का बोध कराता है।आलोचनात्मक मूल्यांकन साहित्यिक मूल्य के मूल्यांकन में कृति की विषय-वस्तु, शैली, और सांस्कृतिक प्रभाव जैसे मानदंडों का उपयोग किया जाता है। कुल मिलाकर, साहित्य में मूल्य का अर्थ सिर्फ किसी कहानी के बारे में नहीं है, बल्कि यह मानवीय अनुभवों और सामाजिक सिद्धांतों के बारे में है जो साहित्य के माध्यम से व्यक्त होते हैं।

साहित्य में नैतिक मूल्य समाज के आधारभूत आदर्श होते हैं जो जीवन में सही और गलत के मानदंड स्थापित करते हैं। ये मूल्य व्यक्ति के चरित्र निर्माण, सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने, और जीवन को अर्थपूर्ण और सरल बनाने में सहायक होते हैं। साहित्यकार अपने अनुभव और जीवन सत्य को साहित्य में व्यक्त करते हैं, जिससे ये नैतिक मूल्य पाठकों तक पहुँचते हैं और समाज में जागरूकता फैलाते हैं।भारतीय साहित्य में निहित नैतिक मूल्य जैसे सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, सहिष्णुता, न्याय और कर्तव्यनिष्ठा का समृद्ध इतिहास है। प्राचीन काल से भक्ति काल तक, रामायण, महाभारत, भगवद गीता जैसे ग्रंथों में नैतिक शिक्षा का गहरा प्रभाव है। आधुनिक हिंदी साहित्यकारों ने भी सामाजिक न्याय, मानवता और नैतिकता के मुद्दों को साहित्य का मूल विषय बनाया है।आज के समय में, साहित्य में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता विशेष रूप से बढ़ गई है क्योंकि समाज में विविधता, व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक समस्याओं के बीच नैतिक चेतना बनाए रखना आवश्यक है। साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि यह समाज सुधार और आदर्शों के प्रसार का माध्यम भी है। इसलिए, साहित्य में नैतिक मूल्यों का समावेश समाज को नैतिक और सांस्कृतिक

दृष्टि से सुदृढ़ बनाने में मदद करता है।इस प्रकार, साहित्य में नैतिक मूल्य जीवन के आदर्शों, सामाजिक न्याय और मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है, जो समाज को संवेदनशील, जागरूक और नैतिक रूप से मजबूत बनाता है।

सूरदास के काव्य में प्रमुख नैतिक मूल्य:

भक्ति और प्रेम: सूरदास के पदों में कृष्ण के प्रति अटूट और निस्वार्थ प्रेम को दर्शाया गया है, जिसे आत्मज्ञान का मार्ग माना गया है। भक्ति को कर्मकांड से श्रेष्ठ बताया गया है।

सादगी और विनम्रता: वे अपने पदों के माध्यम से सादगी और विनम्रता का महत्व समझाते हैं। जीवन में सरलता और विनम्रता आवश्यक है।

आत्मज्ञान: उनके काव्य का उद्देश्य केवल भौतिक सुख की प्राप्ति नहीं, बल्कि कृष्ण के प्रति भक्ति के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त करना है। यह आंतरिक और आध्यात्मिक अनुभव पर आधारित है।

मानवीय भावनाएँ सूरदास ने प्रेम, विरह और करुणा जैसी मानवीय भावनाओं को गहराई से चित्रित किया है। राधा के कृष्ण के प्रति विरह का वर्णन आत्मा के परमात्मा से बिछड़ने का प्रतीकात्मक रूप है।

सामाजिक चेतना: यद्यपि सूरदास का काव्य मुख्यतः भक्ति पर केंद्रित है, लेकिन उसमें सामाजिक चेतना के भी दर्शन होते हैं। वे समाज की रूढ़ियों और दमनकारी प्रभावों की आलोचना करते हैं।

सकारात्मकता और आशावाद: सूरदास कठिन परिस्थितियों में भी आशावादी बने रहने और संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं।

कबीर के काव्य में प्रमुख नैतिक मूल्य

प्रेम और मानवता: कबीर ने सभी प्राणियों में ईश्वर को देखा और प्रेम और समभाव का उपदेश दिया।

समानता और सामाजिक न्याय: उन्होंने जाति और धर्म के आधार पर होने वाले भेदभाव का विरोध किया और एक वर्गहीन, समान समाज की वकालत की।

त्याग और वैराग्य: कबीर ने सांसारिक मोह-माया और भौतिक सुखों को त्यागकर ईश्वर भक्ति में लीन रहने का संदेश दिया।

सत्य और सदाचार: उन्होंने सत्य और सदाचार के मार्ग पर चलने पर बल दिया और आंतरिक पवित्रता को बाह्य आडंबर से अधिक महत्वपूर्ण माना।

आत्म-नियंत्रण: उन्होंने क्रोध, मोह और द्वेष जैसी नकारात्मक भावनाओं से मुक्त होकर इंद्रिय संयम और संतोष को जीवन का आधार माना।

ज्ञान और अनुभव: उन्होंने पोथी ज्ञान का विरोध किया और अनुभवजन्य ज्ञान (आँखों देखी) को श्रेष्ठ माना, जिससे जीवन में सत्य की पहचान हो सके।

निर्मलता: कबीर ने बाहरी दिखावे के बजाय मन और आत्मा की पवित्रता पर जोर दिया।

तुलसीदास के काव्य में नैतिक मूल्य जैसे कर्तव्य, करुणा, सेवा, सत्य, न्याय, और लोक-कल्याण हैं, जो 'रामचरितमानस' जैसे उनके कार्यों में गहराई से चित्रित हैं। उन्होंने राजा के धर्म, मंत्रियों की निष्ठा और प्रजा के प्रति आचरण जैसे विषयों के माध्यम से नैतिक और आदर्श समाज की कल्पना की। उनके काव्य में धर्म और आध्यात्मिकता के साथ-साथ सामाजिक न्याय और समानता की भावना भी है, जो आज भी प्रासंगिक है।

प्रमुख नैतिक मूल्य

कर्तव्य और धर्म-पालन: तुलसीदास ने अपने काव्य में कर्तव्यों और धर्म के पालन पर बहुत जोर दिया है, खासकर 'रामराज्य' के उदाहरण के माध्यम से, जहाँ राजा का मुख्य धर्म प्रजा का कल्याण है।
करुणा और सेवा: उनके पात्रों में करुणा और सेवा की भावना गहरी है। राम के चरित्र में गरीबों और दलितों के प्रति करुणा और सहायता दिखाई देती है।
न्याय और समानता: तुलसीदास ने समाज के निम्न वर्ग के लोगों को भी अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया है, जो उस समय के सामाजिक बहिष्कार के खिलाफ एक प्रगतिशील कदम था। उन्होंने समाज में समानता और न्याय के महत्व पर जोर दिया।
सत्य और निष्ठा: उनके काव्य में सत्य, निष्ठा और अखंडता जैसे मूल्यों को प्रमुखता दी गई है।
धैर्य और संयम: विपरीत परिस्थितियों में धैर्य और संयम बनाए रखने की शिक्षा दी गई है, जो आज भी प्रेरणादायक है।
सामाजिक सद्भाव: सार्वजनिक सद्भाव और भाईचारे को बनाए रखना तुलसीदास के अनुसार धर्म का मूल है।
लोक-कल्याण: तुलसीदास की रचनाओं के मूल में लोक-मंगल की भावना है, जो व्यक्ति और समाज की भलाई के लिए आदर्श जीवन मूल्यों को प्रस्तुत करती है।
नैतिक नेतृत्व: नेताओं और शासकों के लिए तुलसीदास की शिक्षाएं प्रासंगिक हैं, जो जवाबदेही और जन-केंद्रित शासन की आवश्यकता पर जोर देती हैं।
बिहारी के काव्य में नैतिक मूल्य नीति, भक्ति और सामाजिक मर्यादा जैसे विभिन्न रूपों में पाए जाते हैं। उनके दोहों में सदाचार, मानव आचरण की बारीकियों, सामाजिक मर्यादाओं और जीवन के व्यावहारिक पहलुओं का वर्णन मिलता है, जो प्रेरणादायक और चिंतनशील होते हैं। इसके अतिरिक्त, भक्ति के माध्यम से भी नैतिक मूल्य सामने आते हैं, जैसे कि राधा-कृष्ण के प्रेम के चित्रण में श्रद्धा और आदर का भाव।
नैतिक मूल्यों के प्रमुख रूप:
नीति और सदाचार: बिहारी ने अपने दोहों में जीवन के व्यावहारिक और नैतिक पक्षों को उजागर किया है।
वे सदाचार और सामाजिक मर्यादाओं पर जोर देते हैं।
उनकी नीति-कविताएँ व्यक्ति को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।
भक्ति: उनके काव्य में कृष्ण भक्ति की गहरी छाप है।
वे कृष्ण के दिव्य प्रेम और उनकी लीलाओं को श्रद्धा और आदर के साथ प्रस्तुत करते हैं।
भक्ति के माध्यम से भी नैतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है।
सामाजिक और व्यावहारिक ज्ञान: बिहारी ने दरबारी कवि होने के नाते शासन और समाज के बारे में भी लिखा है, जिसमें नैतिक पक्ष भी शामिल हैं।
उन्होंने 'दुसह दुराज' (कठिन दुशासन) का चित्रण किया है, जिससे प्रजा के दुख और अंधेरगर्दी का पता चलता है।
उनके काव्य में सामाजिक विसंगतियों पर भी प्रकाश डाला गया है।
गुणों का महत्व: बिहारी ने गुणों के महत्व पर भी प्रकाश डाला है।
उदाहरण के लिए, एक दोहे में कहा गया है कि "बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।" (बिना गुणों के केवल उपनाम से कोई बड़ा नहीं होता)।

प्रसाद के काव्य में नैतिक मूल्य राष्ट्रीयता, आदर्श नारी, त्याग, करुणा और मानवीय गरिमा के रूप में प्रकट होते हैं। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज और संस्कृति को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया, जहां आदर्श शासक, साहसी और त्यागी नारी पात्र और न्याय और कर्तव्य का महत्व दर्शाया गया है।

प्रसाद के काव्य में प्रमुख नैतिक मूल्य:

राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना: प्रसाद के काव्य में राष्ट्रप्रेम और अपनी संस्कृति के प्रति गौरव की भावना प्रमुख है। उन्होंने प्राचीन भारत की समृद्धि और सांस्कृतिक मूल्यों को उजागर किया है।

आदर्श नारी: उन्होंने नारी को त्याग, बलिदान, करुणा और श्रद्धा का प्रतीक माना है। उनके नाटकों में ध्रुवस्वामिनी और स्कंदगुप्त जैसे पात्र स्त्री पात्रों को एक नई, शक्तिशाली और संघर्षशील छवि प्रदान करते हैं जो अन्याय के खिलाफ लड़ती है।

उदात्त मानवीय मूल्य: प्रसाद के साहित्य में न्याय, कर्तव्य, सहानुभूति और उदारता जैसे उदात्त मानवीय मूल्यों पर बल दिया गया है। उन्होंने प्रेम और करुणा के महत्व को दर्शाया है, जो व्यक्ति और समाज को बेहतर बनाता है।

सत्य और न्याय के लिए संघर्ष: उनके नाटकों में पात्र अक्सर अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करते हैं, जो नैतिक मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

व्यक्तिगत और सामाजिक संतुलन: प्रसाद ने व्यक्ति के हृदय और बुद्धि के बीच संतुलन बनाए रखने पर जोर दिया। उन्होंने यह भी दिखाया है कि कैसे अत्यधिक भावुकता या तर्कवाद से बचना चाहिए और इच्छा, क्रिया और ज्ञान में सामंजस्य रखना चाहिए।

आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन: उनके काव्य में एक गहरा आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन भी है, जो प्रेम और सौंदर्य के माध्यम से जीवन के अर्थ की खोज करता है।

यह वीडियो जयशंकर प्रसाद के काव्य में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना पर बात करता है:

प्रेमचंद के साहित्य में मानवीयता, न्याय, करुणा, सत्य और सादगी जैसे नैतिक मूल्य प्रमुख हैं। उनके लेखन का मुख्य उद्देश्य समाज में नैतिकता और मानवीय संवेदनाओं को उजागर करना था, जिससे सामाजिक सुधार को बढ़ावा मिले। वे अपने पात्रों के माध्यम से जीवन की वास्तविकताओं को चित्रित करते थे और जटिल समस्याओं के बीच नैतिक दुविधाओं को प्रस्तुत करते थे।

मानवीयता और करुणा: प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में सहानुभूति और करुणा को महत्वपूर्ण स्थान दिया, जैसे 'गोदान' और 'पूस की रात' में। बैलों की कहानी (हीरा और मोती) में मानवीयता और करुणा के भाव दर्शाए गए हैं।

न्याय और सत्य: न्याय और सत्य के प्रति प्रतिबद्धता उनके साहित्य का केंद्रीय भाव है। वे भ्रष्टाचार, शोषण और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़े होते हैं।

सादा जीवन और उच्च विचार: उनके पात्र अक्सर सादा जीवन और उच्च विचारों के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं, और दिखावटी जीवन की अपेक्षा सादगी और यथार्थ को महत्व देते हैं।

समानता और सामाजिक सुधार: प्रेमचंद ने समाज की कुरीतियों और आडंबरों का विरोध किया और समानता के लिए संघर्ष किया, जैसा कि 'कर्मभूमि' और 'गबन' जैसी रचनाओं में देखा जा सकता है।

आत्म-रक्षा और संघर्ष: उनकी रचनाओं में आत्मनिर्भरता, आत्म-रक्षा और संघर्ष का संदेश भी मिलता है। 'हीरा और मोती' की कहानी में, बैलों का अपनी आजादी के लिए संघर्ष करना इसका एक उदाहरण है।

राष्ट्रीय चेतना: उनके साहित्य में राष्ट्रीय चेतना भी झलकती है, जो स्वतंत्रता और राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति सम्मान को बढ़ावा देती है

पंत के काव्य में नैतिक मूल्य गांधीवाद, प्रकृति-प्रेम और मानवीय आदर्शों पर केंद्रित हैं। उनके काव्यों में सत्य, अहिंसा, प्रेम और करुणा जैसे मूल्यों को दर्शाया गया है, खासकर 'स्वर्णधूलि' जैसी रचनाओं में, जहाँ उन्होंने नारी-सम्मान, सामाजिक सामंजस्य और क्षमा जैसे मूल्यों की महत्ता को समझाया है। उनके काव्य की प्रेरणा का एक प्रमुख स्रोत प्रकृति है, जिसे वे एक सजीव देवी के रूप में चित्रित करते हैं, और प्रकृति से जुड़कर मनुष्य को आत्मिक विकास और सम्मान के नैतिक मूल्यों को सीखना चाहिए।

प्रमुख नैतिक मूल्य

गांधीवाद और सामाजिक न्याय: पंत के काव्य में गांधीवाद का गहरा प्रभाव दिखता है, जिसमें सत्य, अहिंसा और मानवतावाद के विचारों को प्रमुखता दी गई है। उन्होंने 'ग्राम्या' जैसी रचनाओं के माध्यम से ग्रामीण समाज के नैतिक मूल्यों और जीवन को भी महिमामंडित किया है।

मानव-प्रेम और करुणा: उनके काव्य में मानव-मंगल और विश्व-प्रेम की भावना प्रबल है। पंत का मानना था कि प्रेम के माध्यम से ही मानवता का नव-निर्माण संभव है और वे मनुष्य को दूसरों के प्रति दयालु और विनम्र रहने की सीख देते हैं।

नारी-सम्मान: 'पतिता' जैसी कविताओं में पंत ने यह स्थापित किया है कि नारी देह से नहीं, बल्कि मन से कलंकित होती है और प्रेम में वह पतन को भी पावन करने की शक्ति रखता है।

प्रकृति से जुड़ाव: पंत प्रकृति को जीवन का आधार मानते हैं और उसके प्रति सम्मान और संरक्षण का भाव रखते हैं। उनके काव्य में प्रकृति के प्रति यह लगाव एक नैतिक मूल्य के रूप में उभरता है, जहाँ वे प्रकृति को माँ समान मानते हैं और मनुष्यों को उसकी रक्षा करने की प्रेरणा देते हैं।

आत्म-विकास और आत्म-सम्मान: पंत का मानना है कि व्यक्ति का विकास सामाजिक जीवन और आत्मिक शांति दोनों से संभव है। उनके काव्य में मनुष्य को स्वयं के आंतरिक गुणों को पहचानकर गरिमापूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा दी गई है।

सत्य और करुणा: 'सामंजस्य' और 'लोकसत्य' जैसी कविताओं में पंत ने भाव-सत्य, वस्तु-सत्य और मानवत्व की करुणा को महत्व दिया है, जो जीवन के उच्च नैतिक मूल्यों को दर्शाते हैं।

निष्कर्ष- इस प्रकार साहित्य में नैतिक मूल्य जीवन के सत्य, सदाचार और सामाजिकता के आधार हैं, जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए दिशा-निर्देश और प्रेरणा का स्रोत हैं। ये मूल्य समाज में सद्भाव, न्याय, और परोपकार कायम रखने में मदद करते हैं।साहित्य की यह नैतिक भूमिका ही इसे समस्त मानव समाज का मार्गदर्शक बनाती है।

संदर्भ सूची-

1. भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्य- बीए प्रथम वर्ष
2. भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्य -बीए द्वितीय वर्ष
3. भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्य- बीए तृतीय वर्ष

shivlala77@gmail.com. 8823045608

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 128-131
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैश्वीकरण के युग में संस्कृत नीतिकाव्यों की प्रासंगिकता

हिमांशु कुमार,
SRF
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड।

शोध सार– वैश्वीकरण के इस युग में विश्व समाज एक गाँव के रूप में परिणत हो चुका है। अभी साधन एवं संचार के अनेक माध्यम हैं जिसके कारण विश्व के एक कोने से दुसरे कोने में आसानी से जाया जा सकता है। इस वैश्वीकरण के कारण सम्पूर्ण विश्व में अनेक सकारात्मक एवं नकारात्मक बदलाव हुए हैं। सकारात्मक बदलावों में जैसे स्वास्थ्य सेवाएँ बढी हैं, यातायात सुलभ हुआ है, संचार में क्रांति हुई है, प्रौद्योगिकी एवं सोशल मीडिया ने जीवन को आसान बनाने का कार्य किया है। इसके विपरीत नकारात्मक बदलावों में खनन, जनसंख्या विस्फोट, प्रदूषण, आतंक आदि में भी वृद्धि देखी गई है। इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संस्कृत नीतिकाव्यों की प्रासंगिकता पर प्रस्तुत शोध आलेख में विचार किया गया, जहाँ यह ज्ञात हुआ कि वैश्वीकरण के कारण जहाँ विश्व समुदाय समीप आया है वहीं इसके कारण बहुत से मनुष्य जो दुष्ट प्रवित्ति के होते हैं, जो मूर्ख होते हैं, जो विद्वान होते हैं आदि की जानकारी हम प्रस्तुत नीतिकाव्यों के अध्ययन से कर सकते हैं। सच्चे मित्रों का स्वभाव कैसा होता है, शत्रु कौन होता है, विश्व बन्धुत्व क्या है आदि–आदि की जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त हितोपदेश में एक प्रकरण का नाम ही मित्रलाभ है जो यह बताता है कि मित्र होने से क्या–क्या लाभ हो सकता है आदि। इस प्रकार वैश्वीकरण के दौर में संस्कृत नीतिकाव्य प्रासंगिक बने हुए हैं।

मुख्य शब्द– प्रासंगिकता, सहानुभूति, प्रवित्ति, सिद्धान्त, सकारात्मक।

प्रस्तावना–

आधुनिक समय में विश्व को एक ''**वैश्विक गाँव**'' की संज्ञा दी गई है, जिसका मुख्य कारण ''वैश्वीकरण''(Globalization) है। वैश्वीकरण उस प्रक्रिया को कहा जाता है जिसके अन्तर्गत विश्व के सभी देश, समाज, अर्थव्यवस्था, तकनीक, संस्कृति एवं संचार इस प्रकार जुड गए हैं जो एक–दूसरे पर निर्भर हैं। वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है।[1] वैश्वीकरण के दौर में जब सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्थाएँ जुडी हुईं है एवं इसके कारण भाषा, संस्कृति, समाज, संचार में काफी समीपता आई है। वैश्वीकरण के मुख्य उद्देश्यों में अन्तरराष्ट्रीय स्तरों पर परस्पर सहयोग, आर्थिक समानता, विश्व–बंधुत्व की भावना का विकास एवं विकास हेतु नवीन साझेदारियों को बढावा देना है।

वैश्वीकरण के कारण विश्व की आर्थिक स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन देखे गए हैं जिसके कारण राष्ट्र परस्पर दुश्मनी को छोडकर अपने राष्ट्र एवं नागरिकों के उन्नयन के लिए आपस में सहयोग करते हैं एवं युद्ध से दूर हुए हैं। इसी के कारण वैश्विक संस्थाओं की उत्पति हुई है। वैश्वीकरण के कारण जहाँ विश्व के लोगों में समीपता बढी है वहीं भ्रष्टाचार आदि बुराईयाँ भी बढी हैं। इसके कारण विश्व में बाजार की अनुकूल कुछ भाषाओं के प्रभाव के कारण अन्य भाषाएँ और बोलियाँ विलुप्ती के कगार पर जा रही हैं। स्वास्थ्य सुविधाएँ बढी हैं लेकिन स्वास्थ्य को खराब करने के लिए पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले कारकों यथा– वृक्षों की कटाई, खनन, कारखानों आदि में वृद्धि देखी गई है। इसके साथ ही संस्कृति

में भी वैश्वीकरण का प्रभाव देखने को मिलता है। यही सब कारणों से कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के दौर में जब सम्पूर्ण विश्व समीप आता जा रहा है एवं इससे होने वाले सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों से प्रभावित हो रहा है तब क्या आज से हजार वर्ष या उससे भी पूर्व लिखे गए संस्कृत नीति काव्य प्रासंगिक है ? यदि हाँ तो किस प्रकार से और नहीं तो क्यों नहीं ? इन्हीं बिन्दुओं पर आने वाली पंक्तियों में चर्चा की जाएगी।

संस्कृत नीति काव्यों में पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, नीतिशतक, विदुरनीति, चाणक्यनीति आदि ग्रन्थों की भी गणना की जाती है। वैश्वीकरण के इस दौर में उक्त ग्रन्थों की प्रासंगिकता पर चर्चा करें तो हमें कुछ बातों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। जैसे–

1. विश्व बन्धुत्व
2. मित्रता का महत्व
3. सामाजिक सिद्धान्त एवं आचरण
4. ज्ञान और शिक्षा
5. मूर्खता
6. विवेक, वैराग्य, संतोष, कर्म एवं भाग्य आदि।

ये सभी वैश्वीकरण के युग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः इन सभी का ज्ञान होना हमारे व्यक्तित्व को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। अधुना हम देखते हैं कि उक्त विषयों पर हमारे कवियों ने स्वरचित नीतिकाव्यों में क्या–क्या कहा है ?

1. **''विश्व बन्धुत्व''** पर चर्चा करते हुए नीति काव्यों में कहा गया है–

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[2]

2. **''मित्रता के महत्व''** को बताते हुए नीतिशतक में कहा गया है– ''यदि सुहृद् दिव्यौषधैः किं फलम्'' अर्थात् यदि सुन्दर हृदयों वाला मित्र हो तो दिव्य गुणों से युक्त औषधि की क्या आवश्यकता ? इसके अतिरिक्त पञ्चतन्त्र एवं हितोपदेश में ''मित्रलाभ'' नामक प्रकरण की प्राप्ति होती है। हितोपदेश में कहा गया है कि ''जो नेत्रों के लिए आनन्द का पात्र हो, मन को आह्लादित करने वाला हो सुख एवं दुख में पुरी सहानुभूति हो, ऐसा मित्र दुर्लभ होता है।'' मित्रं प्रीतिरसायनं नयनयोरानन्दनं चेतसः, पात्रं यत्सुखदुःखयोः सह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम्।''[3] इसी काव्य में मित्र के सान्निध्य का वर्णन करते हुए कहा गया है–

''यस्य मित्रेण सम्भाषा, यस्य मित्रेण संस्थितिः।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नाऽस्तीह पुण्यवान्।।[4]

इसके बाद मित्र की महत्ता का वर्णन करते हुए चाणक्य नीति में कहा गया है– ''दिशः शून्यास्त्वबान्धवाः।''[5] अर्थात् जिनके मित्र नहीं होते उनकी सभी दिशाएँ शून्य होती है। विदुरनीति में सच्चे मित्र का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

''यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत तद् वै मित्रं सङ्गतानीतराणि।''[6]

3. **''सामाजिक सिद्धान्त एवं आचरण''** पर चर्चा करते हुए नीति काव्यों में विविध श्लोकों का प्रणयन् किया गया है। जैसे– हितोपदेश में सामाजिक सिद्धान्त के बारे में विचार करते हुए कहा गया है कि –

ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः, पुत्रः शत्रुरपण्डितः।।[7]

इसी प्रकार के और भी उदाहरण प्रस्तुत काव्य में देखने को मिलते हैं जो सामाजिक सिद्धान्त की ओर इङ्गित करते हैं। जैसे–

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कहलेन वा।।[8]

नीति शतक में इसी सामाजिक सिद्धान्त को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना
प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति।।[9]

इसी प्रकार के सिद्धान्तों का उल्लेख अन्य नीति काव्यों में भी दृश्यमान होता है।
आचरण की बात करें तो नातिकाव्यों में इसका विशेष वर्णन मिलता है। जैसे– हितोपदेश में कहा गया है कि पण्डित वही है जो–
मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।[10]
आचरण संबंधित इसी प्रकार के अन्य उदाहरणों की प्राप्ति नीति काव्यों में देखने को मिलती है। जैसे– विदुरनीति में कहा गया है कि जो व्यक्ति ऐश्वर्य या उन्नति को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें छः दोषों का परित्याग कर देना चाहिए–
षड् दोषाः पुरूषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता।।[11]
नीतिशतक में कहा गया है कि सेवक यदि चुप रहता है तो वह गूँगा हो जाता है, भाषण में यदि चतुर है तो वह अतिवक्ता हो जाता है आदि–आदि। अर्थात् सेवा कार्य अतिकठिन कार्य है क्योंकि यह योगियों द्वारा भी अगम्य है। इसी को अधोलिखित पंक्ति में इस प्रकार उल्लेखित किया गया है–
मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च सदा दूरतश्चाप्रगल्भः ।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।।[12]

4. **ज्ञान और शिक्षा–** ज्ञान और शिक्षा को लेकर नीतिकाव्यों में विशेष उल्लेख देखे जाते हैं। जैसे– शिक्षा की प्रशंसा करते हुए हितोपदेश में कहा गया है कि –
विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।
विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाऽऽद्रियते सदा।।[13]

नीतिशतक में ज्ञान और शिक्षा पर विचार करते हुए कहा गया है कि–
यदा किञ्चिज्ञोऽहं गज इव मदान्धः समभवम्
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतम्
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।[14]
अर्थात् जब मैं अज्ञानी था तब मैं हाथी की भाँति अभिमान में अँधा हो रहा था, मैं सर्वज्ञ हूँ ऐसा आभास हो रहा था, परन्तु जब मैं विद्वानों के समूह में बैठा और कुछ–कुछ ज्ञान हुआ तब मेरा यह दर्प ज्वर की भाँति उतर गया एवँ मैं मूर्ख हूँ ऐसा ज्ञान होने लगा। चाणक्य नीति में कहा गया है कि यदि विद्या का अभ्यास न किया जाए तो वह विष के समान होता है – अनभ्यासे विषं विद्या। इसी प्रकार विदुरनीति में उदाहरणों की प्राप्ति होती है।

5. **मूर्खता–** इस विषय को लेकर नीतिकाव्यों में बहुत से उदाहरणों की प्राप्ति होती है जिसमें से कुछेक को अधोलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है। सर्वप्रथम नीतिशतक में मूर्ख का वर्णन करते हुए कहा गया है–
अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विग्धं ब्रह्मापि नरं न रञ्जयति ।।[15]
अर्थात् अज्ञानी व्यक्ति को सुखपूर्वक समझाया जा सकता है, विशेषज्ञों को और भी आसानी से समझाया जा सकता है किन्तु जिस मनुष्य के पास अधुरा ज्ञान हो उसे ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते। इसमें यह भी कहा गया है कि हो सकता है कभी बालू से भी तेल निकाल लिया जाए, घुमता हुआ मनुष्य खरगोश के सिर पर सींग को प्राप्त कर ले आदि लेकिन हठी मूर्ख के चित्त को कोई भी प्रसन्न नहीं कर सकता–
लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपि पर्यटन्शशविषाणमासादयेन्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।[16]

हितोपदेश में मूर्ख का वर्णन करते हुए कहा गया है कि –
अहित हित–विचारशून्यबुद्धेः
श्रुतिसमयैर्बहुभिस्तिरस्कृतस्य।
उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः
पुरुषपशोश्च पशोश्च को विशेषः ?।।[17]
इस प्रकार कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।
इसके बाद विवेक, वैराग्य, संतोष, कर्म, भाग्य एवं आधुनिक दौर में प्रासंगिक नैतिक मूल्यों को लेकर भी प्रस्तुत नीतिकाव्यों में उल्लेख मिलते हैं। जैसे– हितोपदेश में कहा गया है कि ''किसी भी कार्य की सिद्धि उद्योग से ही होती है इच्छामात्र से नहीं। क्योंकि सोये हुए सिंह के मुख में मृग स्वयं नहीं चले जाते हैं किन्तु उन्हें भी भोजन को प्राप्त करने हेतु प्रयत्न करना पडता है।'' इसी प्रकार नीतिशतक में वर्णित किया गया है–
नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः
स्वार्थान् सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे ।
क्षान्त्यैवाक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः।।[18]
इस प्रकार वैश्वीकरण के युग में प्रासंगिक होने वाले बहुत सारे उदाहरण नीतिकाव्यों में देखने को मिलती है।
निष्कर्ष– इस प्रकार हम प्रस्तुत उदाहरणों के माध्यम से देखते हैं कि संस्कृत नीतिकाव्यों का महत्त्व इस वैश्वीकरण के दौर में भी बना हुआ है एवं इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 21वीं सदी में वैश्वीकरण के युग में जब सम्पूर्ण विश्व एक गाँव अर्थात् ग्लोबल विलेज के रूप में पहचाना जा रहा है संस्कृत नीतिकाव्यों की प्रासंगिकता बनी हुई है।
सन्दर्भ सूची–

1. शैला एल.क्रोचर. वैश्वीकरण और संबंधः एक बदलती हुई दुनिया की पहचान की राजनीति. रोमैन और लिटिलफील्ड .(२००४) . p.१०
2. पण्डित, नारायण, हितोपदेश, मित्रलाभ, श्लोक–70
3. वही, श्लोक–232
4. वही, श्लोक–40
5. गोयल, डॉ० मुकुल, सम्पूर्ण चाणक्य–नीति, मथुरा, रोजगार प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–121
6. विदुरनीति, गोरखपुर, गीता प्रेस, श्लोक संख्या–37, पृष्ठ संख्या–69
7. पण्डित, नारायण, हितोपदेश, मित्रलाभ, श्लोक–21 (प्रस्तावना)
8. वही, श्लोक–01
9. मुसलगाँवकर, डॉ० राजेश्वरशास्त्री, नीतिशतकम्, वाराणसी, चौखम्भा प्रकाशन, 2011, श्लोक संख्या–27, पृष्ठ संख्या– 30
10. पण्डित, नारायण, हितोपदेश, मित्रलाभ, श्लोक–14
11. विदुरनीति, गोरखपुर, गीता प्रेस, श्लोक संख्या–83, पृष्ठ संख्या–17
12. मुसलगाँवकर, डॉ० राजेश्वरशास्त्री, नीतिशतकम्, वाराणसी, चौखम्भा प्रकाशन, 2011, श्लोक संख्या–27, पृष्ठ संख्या– 58
13. पण्डित, नारायण, हितोपदेश, मित्रलाभ, श्लोक–6,7 (प्रस्तावना)
14. मुसलगाँवकर, डॉ० राजेश्वरशास्त्री, नीतिशतकम्, वाराणसी, चौखम्भा प्रकाशन, 2011, श्लोक संख्या–08, पृष्ठ संख्या– 09
15. वही, श्लोक संख्या–03,पृष्ठ संख्या–03
16. पण्डित, नारायण, हितोपदेश, मित्रलाभ, श्लोक–45
17. मुसलगाँवकर, डॉ० राजेश्वरशास्त्री, नीतिशतकम्, वाराणसी, चौखम्भा प्रकाशन, 2011, श्लोक संख्या–70, पृष्ठ संख्या– 75

Email- himansukumarhns@gmail.com
मो०– 6203018775

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 132-135
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

PARENTING EFFECTS ON CHILDREN

Alka Pradhan
Research Scholar of English,
Sona Devi University, Ghatshila

ABSTRACT
Parenting is a foundational aspect of human development and has a profound influence on shaping a child's cognitive, emotional, and social well-being. The parent-child relationship provides the first and most important social context within which a child learns to navigate the world. This paper explores the multifaceted effects of parenting on children's psychological, emotional, academic, and social outcomes. It examines various parenting styles—authoritative, authoritarian, permissive, and neglectful—as proposed by developmental psychologist Diana Baumrind and others, and their corresponding impacts on children's personality and behavior. Furthermore, the paper analyzes the challenges of parenting in the modern digital era, highlighting the importance of emotional intelligence, attachment theory, and positive parenting practices. It concludes by emphasizing that effective parenting is not merely about enforcing discipline or meeting physical needs but about fostering empathy, trust, resilience, and balanced autonomy in children. The research draws upon major theoretical frameworks and empirical studies to demonstrate that the quality of parental guidance largely determines a child's potential for lifelong success and happiness.

KEYWORDS: Parenting, cognitive, multifaceted effects, emotional, empirical studies

INTRODUCTION AND OVERVIEW

Parenting plays a crucial role in shaping a child's overall development. The way parents communicate, guide, and support their children influences not only their behavior but also their emotional, intellectual, and social growth. Parenting is more than just providing food, shelter, and education—it is about creating an environment that nurtures love, security, and moral guidance. It is a lifelong process that involves teaching children how to think, feel, and behave in socially acceptable ways.

Developmental psychologists emphasize that early parental behavior forms the blueprint for a child's personality. From infancy, children look to their parents as models of behavior and emotional regulation. When parents offer affection and clear boundaries, children tend to develop confidence and resilience. However, neglect or inconsistent parenting can lead to behavioral and emotional difficulties that persist into adulthood.

Parenting Styles

Diana Baumrind's (1966) model of parenting styles remains one of the most widely studied frameworks. She identified four major styles: authoritative, authoritarian, permissive, and neglectful. Each has unique effects on a child's character formation:

Authoritative Parents are both nurturing and firm. They encourage independence but maintain clear rules and expectations. Children raised by authoritative parents tend to be confident, responsible, academically competent, and socially adept.

Authoritarian Parents are strict and controlling. They expect obedience without discussion. While their children may be disciplined, they often develop low self-esteem, anxiety, and a fear of failure due to lack of emotional support.

Permissive Parents are indulgent and lenient. They allow freedom without guidance, which can lead to impulsive behavior, poor self-discipline, and difficulty respecting authority.

Neglectful Parents show little interest in their children's lives. Such children often feel emotionally rejected, leading to poor academic performance, insecurity, and difficulty forming relationships.

In reality, most parents blend these styles, and cultural factors often shape how parenting is expressed. However, research consistently shows that authoritative parenting produces the healthiest emotional and behavioral outcomes.

EMOTIONAL AND PSYCHOLOGICAL EFFECTS

Parenting directly influences a child's emotional and psychological development. Children who grow up in emotionally responsive homes—where they are heard, valued, and loved—develop higher self-esteem and stronger emotional regulation. Emotional stability during childhood becomes the foundation for mental well-being in adulthood. Conversely, harsh, inconsistent, or emotionally distant parenting can lead to long-term psychological issues such as anxiety, depression, low self-worth, and trust issues. Emotional neglect can also make children more vulnerable to peer pressure and external validation.

Attachment Theory

The concept of attachment—first proposed by John Bowlby (1969)—is central to understanding emotional development. Secure attachment arises when parents consistently meet their child's emotional and physical needs. Such children trust their caregivers, feel safe to explore the world, and develop healthy relationships later in life.

In contrast, insecure attachments—resulting from neglect, abuse, or inconsistent caregiving—can cause children to fear abandonment, avoid intimacy, or struggle with dependency in adulthood. Mary Ainsworth's "Strange Situation" experiments (1978) further demonstrated that securely attached infants grow into more confident, empathetic individuals.

Parental Communication and Emotional Intelligence

Open and supportive communication between parents and children fosters emotional intelligence. When parents validate their child's emotions instead of dismissing them, children learn empathy and emotional regulation. Daniel Goleman (1995) highlighted emotional intelligence as a predictor of success, suggesting that parental nurturing contributes significantly to this trait.

Children raised in emotionally intelligent households tend to manage conflict better, form stronger friendships, and cope more effectively with stress. Thus, emotional development cannot be separated from parenting style and interaction quality.

THE ROLE OF MODERN PARENTING

The 21st century has dramatically changed the dynamics of parenting. With the rise of technology, social media, and globalization, parents face new challenges that previous generations did not. While technology has provided access to vast information and opportunities, it has also created distractions and reduced face-to-face family interactions.

Digital Parenting

Modern parents must navigate the digital landscape carefully. Unrestricted screen time can affect a child's attention span, sleep patterns, and social development. According to the American Academy of Pediatrics (2016), excessive screen exposure is linked to anxiety, poor academic performance, and decreased physical activity. Hence, digital literacy and parental supervision have become essential components of responsible parenting.

Positive Parenting in the Modern Age

Positive parenting has emerged as a contemporary approach that emphasizes empathy, active listening, and encouragement over punishment. It promotes cooperation rather than fear. Positive parents focus on guiding behavior through understanding rather than control, helping children internalize good values instead of obeying out of fear.

For example, instead of scolding a child for poor performance, a positive parent helps identify the cause, encourages effort, and celebrates small improvements. Research by Sanders et al. (2014) shows that positive parenting interventions reduce behavioral problems and increase emotional resilience in children.

Work-Life Balance and Parental Presence

In modern societies, dual-income families are common. While financial stability benefits the child, lack of time and emotional availability can harm parent-child bonding. Studies suggest that quality time matters more than quantity; even short, meaningful interactions can strengthen trust and connection.

LONG-TERM CONSEQUENCES OF PARENTING

Parenting effects are not confined to childhood—they extend across the lifespan. The values, coping mechanisms, and emotional templates children learn at home shape their adult relationships, decision-making, and overall well-being.

Positive Outcomes of Supportive Parenting

Children raised in nurturing environments often:

Develop high self-esteem and confidence.

Display empathy and prosocial behavior.

Achieve better academic and professional success.

Form stable relationships built on trust and respect.

Authoritative parenting, in particular, promotes autonomy and self-regulation, which are crucial for adult competence and leadership.

Negative Outcomes of Dysfunctional Parenting

In contrast, negative or inconsistent parenting can result in:

Emotional instability and mental health disorders.

Low self-worth and dependency issues.

Poor interpersonal skills or aggressive behavior.

Difficulty coping with challenges and responsibilities.

For instance, studies have linked authoritarian parenting to anxiety disorders and low emotional intelligence (Dwairy, 2010). Similarly, neglectful parenting often predicts antisocial behavior and academic underachievement.

Intergenerational Transmission of Parenting Styles

Children often internalize their parents' behaviors and replicate them in adulthood. A person raised in a warm, respectful home is more likely to become a supportive parent. Conversely, those who experienced neglect or abuse may struggle to break negative patterns unless they receive emotional support or therapy.

Thus, parenting not only molds individuals but also shapes the psychological fabric of entire generations.

CONCLUSION

Parenting is one of the most powerful forces shaping a child's life trajectory. From emotional stability to academic success, the quality of parental guidance determines much of a child's future happiness and social contribution. The essence of good parenting lies not in control or leniency but in balance—offering both freedom and boundaries, affection and discipline.

Effective parenting involves patience, empathy, consistency, and understanding. By nurturing emotional intelligence and providing secure attachment, parents can raise confident, compassionate, and socially responsible individuals who contribute positively to society. The modern world demands adaptive parenting—one that blends traditional values with contemporary awareness.

Ultimately, the legacy of good parenting is seen not only in a child's achievements but also in their kindness, resilience, and integrity.

REFERENCES

1. Baumrind, D. (1966). Effects of Authoritative Parental Control on Child Behavior. Child Development, 37(4), 887–907.
2. Baumrind, D. (1991). The Influence of Parenting Style on Adolescent Competence and Substance Use. Journal of Early Adolescence, 11(1), 56–95.
3. Bornstein, M. H. (Ed.). (2019). Handbook of Parenting: Volumes 1–5. New York: Routledge.
4. Bowlby, J. (1969). Attachment and Loss: Vol. 1. Attachment. New York: Basic Books.
5. Ainsworth, M. D. S., Blehar, M. C., Waters, E., & Wall, S. (1978). Patterns of Attachment: A Psychological Study of the Strange Situation. Hillsdale, NJ: Erlbaum.
6. Harris, J. R. (1998). The Nurture Assumption: Why Children Turn Out the Way They Do. New York: Free Press.
7. Goleman, D. (1995). Emotional Intelligence: Why It Can Matter More Than IQ. New York: Bantam Books.
8. Dwairy, M. (2010). Parental Inconsistency Versus Parental Authoritarianism: Associations with Symptoms of Psychological Disorders. Journal of Youth and Adolescence, 39(2), 148–159.
9. Sanders, M. R., Kirby, J. N., Tellegen, C. L., & Day, J. J. (2014). The Triple P-Positive Parenting Program: A Systematic Review and Meta-Analysis of a Multi-Level System of Parenting Support. Clinical Psychology Review, 34(4), 337–357.
10. American Academy of Pediatrics. (2016). Media and Young Minds. Pediatrics, 138(5), e20162591.
11. Maccoby, E. E., & Martin, J. A. (1983). Socialization in the Context of the Family: Parent-Child Interaction. In P. H. Mussen (Ed.), Handbook of Child Psychology (Vol. 4, pp. 1–101). New York: Wiley.
12. Steinberg, L. (2001). We Know Some Things: Parent–Adolescent Relationships in Retrospect and Prospect. Journal of Research on Adolescence, 11(1), 1–19.

Email: pradhanalka063@gmail.com Mobile: 7004897245

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 136-139
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मानवता की धरोहर भारतीय ज्ञान परंपरा

राहुल कुमार
शोधार्थी, हिंदी-विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

हम प्रायः यह सुनते हैं कि मानव सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। इसका क्या कारण है कि आहार, निद्रा, मैथुन, भय जैसे भाव सभी प्राणियों में विद्यमान रहने के बावजूद भी मानव श्रेष्ठ है? इसका उत्तर यह है कि मानव के पास तीक्ष्ण मस्तिष्क, विवेक एवं मानवता है। मानवेतर जितने भी प्राणी हैं, वे प्रकृति के एक चेतन अंश के रूप में स्वयं को स्वीकार करते हैं। यूँ तो मानव भी प्रकृति का एक अंश है परंतु वह चेतन के साथ आत्मचेतन भी है। आदिकाल में जब मानव बौद्धिक स्तर पर परिपक्व होने लगा तो, उसकी जिज्ञासा ने उसे अपने विषय में और उसके आस-पास घटित होने वाली विस्मयकारी घटनाओं के बारे में सोचने के लिए बाध्य किया- मैं कौन हूँ?, मुझे किसने बनाया?, दिन-रात कैसे होते हैं?, मानसून क्यों आते हैं? आदि। मानव कौन है? इसका अर्थ क्या है? इसके विषय में कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। भारतीय ज्ञान परंपरा के वैयाकरण पाणिनि ने अपनी रचना 'अष्टाध्यायी' में मानव के विषय में बताया "मनोरपत्यं मानवः"[1] अर्थात मनु की संतान मानव कहलाती है। यह संतान तभी मानव कहलाएगी जब वह अपने पिता के अनुकूल चले और मनीषी हो। मानव वह नहीं है, जो मानव रूप में पैदा होता है। मानव वह है, जो मानव भाव रखता है। 'श्रीमद्भागवत' में लिखा है कि 'भगवान ने अपनी अचिंत्य शक्ति माया से वृक्ष, सरीसृप (रेंगने वाले) पशु, पक्षी, दंशी और मछली आदि अनेकों प्रकार की योनियाँ रची परंतु इससे उन्हें संतोष नहीं हुआ । इस प्रकार असंतोष हृदय विधाता ने मनुष्य शरीर की रचना करके अपने हृदय में संतोष की उपलब्धि की।[2]

मानवता और मानव धर्म

मानवीय हृदय में विद्यमान मानवीय व्यापारों को मानवता कहते हैं। धीरता, वीरता, जितेंद्रियता, पवित्रता एवं सच्चरिता मानवता के प्रतीक हैं। सत्य, प्रेम, क्षमा, शांति, कर्तव्य आदि धर्मों की जहाँ शाश्वत प्रेरणा प्राप्त होती रहती है, उसे मानवता कहा जाता है। शुद्ध विचारों का संबंध मनन से है और मनन का संबंध मानव से है। मनुष्य या मानव धर्म से बढ़कर विश्व में कोई श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है। चैरासी लाख योनियाँ भोगने के बाद मानव जीवन मिलता है। इस मानव जीवन को कुकर्म करके व्यर्थ नहीं करना चाहिए। भारतीय ज्ञान परंपरा का यही मूल सार है। भारतीय ज्ञान परंपरा का यदि कोई मूल प्रयोजन है, तो वह मानवता ही है। जहाँ पैशाचिक, पाशविक धर्मों का निषेध हो, जिसमें नीचता से उच्चता, तमस से प्रकाश, अनेकता से एकता, मनुष्यत्व से देवत्व, स्वयं से अखिल के गुण विद्यमान हो, वहाँ मानवता विद्यमान रहती है।

मानवता कुछ मूल्यों पर आधारित होती है। इन मूल्यों या गुणों के बिना मानवता का अस्तित्व ही नहीं है। मानवता का सबसे बड़ा मूल्य सत्य है। हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा में सत्य को ईश्वरीय स्वरूप माना गया है। 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' अर्थात जगत में व्याप्त मानव निर्मित सभी भौतिक वस्तुएँ झूठ हैं, सत्य केवल एक है- ब्रह्म अर्थात ईश्वर। मानवता का दूसरा मूल्य है- कर्तव्य। तुलसीदास ने कहा 'कर्म प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।'[3] मानव जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल मिलता है। शुद्ध एवं सच्चे कर्म ही ईश्वर प्राप्ति के साधन हैं। गुरु नानक ने कहा कि 'कीरत करो वंड के छको' अर्थात सच्चे कर्म करो और आपसी भाईचारे से साथ बाँटकर खाओ। मानवता का तीसरा तत्त्व है- प्रेम। हृदय की निष्कपटता, मित्रता, सहनशीलता, दयालुता और परोपकार ये सभी प्रेम के ही पर्याय हैं। संसार प्रेम रुपी शेष नाग पर ही टिका है। प्रेम की सीमा जितनी बढ़ती जाती है, हमारी सांसारिक यात्रा उतनी ही सुगम होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'प्रेम और श्रद्धा के योग को भक्ति कहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ईश्वर के प्रति अन्नयगामी प्रेम को भक्ति कहा है। प्रेम के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं की जा सकती। अहिंसा मानवता का चैथा तत्त्व है। सहअस्तित्व का मूल अहिंसा है। अहिंसा नम्रता, शिष्टाचार, भ्रातृत्व एवं सहयोगी भावना से पैदा होती है। हिंसा सिर्फ शारीरिक कष्ट तक सीमित नहीं। किसी को वाणी, आचरण और अपने हावभाव द्वारा दुःखी करना भी हिंसा के ही अंतर्गत आता है। अनुशासन व्यक्ति में सहनशीलता पैदा करता है, सहनशीलता व्यक्ति को अहिंसावादी बनाती है। मानवता का पाँचवां तत्त्व शांति है। अपने भीतरी दोष पर विजय प्राप्त करने से शांति की प्राप्ति होती है। इंद्रियों पर संयम होने से बाहर का शोर व्यक्ति को विचलित नहीं कर सकता। महात्मा बुद्ध ने आंतरिक शांति द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति की थी।

उपरोक्त सभी तत्त्व, गुण मानवता के लिए परम आवश्यक हैं। यह सभी तत्त्व भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित हैं। भारतीय समाज की आधारशीला ही मानवता पर टिकी हुई है। इस परंपरा की भीतरी जोत को हमारे पूर्वजों ने अपनी अंतश्चेतना से जगाया है और यह जोत आज भी अपने प्रकाश से हमें प्रकाशित कर रही है। हमारा मार्गदर्शन कर रही है। इसमें कोई दोराय नहीं कि विश्व पर जब भी संकट का साया छाया है। भारत वहाँ सबसे पहले अपनी भूमिका निभाता है। चाहे कोरोना महामारी के समय जरूरतमंद देशों को वैक्सीन देनी हो या तुर्की में आई प्राकृतिक आपदा के समय बचाव के लिए सबसे पहले मदद करना। ऐसी बहुत सी उदाहरणों से भारत का इतिहास भरा पड़ा है। भारत विश्व को कुटुंब माना है। यह भारत की ज्ञान परंपरा ही है जिसने भारत के प्रत्येक व्यक्ति में मानवता को जीवित रखा है।

भारतीय ज्ञान का मूल उद्गम वेद हैं, यह भारत की प्राचीन धरोहर है, जिससे हमें विशाल ज्ञान प्राप्त होता है। व्युत्पति के अनुसार 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है ज्ञान। 'विद्' का अर्थ जानना भी होता है। हम वेद से संसार के सारे रहस्य को जान सकते हैं। आधुनिक समय के विषय जैसे आर्ट्स, साइंस, केमिस्ट्री, फिजिक्स, मैथ, इकोनॉमिक्स, बॉटनी, जोलोजी, कॉमर्स, अध्यात्म, फिलोसोफी अत्यादि सब वेद की ही खोज हैं। भारतीय ज्ञान प्राचीन मानवीय मूल्यों और जानकारियों से भरा पड़ा है। वेद के अतिरिक्त उपनिषद, पुराण, ब्राह्मण ग्रंथ, महाकाव्य आदि यह सब भी ज्ञान के सागर हैं। अहिंसा, मैत्री, सहअस्तित्व, एकता, दया आदि जितने भी मानवीय एवं राष्ट्रीय मूल्य हैं उनका आदि स्रोत हमारा प्राचीन ज्ञान है। वैदिक संस्कृति के गौ-मुख से निकली ज्ञान परंपरा धीरे धीरे लोक भाषाओं में परिवर्तित होती हुई दक्षिण भारत तक पहुंची, वहाँ यह भक्ति में परिवर्तित हुई और उत्तर भारत में आकर इसने अपना विस्तार किया। ज्ञान वही स्वीकार्य है, जिसमें हृदय और अंतर्मन को छूने की क्षमता हो। हमारा प्राचीन ज्ञान यही क्षमता रखता है। भारतीय ज्ञान परंपरा सदैव मानवीय मूल्यों की पक्षधर रही है। जब विश्व के अन्य देश खाने-पीने, पहरावे आदि के साधारण व्यवहारिक जीवन को समझ रहे थे, उस समय भारत में नालंदा, तक्षिला जैसे विश्वविद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन का कार्य चलता था।

भारत का ज्ञान 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्' की मानवीय धारणा पर आधारित है। सत्य ही शिव (परमात्मा) है, शिव ही सुंदर है। सत्य को ईश्वर का दर्जा प्राप्त है, सत्य परमात्मा का अंग है, सारे ज्ञान का आधार है। मनुष्य में परमात्मा की कोई निशानी है तो वह सत्य ही है, जो जीवन को प्रकाश देती। सत्य के साथ प्रेम का सम्मिश्रण हो जाने पर इसकी शक्ति अजेय हो जाती है। सत्य के पथ पर चलने के कारण राजा हरीशचंद्र का नाम कालजयी है। सत्य के लिए स्वयं बिक गए। बेटा मरा हुआ पडा़ था और पत्नी का गला काटने की नोबत आने पर भी धर्म का मार्ग नहीं छोडा। अहंकार, द्वेष, ईष्र्या आदि सत्य के मार्ग के बाधक हैं। जो व्यक्ति इन बाधकों पर विजय प्राप्त कर लेता है, वही सच्चा मानव है। महाभारत में कहा गया है- 'सत्य के समान धर्म नहीं और असत्य के समान पाप नहीं है, धर्म सत्य के आश्रय से टिकता है, इसीलिए सत्य का लोप कभी नहीं करना चाहिए। सत्य से दान का, दक्षिणायुक्त यज्ञों का, वेदाध्ययन का और अन्याय धर्मों का फल मिलता है। हजार अश्वमेघ यज्ञों का फल तराजू की एक ओर और सत्य दूसरी ओर रखकर तोला जाए तो हज़ार अश्वमेघ की अपेक्षा सत्य का पलड़ा ही भारी रहता है।'[4] सत्य पुरुषों के मन में सत्य वास करता है। महात्मा गांधी ने संघर्षों के बाद भी सत्य का पलडा नहीं छोड़ा। उनका मानना था कि सत्य परेशान हो सकता है, लेकिन सत्य हार नहीं सकता।

विश्व का संचालन कर्मों द्वारा संचालित होता है। कर्मों के कारण ही जीव अनेक योनियों में भ्रमण करता है। भारतीय प्राचीन ज्ञान शुद्ध कर्म करने की प्रेरणा देता है। कर्तव्य को चार भागों में विभक्त किया जा सकता- स्वार्थ, पस्पार्थ, परोपकार, परमोपकार। स्वयं तक सीमित कार्य स्वार्थ है दूसरों का उद्धार परमार्थ है। गरीब-हीन, माता-पिता, गुरु की सेवा करना परोपकार है। वृद्ध रोगी, जड़ अंध की सेवा परमोपकार है। हम प्रायः कहते हैं कि अच्छे कर्मों का अच्छा फल मिलता है। इसके पीछे भारतीय दर्शन है। जो शुद्ध सात्विक कर्मों पर बल देता है। 'ऋग्वेद' कहता है कर्तव्यों का पालन करने वाले ही देव हैं। वे प्रत्यक्ष देवता हैं जो संकट में, विपत्ति में, बड़ी से बड़ी प्रतिकूलता और मुसीबत में शांत और संतुलित बने रहते हैं'[5] कर्मों के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। श्री राम की कर्तव्यनिष्ठा देखिए अपने पिता की आज्ञावश एक राज्य का अधिकारी पुत्र वनवास ग्रहण करता है और उसी का दूसरा भाई मर्यादा और भ्रातृप्रेम का पालन करता हुआ राज्य को ठुकरा देता है। मानवीय कर्तव्य पालन की इतनी महान परंपराएँ भारतीय संस्कृति के अतिरिक्त और कहाँ मिलेगी। धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे में जब अर्जुन अपने सगे-परिवार जनों से युद्ध करने से मना कर देता है, तो कृष्ण अर्जुन को समझते हैं, कर्म करो फल देना मेरा कार्य है। हमारे प्राचीन ज्ञान में कर्म को ही सबसे उत्तम बताया गया है क्योंकि हमारे कर्म ही हमारे भाग्य का निर्माण करते हैं अगर हम अच्छे कर्म करेंगे तो हमारे साथ अच्छा ही होगा। गुरु गोबिंद सिंह जी सच्चे कर्मों पर बल देते हुए कहते हैं 'देह शिवा बर मोहे ईहे शुभ कर्मन ते कभु न टरुं' अर्थात सच्चे कर्म करने के रास्ते से कभी न हटें, मुझे ऐसा वर दो। भारतीय ज्ञान परम्परा सच्चे, शुद्ध, सात्विक मानवीय कर्मों की प्रेरणा से भरी पड़ी है।

प्रेम के अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। मानव का प्रकृति से, ईश्वर से, मानवेतर जितने भी प्राणी हैं उन सभी के साथ जो रिश्ता है, वह प्रेम पर ही आधारित है। प्रेम के विषय में 'अथर्ववेद' कहता है 'प्रेम से देवगण एक दूसरे से पृथक नहीं होते और न आपस में द्वेष करते हैं उसी ज्ञान को तुम्हारे परिवार में स्थापित करता हूँ। सब पुरषों में परस्पर मेल हो'[6] प्रेम के विस्तार से हमारे कर्म क्षेत्र का भी विस्तार होता है। प्रेम हमें वासना जैसी संकुचित मानसिकता से ऊपर उठा कर प्रकृति के कण-कण से जोडता है। मानव स्वयं से बाहर निकल कर दूसरों के विषय में सोचता है। प्रेम मानव मन में ईंधन का कार्य करता है। उसे ऊर्जावान करता है। समाज एवं विश्व कल्याण के लिए प्रेरित करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम को अनिवार्य माना भगवान स्वयं प्रेम स्वरूप हैं। प्रेम ईश्वरीय रूप है। भारतीय भक्ति धारा में प्रेम ही मूल तत्त्व है। किसी ने ईश्वर को सख्य भाव से प्रेम किया, किसी ने पति मान कर, किसी सगुण मान कर, किसी ने निर्गुण मान कर, ईश्वर स्वरूप बदलते गए परंतु प्रेम

नहीं बदला। सहनशीलता एक ऐसा गुण है, जो प्रेम के लिए परम आवश्यक है। जो सहनशील नहीं होते, वो प्रेम को एकांगी बना देते हैं।

मानवता पर विश्वास रखने वाले हिंसा विरोधी होते हैं। अहिंसा मानवता के प्रमुख तत्त्वों में से एक है, जिसकी पैरवी हमारी भारतीय ज्ञान परंपरा करती है। अहिंसा दूसरों के अधिकारों की रक्षा करती है और अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक भी करती है। दूसरों के प्राण ले लेना मात्र हिंसा नहीं है बल्कि दूसरों के अधिकारों का अपहरण और अपमान करना भी हिंसा ही है। 'जियो और जीनो दो' और 'सहअस्तित्व का सिद्धान्त' भी अहिंसा पर आधारित है। वेद मंत्रों में हिंसा का निषेध किया गया है। वेद वाणी कहती है कि किसी प्राणी की हिंसा न करें। किसी का वध करना पाप है। मानव गुणों को आत्मसात करके ही मानव 'वसुधैव कुटुंबकम्' का पाठ पढता है। शिष्टाचार, भ्रातृत्व एवं सहयोगी भावना सहअस्तित्व के लिए अनिवार्य है। मनुष्य में पशुत्व के कारण अन्याय की बढोत्तरी होती है। पशु को न्याय और अन्याय के विषय में ज्ञान नहीं परंतु मानव के पास विवेक है, मानवता है। जिसे वह अपनी दया, प्रेम, भ्रातृत्व आदि के माध्यम से दिखा सकता है। आज के इस दौर में हर कोई वृक्षारोहण और पर्यावरण संरक्षण के मूल्य के बारे में बात कर रहा है। लेकिन बहुत कम लोग इस क्षेत्र में भारत के योगदान को जानते हैं। प्रकृति से संबंधित इस तरह के सरोकारों के कई उदाहरण प्राचीन भारतीय ज्ञान में यत्र तत्र मिल जाया करते हैं। इसी तरह कला और वास्तुकला में प्रकृति को दर्शाते चित्र बहुतायत में उपलब्ध है।

उपरोक्त जिन बिंदुओं पर भारतीय ज्ञान परंपरा का विश्लेषण किया गया है, उससे स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा मानवता की धरोहर है। अपने ज्ञान के बलबूते ही भारत विश्व गुरु बना। एतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो भारत ने अनेक विदेशी आक्रमणों को सहा है। फिर भी हमारी ज्ञान परंपरा अक्षुण्ण है। आज पश्चिमीकरण के कारण भारत अपनी संस्कृति से दूर जा रहा है। अंग्रेज भारत में व्यापार और शासन के प्रयोजन से आए थे। उन्होंने देखा भारतियों को अपनी ज्ञान परंपरा पर बहुत गर्व, उन्होंने हमारी नब्ज को पकड़ा और भारत की शिक्षा पद्धति ही बदल डाली। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति जो सिर्फ जानकारी आधारित थी। जिसका मूल उद्देश्य नौकर पैदा करना था परंतु कुछ समय से तस्वीर बदलती दिखाई दे रही पिछले तीन-चार दशकों से पश्चिमी सभ्यता वाले भारतीय संस्कृति और सभ्यता की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। इसे अपनाने और जानने पर ज़ोर दे रहे हैं। हमें अपनी भावी पीढ़ी को भारत क प्राचीन मूल्यों का यथोचित ज्ञान देना चाहिए। प्राचीन भारत में दर्शन, ध्वन्यात्मक भाषा-विज्ञान, व्याकरण, खगोल, विज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्य-सिद्धांत, तर्क-जीवन विज्ञान, ज्योतिष एवं संगीत जैसे विभिन्न मानव कल्याणकारी क्षेत्रों में कीर्तिमान की स्थापना करके मानव जाति की उन्नति में अत्यधिक योगदान दिया है।

संदर्भ सूची

1. पाणिनीरू अष्टाध्याय 6/1/921
2. श्रीमद्भागवत 11/9/281
3. रामचरित मानस अयोध्याकाण्ड 119/2
4. महाभारत रू शांति पर्व 161/24.26
5. ऋग्वेद 10/65/11
6. अथर्ववेद 5/19 /4

मोबाईल नंबर: 7837763405

ई मेल : rahulkumar7837763405@gmail.com

पता : एस. एस भटनागर हॉल, बॉय्ज़ हॉस्टल नंबर 3 पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 140-144
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'पूर्णता की चाहत' में अधूरेपन से संघर्ष करती स्त्री

मोनिका
पीएच-डी. शोधार्थी,
हिन्दी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

शोध सार - मनुष्य जब से अपना विवेक संभालता है तब से वह औरों की तुलना में अपने आप को अधूरा महसूस करता है। इस अधूरेपन को पूरा करने के लिए वह अपने इर्द-गिर्द और समाज के लोगों के संपर्क में आता है और इसी चाहत में वह ज़िंदगी पूरी कर जाता है, लेकिन अंतिम समय तक अधूरेपन की स्थिति उसके मस्तिष्क पर बनी रहती है। अधूरेपन की स्थिति मनुष्य को महत्त्वहीन महसूस कराने लगती है जिससे व्यक्ति का जीवन अवांछित बोझ के समान लगने लगता है, इसलिए व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी होकर अपनी ज़िंदगी को सरल और सहज बनाने के लिए इस कायनात में प्रेम, दौलत, शौहरत आदि से अपने आप को पूर्ण करने की कोशिश में लगा रहता है। एक पल के लिए पूर्णता का अहसास होता है लेकिन अगले ही क्षण फिर अधूरेपन की कसक उसे बेचैन कर देती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सफर में मनुष्य संतोष और गरिमा के साथ जीवन जीने के लिए प्रयासरत रहता है क्योंकि वह अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहता है, जिसके लिए उसे जीवन में परिस्थितियों के अनुसार कभी पुरुष तो कभी स्त्री का सहारा लेना पड़ता है। जीवन को सार्थक बनाने के लिए उसे रोजगार, प्रेम, परिवार और समाज की जरूरत होती है।

लाजपतराय गर्ग के उपन्यास पूर्णता की चाहत में ऐसे ही विभिन्न आयामों को प्रस्तुत किया गया है जो आज के मनुष्य के अधूरेपन की समस्या को उजागर करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में नायिका मीनाक्षी के माध्यम से आधुनिक युग की आत्मनिर्भर बनने की आकांक्षा रखने वाली स्त्री की मनोदशा को चित्रित किया गया है जो अपने परिवार और पद की जिम्मेदारी को संभालते हुए अपने अधूरेपन को पूर्ण करने की चाहत में कुंठा, घुटन और यौन शोषण का शिकार होती है। कभी परिवार के सदस्य की कामयाबी के लिए तो कभी खुद के आनंद के लिए अपने आप को एक से अधिक पुरुषों के साथ संबंध बनाने के लिए मना लेती है। मीनाक्षी जो कि कर विभाग में जिला इंचार्ज के पद पर नियुक्त है लेकिन इस ओहदे तक आने के लिए जिन परेशानियों की शिकार वह हुई, वे उसके अंतर्मन को झकझोर देती हैं। उपर्युक्त दृष्टिकोण के अतिरिक्त उपन्यासकार ने भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, आरक्षण की मांग और सरकारी विभागों में राजनेताओं की अनावश्यक हस्तक्षेप आदि तमाम विमर्शों को जिस गंभीरता के साथ उजागर किया कि पाठक इस पर सोचने को मजबूर हो जाता है।

मुख्य शब्द- संजीदगी, गुंजाइश, आबाद, आधुनिकता, सहनशीलता, प्रतिकार, वर्चस्ववाद

हिन्दी कथा जगत में लाजपतराय गर्ग विशेष स्थान रखते हैं। वे साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता से जोड़कर रखने के हिमायती नहीं हैं। वे हिन्दी साहित्य को ऐसी रचनाओं से समृद्ध करना चाहते हैं जिसमे जीवन की यथार्थ अनुभूति और सच्चाई हो। गर्ग जी ने मीनाक्षी के माध्यम से असंख्य स्त्रियों की मजबूरीयों और विसंगतियों का बड़ी सजीदगी से उल्लेख किया है जो किसी न किसी से मानसिक और शारीरिक रूप से शोषित होती रहती है।

मीनाक्षी जिसने माता पिता की मौत के बाद अपनी छोटी बहन नीलू का मेडिकल कॉलिज में दाखिला कराकर अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभा दी, परंतु कोई नहीं जानता कि इस दायित्व को पूरा करने के लिए क्या कीमत अदा की थी। प्रकृति का नियम है जितना पाने की कोशिश करते हैं उससे कहीं अधिक देने की गुंजाइश बनी रहती है, लेकिन यह लेन देन की परंपरा कई दफ़ा मानवीयता की सारी हदें पार कर जाती है कि वह किसी भी पद या संस्था को दाग़दार बना देती है। मीनाक्षी जब नीलू के एडमिशन के लिए वी.सी. से दरख्वास्त करती है तो वी.सी. अपने रुतबे और वरिष्ठता के बल पर एडमिशन के नाम पर उसकी इज्जत के साथ खिलवाड़ करने की मंशा रखता है। ये उसकी बातों से ही स्पष्ट झलकता है- " मेरा मानना है हमारे यहाँ का बार्डर सिस्टम सबसे बढ़िया सिस्टम था। मुझे अब भी अच्छा लगता है। मेरी फ़िलॉसफ़ी तो यह है कि एक हाथ से दो दूसरे हाथ से लो। बात इतनी सी है कि तुम मुझे खुश कर दो, में तुम्हारी सिस्टर का ऐडमिशन करवा देता हूँ।"[1] आज इंसान के रूप में हैवानों ने अपने घोंसले आबाद कर लिए हैं, जिनका शिकार होती है मीनाक्षी जैसी अनगिनत स्त्रियाँ जो न चाहते हुए भी जिम्मेदारियों के बोझ तले खुद को खामोश कर लेती है।

मनुष्य कल्पनाशील प्राणी है जो अपनी कल्पना द्वारा आगामी जीवन के सुखद स्वप्न सँजोता है। इन्हीं सपनों को सार्थक करने के लिए उसे प्रेम व अपनत्व की आवश्यकता महसूस होती है। प्रेम अन्तः करण में उपजी कोमल भावनाओं का अथाह सागर है जिसमें लहरों का उफ़ान चरम शिखर पर होता है, कभी गंभीर तो कभी शांत। मनुष्य जब यौवन की दहलीज पर कदम रखता है तो अनंत भावनाएं, विचार, नवीन संबंध, आकर्षक व्यक्तित्व उसे प्रभावित करते हैं। मीनाक्षी अपनी सर्विस के आरंभिक दिनों में जिला अधिकारियों की मीटिंग में आए संत प्रकाश के आकर्षक व्यक्तित्व व बातचीत के लहजे से इस प्रकार प्रभावित होती है कि वह उसके साथ भावी जीवन के सुखद सपने और कल्पनाओं का संसार बनाने लगती है, परंतु कई बार कोरी कल्पनाओं से बनाया गया महल इस प्रकार ढह जाता है कि उसका पुनः निर्माण असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य होता है। किसी के व्यक्तिगत जीवन को बिना जाने, सोचे, समझे गलतफ़हमी में भविष्य की कल्पना करना भावनाओं को ठेस पहुँचाहता है। मीनाक्षी को जब संतप्रकाश के विवाहित होने का पता लगता है तो उसकी कोमल भावनाएं इतनी तपिस अनुभव करती है, जिसको अथाह सागर की गहराई ही शीतलता प्रदान कर सकती है।

मानव जीवन गतिशील है। अपने जीवन पथ पर चलते-चलते वह दुखद स्मृतियों को भूलाकर फिर से नवीन सुखद कल्पनाएं बुनने लगता है। मीनू भी संतप्रकाश की स्मृति को विस्मृत करके एक नई उम्मीद के साथ पूर्ण रूप से दुष्यंत के प्रेम रस में इस कदर तल्लीन होती है कि सामाजिक मापदंड के टूटने का भय नाममात्र भी नहीं रहता है। किन्तु संसार में किसी भी वस्तु, भाव की अति हो तो वह दुखदायक व नुकसानदायक होती है। मनुष्यों के रिश्तों में भी यही स्थिति बनती है एक तरफा अहसास रिश्तों को भी ज़िंदा नहीं रहने देता। मनुष्य की भावनाएं कब तक सोई रह सकती हैं। जीवन में मुद्दत बाद भी किसी ना किसी का आलिंगन पाकर पुनः सचेत हो अपने अधूरेपन को दूर कर तृप्ति चाहती है। मीनाक्षी और कैप्टन प्रीतम सिंह भी अपने अपने जीवन में अधूरे थे और इसी को पूरा करने की चाहत में एक दूसरे के करीब आने लगते हैं "अब लगने लगा था कि दोनों जीवन धारा का हिस्सा बनने को आतुर है। एक दूसरे के निकट आकर एक दूसरे का अधूरापन दूर करके एक दूसरे की पूर्णता के पोषक बनना चाहते हैं।"[2] स्त्री और पुरुष एक दूसरे को पूर्ण करते हैं किन्तु पुरुष का नारीत्व हो जाना ही उसे पौरुषता प्रदान करता है। आपस में अधूरेपन को दूर करना ही उनके जीवन की सार्थकता है, लेकिन कभी-कभी जीवन जीने के लिए अधूरापन भी जरूरी है क्योंकि जीवन में किसी चीज की कमी न होगी जीवन जीने की अभिलाषा भी नहीं होगी। कुछ अधूरापन होगा तभी उसे पाने की मुराद मानव मन में होगी।

आज की आत्मनिर्भर स्त्री ने अपना दृष्टिकोण बदल लिया है। अब वह अपनी कामनाओं का कत्ल नहीं कर सकती जो किसी भी वक्त प्रेम अंकुर के रूप में अंकुरित हो सकती है। आधुनिक स्त्री स्वतंत्र जीवन जीने लगी है।

आर्थिक आधार पर स्वतंत्र है लेकिन आधुनिकता की अंधी दौड़ में वह सामाजिक मान मर्यादा को भी अनदेखा करती है। अपनी सुंदरता के वश वह पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहती है लेकिन उसे अपनी देह की मानसिकता को त्यागकर अपनी बुद्धि और कौशल को महत्त्व देना होगा। पुरुष भी अपनी ताकत और पितृसत्तात्मक सोच के अनुसार नारी को केवल भोग विलास की वस्तु समझता है। स्त्री बेशक आज अपने अधिकारों के प्रति सजग है, आत्मनिर्भर है, शिक्षित है लेकिन फिर भी हर जगह उसका शोषण होता है चाहे वो घर परिवार हो, चाहे सरकारी कार्यालय हो, "दुनिया चाहे चाँद को छू ले या मंगल तक पहुँचे, मानव समाज में स्त्री के प्रति जो मानसिकता है, उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया है। ऊपर से दिखने में नारी शिक्षित है, आत्मनिर्भर है, स्वावलंबी है, स्वतंत्र है लेकिन उसके जीवन का असली सूत्रधार पुरुष ही है।"[3] सदियों से स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार, यौन शोषण, मानसिक कष्ट, उनके अकेलेपन का फायदा उठाना तमाम हथकंडे पुरुषों ने अपनाएं है और नारी उसे सहन करती गई किन्तु सहनशीलता की हदें पार होने पर आवाज़ अपने आप उठने लगती है।

लेखक ने दिनों दिन पतन होते मानवीय मूल्यों पर भी आवाज़ उठाई है। आज मानव इतना संवेदनहीन हो गया है कि उसे उचित उनुचित का भी ध्यान नहीं है। उपन्यास में मीनाक्षी और कैप्टन प्रीतम सिंह एक दूसरे की खामियों और अतीत को न जानकर दाम्पत्य सूत्र में बंध जाते है किन्तु यह परिणय कब वासना में तबदील होता है पता भी नहीं चलता। प्रेम मात्र दैहिक नहीं आत्मिक तृप्ति भी चाहता है। प्रेम समर्पण चाहता है ताकि दोनों एक दूसरे को आत्मसात कर सके। परंतु जब प्रेम पर वासना हावी हो जाती है तो तमाम रिश्तों की हैसियत भी भूल जाता है। आत्मीयता के अभाव में प्रेम केवल एक सांसारिक आकर्षण है या यूं कहें की जहाँ आत्मीयता नहीं वहाँ प्रेम भी नहीं। इंसान जब वासना का शिकार होता है तो सभी रिश्तों को शर्मसार कर देता है। प्रेम के प्रति जर्मन ग्रीयर ने अपनी पुस्तक 'बधिया स्त्री' में कहा है कि "प्रेम का प्रतिदान न मिले तो लक्षण धीरे धीरे हलके हो जाएंगे या नए प्रेमपात्र के नाम हो जाएंगे, या बढ़ते बढ़ते पीड़कारक हो जाएंगे। अगर उसके प्रेमोन्माद को यह विशेषाधिकार नहीं मिलता तब भी उसे प्रेम का स्तर प्रदान न करके, सिर्फ़ प्रतिकारपूर्ण वासना या ऐसा ही कुछ कहते हुए न्यायसम्मत ठहराया जाएगा।"[4]

उपन्यास में कैप्टन प्रीतम सिंह भी इन्हीं परिस्थितियों को शिकार है जिससे वह अपनी पत्नी की बहन के साथ ज्यादती करता है। आखिर कब तक स्त्री अपना शोषण होने देगी। वर्तमान में महिलाएं शिक्षित, आत्मनिर्भर होकर भी इन जुल्मों का शिकार होती है किन्तु अगर वे अपने अधिकारों के प्रति सजग है तो अपने अस्तित्व व अस्मिता को पहचान कर इन मुश्किल हालातों का सामना करती हैं। कथावस्तु में मीनाक्षी का पति जब उसकी बहन के साथ अभद्र व्यवहार करता है तो वह बिना किसी डर के उसके खिलाफ आवाज उठाती है और उसे सजा दिलवाकर अपनी बहन को इंसाफ दिलवाती है।

हमारे समाज में सारे नियम, कायदे-कानून पुरुषों द्वारा ही बनाए गए है। स्त्री विवाहित हो तो उसका पतिव्रता होना गौरवमय होता है और यदि अविवाहित हो तो परिवारव्रता होना उसका गौरव होता है। उसके जीवन के सभी नियम, आचरण, रहन-सहन परिवार द्वारा निर्धारित होते है और इन्हीं पारिवारिक नियमों के अनुसार उसे स्वयं को ढालना पड़ता है। अगर स्त्री घर के अंदर है तो उसे इज्जत, मान, मर्यादा, शील, सौंदर्य की बेड़ियों में जकड़ दिया जाता है और स्त्री किसी सार्वजनिक पद पर भी है तो भी उसे अपनी योग्यता पर संदेह करवाया जाता है। राकेश कुमार के शब्दों में, "स्त्री को लज्जालु, सहनशील, समर्पणशील प्रतिक्रियाहीन, खामोश शांत स्वभाव की होना इसलिए सिखाया जाता है, ताकि उन्हें निष्क्रिय एवं कमजोर बनाकर रखा जा सके और उन मनमाने अत्याचार किए जा सकें। उसकी चेतना अनुकूलित रह सके। वह जितनी लज्जालु, सहनशील, मर्यादापूर्ण होगी सांस्कृतिक वर्चस्ववाद के लिए उतना ही बेहतर आधार होगा।"[5]

सामाजिक विडंबना है कि सफलता पाने के लिए कुछ भी करना उचित है किन्तु सफलता देने की आड़ में किए गए अमानुषिक कृत्य समाज को शर्मसार कर देते है। "यही कारण है कि स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार दफ्तरों, घरों, सार्वजनिक क्षेत्रों, सड़कों, बसों में खुले आम होता है। और जो औरत चुपचाप निकल जाए तो बेहतर, अन्यथा उसका अपमान करने के लिए भारी भीड़ मौजूद है।"[6] हम देखते है कि किस प्रकार मीनाक्षी जैसी अनेक स्त्रियों को अपने अधूरेपन को पूरा करने के लिए और प्रेम पाने के लिए कितने संतप्रकाश, दुष्यंत और प्रीतम जैसे लोगों की शरण में जाना पड़ता है, लेकिन उन्हें जीवन की सार्थकता और पूर्णता कहीं नजर नहीं आती है। किसी भी रिश्ते की पूर्णता के लिए उसमें विश्वास, धैर्य, प्रेम व अपनत्व व संयम की आवश्यकता होती है जो आज के भौतिकतवादी युग में दूर-दूर तक नहीं है, इसलिए आज रिश्ते बिखर रहे हैं, टूट रहें हैं।

उपन्यासकार ने अधूरेपन की कहानी को यहीं तक नहीं छोड़ा बल्कि अन्य आयाम भी जोड़े है जिनमे आरक्षण के नाम पर राजनीति होती है। राजनेता अपना हित पूरा करने के लिए जनता को आपस में भड़काते हैं। आरक्षण और धर्म की आड़ में लोग अपने ही देश की सार्वजनिक संपत्ति का नुकसान करते हैं। मंत्रियों द्वारा विभिन्न विभागों मे अनावश्यक हस्तक्षेप करके उनकी कार्यप्रणाली में बाधा उत्पन्न की जाती है, जिससे ग़ैर कानूनी कार्य करने वाले भी लाभ कमाते हैं। विभिन्न विभागों में कार्यरत अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपना कार्य निष्पक्ष होकर करेंगें, लेकिन राजनीतिक दबाव में आकर वे अपने ईमान का सौदा करने को मजबूर हो जाते है। लेखक ने इस मुद्दे को बड़ी गहराई से उजागर किया है कि कुछ लोग मंत्रियों के साथ अपने संबंध का हवाला देकर अधिकारियों पर अपनी धौंस जमाते हैं। उपन्यास में ट्रांसपोर्ट के माध्यम से इस समस्या को चित्रित किया है "जनाब, गाड़ी छुड़वा देयों। थारा तो बढ़ऊ अफसर तो पता नहीं के समझे से अपने आपणे। आपण्यों मंत्री जी का वास्ता देन त भी टस-स-मस ना होओ। सठिया गिआ लागह मने तो। सेवा पानी की बात भी कोन्या समझे से। थम तो समझदार हो। थे बताओ के सेवा पानी करना से।"[7] रिश्वत एक ऐसा कोढ़ है जो समाज में एक से दूसरे तक फैलता ही जा रहा है और समाज को दूषित कर रहा है। रिश्वत के दम पर अपराधी सरेआम घूमता है और शराफत नजरें झुकाए खड़ी है। लेखक समाज की हर समस्या पर पैनी नजर रखते हुए उन सच्चाईयों से पाठक को रूबरू करवाता है।

पूर्णता की चाहत अक्सर मानव स्वभाव का एक अभिन्न हिस्सा होती है। यह एक ऐसा लक्ष्य है जिसे हम हासिल करना चाहते हैं, लेकिन कभी-कभी यह हमारी मानसिक शांति को बाधित कर सकता है। पूर्णता की तलाश में हम आत्म-आलोचना और तनाव का सामना करते हैं। यह हमें असंतोष, चिंता और अवसाद की ओर ले जा सकता है। जबकि, जीवन में अस्थिरता और परिवर्तन भी मूल्यवान होते हैं। आखिरकार, यह समझना जरूरी है कि पूर्णता का कोई एक मानक नहीं है। संतोष और संतुलन के लिए, हमें अपने प्रयासों को स्वीकार करना और संघर्षों को गले लगाना चाहिए। इससे हम अधिक खुशहाल और संतुलित जीवन जी सकते हैं। चाँद का अधूरापन भी एक बहुत ही गहरा और आकर्षक विषय है। चाँद हमेशा अधूरा सा लगता है, जैसे वह अपने पूरे आकार में नहीं है। यह अधूरापन हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि जीवन में भी बहुत कुछ ऐसा होता है जो अधूरा है- हमारी इच्छाएँ, सपने और रिश्ते। चाँद की यह कमी हमें यह सिखाती है कि कभी-कभी अधूरापन भी खूबसूरत होता है। यह हमें पूर्णता के बजाय यात्रा की महत्ता का एहसास दिलाता है। चाँद की चमक भी इस अधूरेपन में छिपी होती है, जो हमें उम्मीद और प्रेरणा देती है चाँद का अधूरापन हमें कई तरह के विचारों और भावनाओं से जोड़ता, इसके अलावा चाँद के अधूरापन को हम अपने जीवन में भी देख सकते हैं। हमारी यात्रा, हमारे अनुभव, और हमारे रिश्ते कभी-कभी अधूरे महसूस हो सकते हैं, लेकिन ये सभी मिलकर हमें पूरी तस्वीर दिखाते हैं।

संदर्भ सूची

1. लाजपत राय गर्ग, पूर्णता की चाहत, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2021, पृ. 22
2. वही, पृ. 22

3. (सं) अमर सिंह वधान,इक्कीसवीं सदी का साहित्य और नारी विमर्श, अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2015, पृ. 206-207
4. जर्मन ग्रीयर, बधिया स्त्री, (अनु.) मधु बी. जोशी, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2005, पृ. 151
5. राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकुला, संस्करण 2011 पृ. 119
6. वही पृ. 118
7. लाजपत राय गर्ग, पूर्णता की चाहत, दिशा प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 2021, पृ. 61

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 145-150
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कबीर का तत्कालीन दर्शन और वर्तमान समाज की दिशा

डॉ0 सुनील कुमार
सहायक प्राध्यापक,
हिंदी-विभाग, चौधरी रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जींद

बचपन में किया गया नामकरण वास्तव में सार्थक हो जाए यदा कदा ही सुनने को मिलता है। हिन्दी साहित्य के स्वर्ण युग अर्थात् भक्तिकाल में निर्गुण शाखा के अंतर्गत स्थान रखने वाले संत शिरोमणि कबीरदास जी हुए जिन्होंने युगीन परिस्थितियों को देखते हुए अपनी प्रभावशाली वाणी और दर्शन व व्यक्तित्व से अपने नाम की सार्थकता को सिद्ध कर दिया था। कबीर अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है – "श्रेष्ठ,महान"[1] महान बनने के लिए निस्वार्थता, निर्भयता और परमार्थ की भावना का होना अत्यावश्यक है साथ ही समाज की रूढ़िवादिता एवं संकीर्णता का डटकर मुकाबला करना। सामाजिक उत्थान व मानवता की भलाई हेतु नवीन दर्शन स्थापित करना अपने आप में महानता की विशेषताएं हैं। कबीर स्वभाव से संत थे और सच्चे संत में उपर्युक्त गुणों का होना आवश्यक है। परमार्थ और निस्वार्थता की भावना उनके दर्शन से ही स्पष्ट हो जाती है और उनकी निर्भयता का आलम यह है कि तत्कालीन सामंती समाज की हर व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया था। जाति, धर्म कर्मकांड एवं आडंबरों पर उनका व्यंग्य इतना तीखा है कि श्रोता या पाठक छटपटाहट के साथ मुस्करा कर रह जाता है।

ध्यातव्य है कि आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व कबीर ने जिस दर्शन को अपनाने पर बल दिया था, मिथ्यावादों और आडंबरों के युग में उसी दर्शन को अपनाने की आवश्यकता है। क्योंकि जिन कुरीतियों ने उस समय के समाज को दूषित किया था उनकी जड़े वर्तमान समय में कहीं अधिक गहरी हो गई है। भारतीय सभ्यता व संस्कृति अत्यंत प्राचीन व सम्पन्न तथा समृद्ध है जिसका अनुसरण पाश्चात्य सभ्यता ने भी किया है। कितनी प्रसिद्ध संस्कृति हो उसमें रूढ़ियों और विकृतियों के फैलने की गुंजाइश बनी रहती है। ऐसी ही परिस्थितियाँ भारतीय संस्कृति के सामने आई कि अनेक कुरीतियों ने उसे अंदर तक झकझोर दिया। भक्तिकालीन ज्ञानाश्रयी के महान पुरुष भक्त कवि कबीर भी हुए जिन्होंने अपनी आत्मिक चेतना से तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों व कुरीतियों का डटकर विरोध किया और जन-जन के हृदय में चेतना प्रवाहित की। कबीरदास समाज की एसी परिस्थितियों में रहे जिससे चारों ओर अंधविश्वास, पाखंड, आडंबर, मूल्यहीनता, अत्याचार, अनाचार जैसी विसंगतियाँ व्याप्त थी और इन्हीं हालातों ने उन्हें लड़ने की प्रेरणा दी जिससे उनकी वाणी न सिर्फ मध्यकालीन समाज बल्कि आधुनिक परिवेश में भी सामान्य जन का कंठहार बनी हुई है। कबीरदास का आविर्भाव उस समय हुआ जब मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से डगमगा रही थी।

कबीरदास ने गलत परंपराओं पर कुठाराघात किया और समाज कल्याण की कामना से समरसता पर बल दिया। सामाजिक एवं धार्मिक विदूप्रताओं के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हए जन जन में सात्विक व्यवहार एवं मानवता का संदेश

प्रवाहित किया। उन्होनें मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, रोजा-नमाज, जप-तप, छाप-तिलक सबका विरोध किया था। सामान्य जनता पंडितों और मौलवियों के पास जाकर उनसे झाड़ फूँक मरवाते थे। ताबीज लेते उनके कहे वचनों का अनुसरण करते इन्हीं तमाम रीतियों को मानते हुए अंध श्रद्धा रखते हुए शकुन-अपशकुन, में विश्वास रखते। देवी देवताओं की मनौती करना, बेजूबान पशु की बलि देना आदि सभी अनीतिपूर्ण कार्यों का कबीर ने क्रांतिकारी रूप से विरोध किया। उन्होंने शास्त्रों का विरोध करते हुए कहा है कि,

"बकरी पाती खाती है ताकि काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल।।"[2]

इन्होंने मध्यकालीन समाज जो वर्ण व्यवस्था व जातिगत भिन्नता की जंजीरों में जकड़ा था स्वयं उसका अनुभव किया और उसका विरोध किया। कबीर स्वयं निम्न समझी जाने वाली जुलाहा जाति के थे जिसका कष्ट इन्होंने स्वयं भोगा था और अपनी वाणी द्वारा सभी आडंबरों को अस्वीकार करके जन-जन की आवाज बनें। उन्होंने यथार्थ रूप में जिन परिस्थितियों को देखा, सहन किया उसी आधार पर पंडितों और मुल्लाओं का विरोध किया ,

"मैं कहता हूँ आखिन देखी,
तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता सुरझावन वारी
तू राख्यों उरझाई रै।"[3]

कबीरदास ने समाज में सभी को समान मानकर वर्ण व्यवस्था को अस्वीकार करके समतामूलक भावना की स्थापना की थी। मध्यकालीन समाज न सिर्फ़ वर्ण-व्यवस्था बल्कि जाति-पांति, ऊँच नीच की भावना से ग्रसित था जिसने भारतीय सभ्यता को जर्जर कर दिया था। जिस भारतीय समाज की वसुधैव कुटंबकम की भावना का अनुसरण पाश्चात्य संस्कृतियों ने भी किया वही आज श्रेष्ठतम-हीनतम के द्वन्द्व में फंसकर इस प्रकार विभक्त हुआ कि मानवीय मूल्यों का स्थान नहीं रहा। ऐसे में कबीर ने ब्रह्म की दृष्टि में सभी को समान बताते हुए कहा है कि,

"साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय।"[4]

मध्यकालीन समाज की वर्ण व्यवस्था में चार वर्ण स्थापित किए हुए थे जिनमें ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रीय, शूद्र थे। ब्राह्मण को समाज में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था, उसे धर्म का कर्ताधिकारी माना जाने लगा। जिससे उसका महत्त्व और बढ़ गया। प्राकृतिक आपदाओं से रक्षा के लिए ब्राह्मण को भोजन कराते, उसकी पूजा करते, उससे वरदान प्राप्त करते। यहाँ तक कि शासक भी उसके वरदान का पालन अनिवार्य करते क्योंकि उनके मुख का कोई भी वचन वरदान या अभिशाप साबित हो सकता था। इतना अधिक सम्मान पाने के बाद ब्राह्मण वर्ग का चरित्र पतन की और अग्रसर होने लगा। पूजा पाठ में रुचि न रखकर जनता को लूटना, भौतिक सुखों में लिप्त होना, पैसा वसूलना तमाम अवगुण उनमें दिखाई देने लगे। कबीर ने स्वयं इन परिस्थितियों को देखा और सहन किया तथा उनका डटकर विरोध किया। उन्होंने जन्मजात श्रेष्ठता को अस्वीकार करके कर्मगत श्रेष्ठता पर बल देकर ब्राह्मण वर्ग पर प्रहार किया कि ,

" कलि का ब्राह्मण मसखरा,ताहि न दिजै दान।
स्यौ कुंठक न कहि चले,साथ चला जजमान।
ब्राह्मण बूड़ा बापुड़ा, जनेऊ कै जौरि।
लख चौरायी माँ गेलई,पार ब्रह्म सौ तोड़ि।।"[5]

ब्राह्मण के साथ साथ क्षत्रियों और वैश्यों का जीवन भी साधन संपन्न था, लेकिन शूद्र की हर साँस को भी अछूत माना जाता था। सबसे शौचनीय स्थिति शूद्र की थी। प्रारंभ में वंशगत या व्यवसाय के आधार पर जातियाँ बनी जो

समाज को सुसंचालित करने के लिए बनाई गई लेकिन धीरे धीरे इन जातियों में श्रेष्ठता, हीनता, ऊंचता-निम्नता जैसी भावना पैदा हो गई जिससे विषमता की खाई और भी गहरी होती गई और भारतीय समाज छिन्न भिन्न हो गया। कबीर कहते हैं कि लोग अज्ञान वश जाति व्यवस्था के भेदभाव में उलझ रहे हैं और मानवता का विनाश कर रहे हैं, जब एक ही ज्योति से सब उत्पन्न है तो फिर भेदभाव कैसा?

कबीरदास ने अपनी वाणी द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, पाखंडों, आडंबरों, अंधविश्वास आदि को दूर करने का प्रयास किया था। समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था ने ही हिन्दू-मुस्लिम साम्य भाव को खंड-खंड कर दिया। दोनों एक दूसरे की जान के दुश्मन बन गए। कबीर ने हिन्दू मुस्लिम के राम रहिम की एकता का प्रतिपादन करते हुए अवतारवाद व बहुदेववाद का विरोध किया। हिन्दू राम को सर्वोत्तम मानता तथा मुस्लिम रहीम को उत्कृष्ट साबित करने जिस मजहब की डोर हमेशा उन्हें एक सूत्र में बांधे रखती थी वही अब उनमें वैमनस्य उत्पन्न करके सांप्रदायिकता की आग को हवा देने का काम कर रही थी। संत कबीर ने रोजा नमाज, तीर्थाटन, मंदिर-मस्जिद, मूर्ति पूजा तमाम विषयों का विरोध करते हुए न सिर्फ राम रहीम की एकता का प्रतिपादन किया बल्कि पूरी मानवता को समानता का संदेश दिया। हिंदू मुस्लिम के सांप्रदायिक वैमनस्य की गंभीरता को समझते हुए कबीर ने कहा है कि

"भाई रे दुई जगदीस कहाँ ते आया,कहु कोने भरमाया
अल्लह-राम-करीमा-कैसो ही हजरत नाम धराया।

कबीर कहते हैं कि सब जीव उस ब्रह्मा की संतान है चाहे वह पशु हो या मनुष्य सभी की पीड़ा एक समान होती है इसलिए सब प्राणी ईश्वर के जीव है। अतः मानव को हमेशा हृदय में दया भाव रखना चाहिए तथा हिंसा से विरक्त रहने का प्रयास करना चाहिए। उनका मानना था कि ऐसा सत्याचरण का अनुसरण करना होगा तभी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है निज स्वार्थ को त्याग कर परोपकार की भावना का प्रचार किया। कबीर दास कहते हैं कि मनुष्य जिस दृष्टिकोण से स्वयं का अवलोकन करता है अगर इस नज़र से अन्य जीवों को भी अवलोकिता करें तो वह हिंसा से हमेशा विरक्त रहेगा और विश्व में शांति बनी रहेगी। जिसके हृदय में दया, अहिंसा भाव नहीं उन्हें वे निश्चित रूप से नरक का अधिकारी बताते हैं,

"दया भाव हिरदै नहीं, ज्ञान कभै बेहद।
ते नर नरकहिं जांहिगें,सुनि सुनि साखी सबद।"[7]

दया और अहिंसा के संबंध में कबीर का दृष्टिकोण अत्यधिक उदार और व्यापक था उन्होंने दया को न सिर्फ स्वयं तक सीमित रखा बल्कि परार्थ कष्टों का निवारण करना भी पवित्र कार्य माना। कबीर समाज को सम्मता का पाठ पढ़ना चाहते थे। उन्होंने ईश्वर को घट-घट व्यापी बताया तथा धर्म के ठेकेदारों द्वारा बनाए गए नियमों का उल्लंघन किया।उन्होंने इन सामाजिक कलेश के विभेद को मिटाकर बंधुत्व भावना और क्षमता का प्रचार किया तथा पोथी पढ़ने वाले पंडितों की संकीर्ण मानसिकता का तिरस्कार और विरोध करते हुए जन-जन में मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु प्रेम का उपदेश दिया।

कबीर दास मानते थे कि हिंसा और अमानवीय व्यवहार के मूल में ब्राह्मण है जिसे जन-जन को मोक्ष प्राप्ति का प्रलोभन देकर शास्त्रों का हवाला देकर पूरे वातावरण को विषाक्त बना दिया है। इन्होंने इन आडंबरों का विरोध करके सत्य चरण अपने पर बल दिया। कबीर कहते हैं कि सत्य से बढ़कर कोई जप नहीं इसलिए हमेशा सत्य का अनुसरण करना चाहिए। कबीर का काव्य समाज में व्याप्त विषमता को समाप्त कर आत्म परिष्कार और सुधार तथा समता मूलक मार्ग प्रशस्त करता है। वही मनुष्य समाज का हितकर होगा जो निश्चल हृदय, सत्य का अनुगामी तथा स्वयं के कल्याण के साथ समाज का कल्याण भी करेगा इसलिए कबीर दास ने हमेशा सत्य का अनुसरण करने को कहा है झूठ को पाप के बराबर माना है

"सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप
जाके हिरदे सांच है, ता के हिरदे आप"[8]

मध्यकाल में मुस्लिम शासको ने जनता पर जो अत्याचार किया वह उनके अहंकार का कारण था। मध्य युग का समाज अविश्वास, कर्मकांड, जटिलता, धार्मिक कटुता, सांप्रदायिकता, छुआछूत आदि में जकड़ा हुआ था जिसका मूल कारण कबीर ने अहंकार को ही माना है। उन्होंने अपनी चेतना द्वारा व्यक्तिगत स्तर से लेकर सामाजिक स्तर तक अहंकार का उन्मूलन करने का प्रयास किया। तत्कालीन शासकों ने अहम् वश अपनी रिआया पर ज्यादती की थी जो अनुचित होने के साथ-साथ अमानवीय भी थी। उनके इस अभिमान को कबीर ने अपनी वाणी द्वारा गंभीर चोट पहुंचाई। कबीर दास ने सत्य का अनुसरण, अहंकार का त्याग, पवित्र आचरण को चरित्र की कसौटी माना था। आचरणहीन व्यक्ति का उपदेश भी दुखदाई होता है वह सिर्फ अपने कटुवचनों द्वारा दूसरों का हृदय आघात करता है। कबीर कहते हैं कि जब सब कुछ नष्ट हो जाना है तो फिर अहंकार किस काम का। जिस अहंकार वश तुम अपनी प्रजा पर सितम ढहा रहे हो वह क्षण मात्र में तुम्हारे जीवन को समाप्त कर देगा। वह कहते हैं कि

" पानी केरा बुद्बुददा अस मानुष की जात
देखत ही छिप जाएगा,ज्यों तारा परभात।"[9]

जिस प्रकार काम क्रोध, मद, लोभ, मोह सब अहंकार की जड़ है भ्रमों को नष्ट करके ही उस परम तत्व की प्राप्ति हो सकती है। जिस मनुष्य के पास काम, क्रोध, मोह, माया जैसी वासना व्याप्त है वह ईश्वर का नाम स्मरण कभी नहीं कर सकता इसके लिए उसे इन सभी विकारों का त्याग करना होगा। जिसने इन वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली वही मनुष्य उसे ब्रह्म से वाकिफ हो सकता है अन्यथा वह अपने जीवन रूपी हीरे की कीमत को कभी नहीं पहचान सकेगा। कबीर कहते हैं कि जो व्यक्ति अहंकार त्याग देगा लालच की भावना से मुक्त होगा वही ईश्वर की भक्ति कर सकता है।

तत्कालीन समय में जो अनरीति या अवस्था बनी हुई थी उसका कहीं ना कहीं कारण कुमार्ग की प्रगति ही रही है। इस कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर लेकर जाने वाला पथ प्रदर्शक सिर्फ सदुरु ही है। कबीर के साहित्य में गुरु का स्थान ईश्वर से भी बढ़कर बताया गया है क्योंकि वह ही अपने शिष्यों को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताता है। गुरु का महत्व कबीर के काव्य की प्रमुख विशेषता है। प्राचीन भारत में गुरु शिष्य परंपरा हमेशा अस्तित्व में रही लेकिन मध्यकाल में मुस्लिम शासकों ने शासन अधिकार के पश्चात इस परंपरा को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया था। समाज में इतना अंधविश्वास, पाखंड, आडंबर फैल गया था कि गुरु का स्थान व महत्त्व कम हो गया। कबीर ने अपनी लेखनी में गुरु को ब्रह्म से प्रथम स्थान दिया है क्योंकि वही ब्रह्मा तक पहुंचाने का मार्गदर्शन करेगा।

"सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार"।[10]

प्राचीन भारत में स्त्रियों को समझ में गौरवमयी स्थान प्राप्त था उन्हें पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया था। नारी के मातृत्व, पुत्री, पत्नी, बहन सभी रूपों कों आदर प्राप्त था। उनकी शिक्षा दीक्षा में भी कोई भेदभाव नहीं था। उन्हें पुरुष के समान अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग, घुड़सवारी की शिक्षा भी प्रदान की जाती थी लेकिन मध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों की दशा अत्यधिक शोचनीय होती गई। उन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। उन्हें बाल्यावस्था में पिता के संरक्षण।, युवावस्था में पति के आदेश अनुसार तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण व रहम पर रहना पड़ता था। मुस्लिम शासकों के शासन स्थापित होने के पश्चात उनकी स्थिति और भी दयनीय हो गई। परिणामस्वरुप बाल विवाह, पर्दा प्रथा, जौहर जैसी घृणित प्रथाएं उत्पन्न हुई जिन्होंने ने सिर्फ तत्कालीन भारतीय समाज को जर्जर किया

वरन् आधुनिकता के इस दौर में भी यह प्रथाएं कहीं ना कहीं अपनी जड़े बनाए हुए हैं। स्त्री का सिर्फ़ कामिनी रूपी उजागर था। निम्न वर्ग की स्त्रियों को निर्धनता ने इतना विवश कर दिया कि इन सामाजिक कुप्रथाओं की जंजीरों ने उन्हें जकड़ लिया। नारी की स्थिति दासी से बढ़कर नहीं थी। तत्कालीन शासकों ने जिस प्रकार स्त्री को विलास की सामग्री बनाकर उसका भोग किया उसका समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ा जिसकी घोर प्रतिक्रिया कबीर दास ने की थी। उन्होंने नारी के दो रूप माने जिनमें एक पतिव्रता और दूसरा कामिनी रूप था उन्होंने कामिनी नारी को काली नागिन के समान बताया तथा पतिव्रता नारी की प्रशंसा की थी। कबीर का उद्देश्य नारी को अपमानित करना नहीं था बल्कि विलास पूर्ण समाज को वासना से बाहर निकाल एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करना था जिसमें नारी को केवल बाजार में बिकने वाली भोग की सामग्री ने समझकर पुरुष के बराबर अधिकार और सम्मान मिल सके।

मध्यकाल जो साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध रहा वही यह सामाजिक, धार्मिक क्रांति का दौर भी रहा। संपूर्ण भारतीय समाज मुसलमान शासकों के गिरोह में था। हिंदू समाज के विसंगतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों के कारण धर्म में विकृत परंपरा थी। पूरा समाज जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था में बांटा हुआ था जो शासकों के अत्याचार से ओर भी अधिक कुंठित हुआ फलस्वरुप तत्कालीन साहित्यकारों ने अपने कर्तव्यों को समझते हुए अपनी कलम द्वारा पीड़ितों और शोषितों को सहारा प्रदान किया। कबीरदास भी उनमें से एक महान व्यक्तित्व के साथ उभरे जिन्होंने समकालीन शासकों के अत्याचारों को स्वयं सहन करते हुए उनका विरोध किया। कबीर ने हर प्रकार के शोषण, बाह्यचर, अंधविश्वास, अत्याचार, असमानता, अराजकता आदि का विरोध करते हुए मानवता को बचाने का बीड़ा उठाया। जो यथार्थ उन्होंने देखा, सहन किया उसको अपने काव्य में उजागर किया। कबीर शास्त्रज्ञानी नहीं थे लेकिन अनुभव उनको बहुत था। उन्होंने अपनी रचनाओं एवं उपदेशों के माध्यम से समाज को सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। जनता के हृदय में व्याप्त कटुता एवं वैमनस्य को दूर करते हुए मानव मात्र में सात्विकता का बीजारोपण किया। कबीर ने सुधार की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए पाखंड तथा मिथ्याचार का विरोध किया। जिस अत्याचार या अन्याय को कबीर स्वयं सह चुके थे उसकी कसक उनकी वाणी में स्पष्ट सुनाई देती है। कबीर ने मौलिक दार्शनिक विचारों द्वारा समाज को निखारा तथा सामजस्यपूर्ण व्यवस्था की वकालत की। समस्त मध्यकालीन समाज जाति-पांति व वर्ण व्यवस्था की हीनता और श्रेष्ठता की जंजीरों में जकड़ा था जिसका विरोध कबीर ने लोकहित के लिए किया। जिस पर्दा प्रथा,बाल विवाह, जोहर आदि कुरीतियों का आगमन हुआ जिसने समस्त देश को विनाश के गर्त में धकेल दिया। कबीर की युग चेतना का व्यापक स्वरूप फलीभूत हुआ। उन्होंने अपनी वाणी द्वारा मानव को स्वार्थपरता, असत्य, संकीर्ण मानसिक लालच, क्रोध, कामुकता आदि दोषों से मुक्त कर मानवीय गुणों का प्रसार किया। कबीर की सामाजिक चेतना जन-जन का कंठार बनी हुई है। मध्यकालीन समाज जिस संकटपूर्ण परिस्थितियों से गुजर रहा था उसमें अराजकता, आतंक, अनाचार थे जो संपूर्ण सृष्टि का पतन करने पर तत्पर थे तब कबीर की वाणी उनके लिए अमोघ स्तर का कार्य करती है।

संदर्भ -

1. डॉ वासुदेव सिंह, कबीर काव्य कोश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण:1987 पृष्ठ 42
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, 15 वां संस्करण, 2019, पृ.51
3. सं. सरदार अली जाफ़री, कबीर बानी, राजकमल प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, 2001, पृष्ठ 100
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन,15 वां संस्करण, 2019, पृ.50
5. डॉ धर्मवीर, कबीर बाज भी, कपोत भी, पपीहा भी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ 61
6. सं विजयेन्द्र स्नातक, कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवां संस्करण 2016, पृष्ठ 124
7. संत वाणी संग्रह भाग -1 कबीर, पृष्ठ 52

8. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, कबीरवचनावली, नागरी प्रचारिणी, सभा नवां संस्करण 2003, पृष्ठ145
9. अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, कबीरवचनावली, नागरी प्रचारिणी, सभा नवां संस्करण 2003, पृष्ठ 128
10. सं. डॉ भगवत् स्वरूप मिश्र, कबीर ग्रंथावली, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पंचम संस्करण 1987, पृष्ठ 8

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 151-155
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप

पूजा रानी
शोधार्थी (हिन्दी नेट),
गाँव -सितो, तहसील -अबोहर, जिला -फाजिल्का पंजाब, पिन-151116

शोध सार- जब-जब धरती पर अन्याय, अत्याचार, जुल्म, पाप बढ़ता गया तब-तब ईश्वर ने अनेक अवतारी रूपों में अपने भक्तों की रक्षा की और दुनिया का कल्याण किया। ऐसे ही जब हिंदुस्तान की धरती पर अंग्रेज़ों ने जुल्म किए तब अनेक क्रांतिकारी योद्धाओं ने अपने प्राणों का बलिदान कर देश की आज़ादी में अपनी भूमिका निभाई थी। ऐसे वातावरण में एक ग़रीब शिक्षक के घर जन्म लेता है एक ऐसा सपूत जिसने गोरी सत्ता को मुश्किल में डाल दिया। गुलाम हिंदुस्तान में शब्दों के सितारे की आवाज हर देशवासी के दिल की धड़कन बन गई थी,और जिसके एक आह्वान पर नौजवान सिर पर कुर्बानी का कफ़न बांध कर निकल पड़ते थे। ये आवाज़ थी भारत की आत्मा कहे जाने वाले माखनलाल चतुर्वेदी की। अपने मुल्क में हो रहे अत्याचार के खिलाफ माखनलाल चुप नहीं रह सकते थे। उन्होंने अपनी कलम द्वारा राष्ट्र की एकता, अखंडता तथा सुरक्षा की भावना का विकास किया। वे मूलतः राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं। इनके काव्य में सर्वत्र राष्ट्रीय चेतना का ज्वालामुखी धधकता रहता है, जो गोरी हुकूमत को खंड-खंड कर देना चाहता है। किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीयता का भाव उसकी जातिगत, धर्मगत, भावगत, सांस्कृतिक ,आर्थिक, राजनीतिक एकता समन्वय से ही विकसित होता है। भारत में प्राचीन काल से ही राष्ट्रीयता मिलती है जिसका उदाहरण हमें साहित्य में देखने को मिलता है क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। जो समाज में घटित हो रहा है, साहित्य उससे अछूता नहीं रह सकता। एक सच्चे साहित्यकार का कर्त्तव्य होता है की अपने साहित्य के माध्यम से अपने राष्ट्र की सभ्यता ओर संस्कृति को सुरक्षित रखना और जनता को राष्ट्र के प्रति जागृत करना।

मुख्य शब्द- हुकूमत, प्रफुल्लित, स्वाधीनता, कुर्बान, दमनकारी, मालगुजारी

राष्ट्रीय का अर्थ- राष्ट्र में ईय प्रत्यय लगाने से राष्ट्रीय शब्द बनता है जिसका अर्थ है -"राष्ट्र संबंधी, राष्ट्र का, राष्ट्र की एकता, महता, विशेषताओं से संबंध रखनेवाला, राष्ट्र द्वारा समर्थित या संचालित।"[1]
चेतना का अर्थ है- "ध्यान देना, सावधान होना, होश में आना।"[2]राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप- चेतना मानव मस्तिष्क की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह अपने जीवन के क्रियाओं को पूरा करता है। चतुर्वेदी जी के अनुसार- "राष्ट्र,संस्कृति और मनुष्य की त्रिवेणी का संगम है राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चेतना।"[3]

राष्ट्रीय चेतना का स्रोत आदिकाल से शुरू होकर भक्तिकाल में कबीर, सूर, तुलसी की भक्ति भावना में बहकर रीतिकाल में भूषण के काव्य से गुजर कर आधुनिक काल में प्रफुल्लित हुआ। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद ब्रिटिश शासन ने भारत को गुलाम बना कर अपनी राजनीति चलानी शुरू की। आधुनिक यूग के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चंद्र तथा उनके मण्डल के कवियों ने अनेक राष्ट्र प्रेम की कवितायें लिखी जिसमे राष्ट्र के लिए त्याग, बलिदान

का स्वरूप था, किन्तु इस काल में राष्ट्र भक्ति के साथ राज भक्ति की भी प्रशंसा होती थी। जैसे-जैसे अंग्रेज़ी हुकूमत का अत्याचार, अन्याय, दमन, शोषण का व्यवहार बढ़ता गया वैसे-वैसे राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रखर होता गया।

हिन्दी जगत् के पाठकों को अपने शब्दों से बांध कर रखनेवाले एक भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी हकीकत में भारत की आत्मा थे, जो भारत को गुलामी की जंजीरों से आजाद करवाना चाहते थे। जो भाव भारतीय जनता के मन में दबे हुए थे उन्हे वाणी देने का काम चतुर्वेदी जी ने किया। उन्होंने तन-मन-धन व कलम से मातृभूमि की सेवा की तथा परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर किया। दरअसल माखनलाल के कई रूप हैं, ओजस्वी क्रांतिकारी या देशभक्त, विलक्षण पत्रकार या संपादक या विचारवान जोशीला लेखक या कवि। गौरतलब है कि वे साहित्यकार बाद में देश भक्त वीर क्रांतिकारी योद्धा पहले थे। मातृभूमि के लिए मर मिटने का जज्बा उनमें देखा जाता है। उन्होंने न केवल राष्ट्रीय भावना से युक्त काव्य लिखा बल्कि खुद राष्ट्रीय आंदोलनों में हिस्सा लिया जिसके परिणामस्वरूप उन्हें कई बार जेल यात्राएं भी करनी पड़ीं। बेशक उन्हें जेल यात्रा करनी पड़ी लेकिन उसके बाद भी उनके हृदय में धधकती उस ज्वाला को कोई बुझा न सका जो अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने की थी। 'शक्ति लेख' की क्रांतिकारी वाणी देख कर उन्हें राजद्रोह के आरोप में कारावास भेजा गया लेकिन उनकी कलम रुकने का नाम न लेती। जेल से रिहा होने के बाद इन्होंने अनेक छद्म नामों से भारतीय जनता को राष्ट्र के प्रति प्रेरित किया। कारावास में रहते हुए इन्होंने कालजयी कृति 'कैदी और कोकिला' की रचना की जिसका स्वर आज भी गूँजता है। कवि ने कोयल को माध्यम बनाकर विदेशी शासन की पोल खोली है। कवि कहते हैं-

"काली तू,रजनी भी काली
शासन की करनी भी काली
काली लहर कल्पना काली
मेरी काल कोठरी काली।"[4]

माखनलाल चतुर्वेदी का व्यक्तित्व और कृतित्व देश प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है। इनकी रचनाओं के हर शब्द हर भाव में राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम और समर्पण झलकता है। राष्ट्रीय चेतना या देश प्रेम के कवियों में इनका शीर्ष स्थान है। इनका समस्त जीवन राष्ट्र और देश के लिए समर्पित है। राष्ट्र के लिए त्याग, बलिदान, देश की वेदी पर मर मिटने का दृढ़ निश्चय एक भारतीय आत्मा में ही मिल सकता है। 'पुष्प की अभिलाषा' नामक कविता के माध्यम से उन्होंने आत्म बलिदान की जो कामना की है वह अतुलनीय है –

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक![5]

गुलाम हिंदुस्तान में जन्में माखनलाल की आत्मा हर भारतीय की आत्मा बनकर स्वतंत्रता के लिए छटपटा रही थी। वे अंग्रेजों को अपने देश से बाहर निकाल फेंक देना चाहते थे। इसके लिए वे खुद स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े और जन-जन से इस आंदोलन में भाग लेने का आह्वान किया। परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े हिंदुस्तान को आजाद कराने के लिए वे प्रभु से प्रथना करते हैं कि

"अरे कंस के बंदी गृह,
उन्मादम किलकार।
तीस करोड़ बंदियों का भी
खुल जाने दे द्वार।"[6]

राष्ट्र की मुक्ति के लिए वे युवकों को बलिदान का संदेश देते हैं। स्वयं जेल में रहते हुए कविता लिखते हैं तथा ब्रिटिश सरकार की नींद हराम करते हैं।जेल में रहना भी उनके लिए गौरव की बात थी। 'कैदी और कोकिला' कविता में कोयल से अपनी हथकड़ियों को गहना बताते हैं।अंग्रेज हर विद्रोह को कुचल देना चाहते थे परंतु उस क्रांतिकारी वीर की कलम को न रोक सके।

" क्या देख न सकती जंजीरों का गहना
हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआँ।"[7]

इन्होंने अपनी कलम से उस वाणी को अभिव्यक्ति दी जिससे सोया हुआ मुल्क भी जाग उठता है। आदि से अंत तक वे राष्ट्र जागरण की जोत जलाते रहते हैं और अंधकारमय परतंत्रता को स्वतंत्रता का आलोक दिखाते हैं। इन्होंने न केवल स्वाधीनता के लिए त्याग, बलिदान और आंदोलन में कूदने तक अपने को सीमित रखा वरन राष्ट्र भाषा के प्रति भी इनका अगाध प्रेम व्यक्त होता है। प्रारंभ में ब्रज भाषा में लिखते थे पर बाद में ब्रज भाषा को छोड़ कर खड़ी बोली के क्षेत्र में आए। विराट व्यक्तित्व के कारण मिलने वाले पद्मभूषण को लौटाकर राष्ट्र भाषा के प्रति अनन्य प्रेम और श्रद्धा का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। राष्ट्र और राष्ट्र भाषा के लिए 'कवि का आह्वान' कविता में लिखते हैं-

" राष्ट्रदेवि करुणामय स्वामिनी, माता कहि गुण गाओ
भारत बंधु राष्ट्रभाषा को, मिलकर शीश चढ़ाओ।"[8]

हिन्दी के प्रति उनके प्रेम की अभिव्यक्ति देते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं कि –"माखनलाल का यह युगांतकारी महत्त्व है कि उन्होंने उग्र राष्ट्रीय चेतना के साथ अपने काव्य में सूक्ष्म सौन्दर्य बोध, आत्मविभोर गेयता, मोहक चित्रमयता को स्थान दिया। वह काव्य में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने वाले साहित्यकारों में हैं। जिस समय उन्होंने लिखना आरंभ किया था उस समय खड़ी बोली ब्रज भाषा का विवाद ज़ोरों पर था। अपनी प्रतिभा से उन्होंने सिद्ध किया कि आधुनिक हिन्दी मे श्रेष्ठ काव्य रचा जा सकता है।"[9]

जहाँ आज पत्रकारिता लाचार और बेबस नजर आती है, पत्रकारिता के सिद्धांतों का जनाजा निकल रहा है। उस वक्त पराधीन भारत में जहाँ हर क्षण गौरों के अत्याचारों और शोषण का खौफ़ रहता था, माखनलाल चतुर्वेदी ने बेखौफ़ और बेबाक पत्रकारिता का सम्पादन किया। प्रभा, कर्मवीर और प्रताप उनकी पत्रकारिता के अंग थे। जिसमे उन्होंने बेबाकी से विदेशी सत्ता का विरोध करते हुए स्वदेशी शासन को वाणी दी। पत्रकार के रूप में उनका व्यक्तित्व न रुका न झुका। आर्थिक समस्या, राजनीतिक दबाव, अंग्रेजों का शोषण और कारागार का भय भी उन्हें विचलित न कर सका। बेखौफ़ पत्रकारिता के माध्यम से न सिर्फ ब्रिटिशों का बल्कि देशी रियासतों का भी भंडाफोड़ किया। क्रांतिकारी पत्रकारिता की पवित्र गंगा ने आने वाले कवियों का भी उद्धार किया जो निरंतर इस जल से स्नान करती रहीं। झण्डा सत्याग्रह में गिरफ्तार होने के बाद नागपुर जेल में ही शहीद सत्याग्रही हरदेव नारायण सिंह की स्मृति में 'राष्ट्रीय झंडे की भेंट' नामक कविता लिखी जो प्रभा के 'झण्डा अंक' में ही प्रकाशित हुई थी। कविता की पंक्तियां इस प्रकार हैं-

"दौड़ पड़ो वीरों, माता ने संकट में की आज पुकार
हार न होवे तेरे रहते मेरी पावन भूमि बिहार
ले झण्डा चल पड़ा, प्राण का मोह छोड़ वह तरुण युवा
उस गति पर अहा ! देश के अमरों को भी क्षोभ हुआ।"[10]

पत्रकारिता में उन्हें गणेश शंकर विद्यार्थी, माधवराव सप्रे आदि से विशेष प्रेरणा मिली। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में माखनलाल चतुर्वेदी की इस क्रांतिकारी पत्रकारिता का योगदान अमूल्य है। अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति वर्तमान में भी अपना प्रभाव दीखा रही है। धर्म के नाम पर लोगों में जहर उत्पन्न करना उस वक्त भी राजनीति चाल थी जिसका असर आज तक देखने को मिलता है। अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को मजहब के नाम पर अलग कर दिया और वर्षों तक शासन किया। कबीर जैसे महान संत कवि ने भी दोनों संप्रदायों के लोगों पर कटाक्ष किया है ऐसे में चतुर्वेदी जी कैसे चुप रह सकते थे। उन्होंने भी दोनों धर्मों के लोगों को समझाने का प्रयास किया। उनमें मानवता का प्रचार कर दोनों को ही भारत माता की संतान बताया है और उनके बीच प्रेम धारा सींचने का आह्वान करते हुए कहते हैं-

"हिन्द माता की दोनों (हिन्दू – मुसलमान) आँख,
नाक को रखकर बीचोंबीच
अश्रु की उज्ज्वल धारा छोड़ प्रेम का पौधा देवें सींच
मुहम्मद पर सब कुछ कुर्बान मौत के हों तो हों मेहमान
कृष्ण की सुन मुरली की तान, चलों हो सब मिलकर बलिदान।"[11]

चतुर्वेदी जी एक देश भक्त, क्रांतिकारी पत्रकार, कवि होने के साथ वे शिक्षक भी थे। ऐसे में अंग्रेजों द्वारा अपनाई शिक्षा नीति का समर्थन कैसे करते। गौरों को सिर्फ़ पढ़े लिखे नौकर चाहिए थे जो दिखने में भारतीय हो और दिमाग से अँग्रेज हों। उन्होनें उनकी स्वार्थी नीति का विरोध किया। उनका मानना था की शिक्षा केवल विनय से प्राप्त की जा सकती है। विनम्रता, निष्कपटता, विश्वास, सुशीलता, मीठी वाणी, उत्साह, सत्य, भक्ति, विवेक तमाम गुणों को एक छात्र का संसार बताया है। वे विद्यार्थियों को कवि, लेखक, ज्ञानी, विज्ञानी बनने का संदेश देते हैं। नीति निवेदन कविता में वे लिखते हैं-

"आडम्बरीड विचार तज कर बन दृढ़व्रत धीर
विद्या विनय से सोहती है,यह न भूलो वीर।"[12]

बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे चतुर्वेदी जी। उनकी लेखनी में हिमालय सी गरिमा थी। उनकी राष्ट्रीयता की नींव बलिदान पर टिकी थी लेकिन उनकी त्याग भावना निराश नहीं थी बल्कि ओज, उल्लास और वीरता से भरी थी। अपनी कलम से न केवल ब्रिटिश कालीन समस्याओं का वरन भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं का भी विरोध किया है। सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना ही स्वाधीनता नहीं है जब तक समाज में समता की स्थापना नहीं होगी तब तक आजादी कोई मायने नहीं रखती। उन्होंने तन-मन-धन और कलम तथा ओजस्वी वाणी से राष्ट्र प्रेम की अभिव्यक्ति दी थी। उनका साहित्य उनके जीवन का अनुशीलन है। देश गरीबी, नारी, किसान, मजदूर, जाति प्रथा तमाम मुद्दों पर उन्होंने गौर किया और कलमबद्ध भी किया। पूरे समाज को केंद्र में रखकर लेखन कार्य किया। देखने में शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से भक्त, विचारों से क्रांतिकारी थे वहीं उनका काव्य उनके जीवन का अनुशीलन होने के कारण त्याग, तप, आराधना, वेदना, आक्रोश से भरा है। जिसे पढ़कर सूनी रक्त धमनियों में भी खून खौल उठता है। ब्रिटिश साम्राज्य मे जो अत्याचार और दमन भारतीय जनता पर हुआ उसका ज्वलंत दस्तावेज चतुर्वेदी जी का साहित्य है। उनके लेखन और कर्म का समन्वय ही उन्हे उच्च भाव भूमि पर स्थान दिलाता है। उनका अखंड व्यक्तित्व साहित्य में खंड-खंड होकर अनेक विधाओं में उभरा है। उनकी लेखनी निश्चय ही हर भारतीय के हृदय की धड़कन थी और यकीनन ही वे सजीव भारतीय आत्मा थे।

संदर्भ सूची

1. आचार्य रामचन्द्र वर्मा,प्रामाणिक हिन्दी कोश, इलहाबाद ,ग्यारवां संस्करण ,2004पृष्ठ 781
2. यथावत् पृष्ठ 294

3. (सं) बैजनाथ प्रसाद,परिशोध, वार्षिक पत्रिका ,अंक ,67-वर्ष ,2022-2021-हिन्दी विभाग ,पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ ,पृष्ठ 12
4. चतुर्वेदी ,माखनलाल ,हिमकिरीटनी ,सरस्वती प्रकाशन मंदिर ,इलाहाबाद ,तीसरा संस्करण, पृष्ठ 18
5. (सं)पालीवाल ,कृषणदत्त ,माखनलाल चतुर्वेदी रचना संचयन ,साहित्य अकादेमी ,दिल्ली, प्रथम संस्करण,2014 , पृष्ठ 165
6. (सं)जोशी ,श्रीकांत ,माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली ,वाणी प्रकाशन ,दिल्ली, प्रथम संस्करण,1983 पृष्ठ 108
7. माखनलाल ,हिमकिरीटिनी ,सरस्वती प्रकाशन ,इलाहाबाद ,तीसरा संस्करण, पृष्ठ 17
8. (सं) जोशी ,श्रीकांत, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली ,वाणी प्रकाशन ,दिल्ली, प्रथम संस्करण ,1983पृष्ठ 43
9. पालीवाल, कृषणदत्त ,माखनलाल चतुर्वेदी रचना संचयन ,साहित्य अकादेमी ,दिल्ली, प्रथम संस्करण ,2014 पृष्ठ 55
10. यथावत् पृष्ठ 103
11. (सं) जोशी ,श्रीकांत ,माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली ,वाणी प्रकाशन ,दिल्ली, प्रथम संस्करण ,1983-पृष्ठ44
12. यथावत् पृष्ठ 31-

फोन-9728518609

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 156-158
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिकता, दाम्पत्य-संबंध और अस्तित्व-संघर्ष : 'आधे-अधूरे' का समकालीन परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण

डॉ० सीमा दुबे
सहायक आचार्य,
तिरुपति कालेज, प्रताप नगर जयपुर

सारांश

मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक 'आधे-अधूरे' (1969) आधुनिक हिन्दी नाट्य-साहित्य की उन कृतियों में है जिसने शहरी मध्यवर्गीय जीवन, दाम्पत्य-सम्बंधों के विघटन और व्यक्ति-अस्तित्व के संकट को अत्यंत तीखी और संवेदनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया। यह नाटक व्यक्ति और समाज के बीच उस तनाव को दिखाता है जहाँ आधुनिकता के नाम पर बदलते मूल्य मनुष्य को भीतर से अपूर्ण, अस्थिर और विरोधाभासी बना देते हैं। महेंद्रनाथ, सावित्री, बच्चों और विभिन्न पुरुष-पात्रों के माध्यम से मोहन राकेश आधुनिक जीवन के उस खालीपन, असंतोष, असहजता और मोहभंग का चित्रण करते हैं जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना नाटक के लिखे जाने के समय था।

प्रमुख शब्द : आधुनिकता, दाम्पत्य-संबंध, अस्तित्ववाद, मोहभंग, शहरी मध्यवर्ग, विघटन, स्त्री-स्थितियाँ, मोहन राकेश, नाटक, मनोवैज्ञानिक यथार्थ।

प्रस्तावना : आधुनिकता का संकट और 'आधे-अधूरे'

हिन्दी रंगमंच में मोहन राकेश को आधुनिकता का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है। उनकी कृति 'आधे-अधूरे' को आधुनिक हिन्दी नाटक का प्रतिनिधि-ग्रंथ कहा जाता है क्योंकि इसमें व्यक्ति-अस्तित्व, दाम्पत्य-विघटन, मनोवैज्ञानिक तनाव, शहरी जीवन की कृत्रिमता और मूल्यहीनता जैसे विषय अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से उभरते हैं। गिरिराज किशोर लिखते हैं "मोहन राकेश ने हिन्दी रंगमंच को आधुनिक मनुष्य की अंतर्वेदना दी।" [1]

यह नाटक सावित्री नामक एक ऐसी स्त्री की कथा है जो अपने जीवन में 'पूरा' पुरुष ढूँढती है, पर हर पुरुष उसे अधूरा ही मिलता है। यह अधूरापन मात्र पुरुषों का नहीं बल्कि सम्पूर्ण मध्यवर्गीय आधुनिक जीवन का है।

आधुनिकता और मूल्य-विघटन : सामाजिक संदर्भ

आधुनिकता की प्रक्रिया ने भारतीय शहरी जीवन में जहाँ नई स्वतंत्रताएँ दीं, वहीं मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया भी तेज हुई। व्यक्ति अधिक स्वायत्त हुआ, परन्तु अधिक अकेला भी। परिवार का ढाँचा बदला, लेकिन भावनात्मक सुरक्षा कमजोर पड़ी।

डॉ. नामवर सिंह ने आधुनिकता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है "आधुनिक जीवन का संकट यह है कि मनुष्य वस्तुओं से घिरा है पर संबंधों से खाली।" [2] 'आधे-अधूरे' में वही खालीपन दिखता है।

सावित्री का परिवार बेरोजगार या अक्षम पति, भटकती हुई संताने, लगातार टूटता घरेलू वातावरण, और एक ऐसे समाज का दबाव जिसमें सफलता ही चरम मूल्य है इन सबका संयुक्त परिणाम है।

इस प्रकार मोहन राकेश आधुनिकता की उस त्रासदी को उजागर करते हैं जहाँ परिवार के भीतर का संतुलन खंडित हो गया है।

दाम्पत्य–संबंधों का विघटन : दाम्पत्य के अंदर असंतोष और अलगाव - महेंद्रनाथ और सावित्री का संबंध आधुनिक दाम्पत्य का ऐसा उदाहरण है जिसमें न भावनात्मक साझेदारी, न पारस्परिक सम्मान, और न ही जीवन के लक्ष्य को लेकर सामंजस्य है।

नाटक में एक प्रसिद्ध संवाद है—सावित्री: "तुममें न पुरुष जैसी क्षमता है, न जिम्मेदारी का अहसास।" [3]

महेंद्रनाथ: "और तुम? तुम खुद क्या हो?" [4]

यह संवाद इस घर की मूल समस्या को सामने लाता है—दोनों ही अपने-अपने तरीके से टूटे हुए हैं।

'पूरा पुरुष' की खोज : सावित्री चार पुरुष-पात्रों—सिंह, गुप्ता, जगीरदार, किशनलाल—में 'पूर्णता' खोजती है, पर हर बार उसे निराशा मिलती है। यह आधुनिक मनुष्य के उस भ्रम का दार्शनिक चित्रण है जिसमें वह पूर्णता को बाहर खोजता है, भीतर नहीं।

प्रसिद्ध नाटक समीक्षक गिरीश रस्तोगी लिखते हैं "*'आधे-अधूरे'* का स्त्री-पुरुष संघर्ष अन्ततः मनुष्य के अपने ही भीतर की अधूरापन-ग्रंथि को उजागर करता है।" [5]

पुरुष-पात्रों की 'एक ही प्रतिमा' : नाटक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपकरण यह है कि चारों पुरुष-पात्रों की भूमिका एक ही अभिनेता निभाता है। इसका नाटकीय संकेत यह है कि "पुरुष बदलते हैं, पर पुरुषत्व की मूल संरचना नहीं बदलती।" यह आधुनिक नारी के दृष्टिकोण से एक तर्कसंगत विडंबना प्रस्तुत करता है।

अस्तित्ववादी संकट और 'अधूरापन' : यह नाटक अस्तित्ववादी भावभूमि पर खड़ा है। मोहन राकेश के नाटकों में अस्तित्व का संकट प्रमुख तत्व माना गया है।

स्वाति जोशी लिखती हैं "'आधे-अधूरे' मनुष्य की उस अस्तित्ववादी पीड़ा का नाटक है जहाँ मनुष्य स्वयं से ही विस्थापित है।" [6]

शहरी मध्यवर्ग की असफलताएँ : महेंद्रनाथ का व्यक्तित्व इस वर्ग की विफलताओं का प्रतीक है नौकरी की अस्थिरता, आत्महीनता**,** हताशा और शराब-आसक्ति सावित्री का गुस्सा और महेंद्रनाथ की बेचारगी उसी वर्ग की सामाजिक-आर्थिक हकीकत है।

स्त्री का संघर्ष : 'अधूरेपन' के भीतर अर्थ-खोज

सावित्री—सशक्त या पीड़ित?- सावित्री का चरित्र एक साथ— पीड़ित भी है, संघर्षशील भी, पुरुष वर्चस्व के खिलाफ मुखर भी और अपने परिवार की रीढ़ भी। डॉ. श्यामानंद सिंह सावित्री के बारे में लिखते हैं— "सावित्री की त्रासदी यह है कि वह परिस्थिति से लड़ते-लड़ते स्वयं कठोर हो गई है।" [7]

स्त्री का 'डबल बर्डन' : आधुनिक स्त्री को घर संभालना, नौकरी करना, परिवार का बोझ उठाना, और भावनात्मक स्थिरता बनाए रखना सब करना पड़ता है। सावित्री यही करती है—परन्तु अंततः 'अधूरी' ही रह जाती है।

बच्चे : आधुनिक विघटन की अगली पीढ़ी : नाटक में बच्चे—बिन्नी, अशोक, और किन्नी—उस टूटन की अगली कड़ी हैं।

घुटन, विद्रोह और दिशा-भ्रम : ये बच्चे उस घर में बड़े हो रहे हैं जहाँ पिता अक्षम, माता तनावग्रस्त, और वातावरण शत्रुतापूर्ण है। इस सम्बन्ध में राजेश्वर त्रिवेदी लिखते हैं "'आधे-अधूरे' में बच्चों का व्यवहार आधुनिक परिवार की मनोवैज्ञानिक क्षति का दर्पण है।" [8]

उनका विद्रोह, असमंजस और भविष्य को लेकर असुरक्षा इसी का परिणाम है।

प्रतीक, संरचना और भाषा

अद्भुत प्रतीक–विधान : 'एक ही अभिनेता' : एक ही अभिनेता द्वारा चार पुरुष भूमिकाएँ निभाना आधुनिक नाट्यकला का महत्वपूर्ण प्रतीक है— यह बताता है कि सावित्री के मानस-जगत में 'पुरुष' एक ही प्रकार का है—बस मुखौटे बदलते जाते हैं।

भाषा : कटुता और मनोवैज्ञानिक तीव्रता : मोहन राकेश की भाषा— तीखी, यथार्थवादी, संवाद-प्रधान, और मनोविश्लेषणात्मक है। नामवर सिंह ने राकेश की भाषा पर टिप्पणी की है "राकेश की भाषा क्रूर यथार्थ को बिना अलंकार के बेधती है।" [9]

समकालीन परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता : आज के भारतीय समाज में दाम्पत्य तनाव, आर्थिक दबाव, मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ, पारिवारिक विघटन, और भावनात्मक अकेलापन पहले से कई गुना बढ़ा है। इसलिए 'आधे-अधूरे' आज और भी अधिक प्रासंगिक है।

उपसंहार : 'आधे-अधूरे' केवल एक दाम्पत्य-संकट का नाटक नहीं है; यह आधुनिक मनुष्य के पूर्णता-भ्रम का नाटक है। सावित्री और महेंद्रनाथ के भीतर का संघर्ष हमारा अपना संघर्ष है "हम सब कहीं न कहीं अधूरे हैं।"

सन्दर्भ सूची

1. किशोर, गिरिराज। हिन्दी नाटक का आधुनिकीकरण। राजकमल, 1983, पृ. 122.
2. सिंह, नामवर। कहानी: नई कहानी। राजकमल प्रकाशन, 1965, पृ. 89.
3. मोहन राकेश। आधे-अधूरे। राजकमल प्रकाशन, 1969.
4. वही
5. रस्तोगी, गिरीश। हिन्दी नाटक का सामाजिक परिप्रेक्ष्य। साहित्य भवन, 1999, पृ. 203.
6. जोशी, स्वाति। हिन्दी नाटक और अस्तित्ववाद। विश्लेषण प्रकाशन, 2004, पृ. 61.
7. सिंह, श्यामानंद। हिन्दी नाटक: संरचना और संकट। साहित्य निकेतन, 1988, पृ. 147.
8. त्रिवेदी, राजेश्वर। आधुनिक हिन्दी नाटक। साहित्य संसार, 1995, पृ. 92.
9. सिंह, नामवर। "आधुनिक साहित्य के आयाम", लोकभारती, 1972, पृ. 177

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 159-161
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संगीत स्वास्थ के लिए वरदान है

डॉ० राजेश कुमार मिश्रा
जी. के. मेमोरियल कॉलेज ऑफ एजुकेशन ,चाकघाट, रीवा(म.प्र।)

सारांश - आज के समय में मुख्यतः प्रत्येक व्यक्ति मानसिक और शारीरिक रोगों से पीड़ित है। कोई भी बीमारी हो चाहे शारीरिक या मानसिक दोनों स्थितियों में इनका इलाज हो सकता है। आधुनिक समय में प्रत्येक रोग के कारणों की खोज तथा उसके इलाज में सराहनीय प्रगति हुई है पर इसके बावजूद भी रोग और बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं, जिसका मुख्य कारण आज के मनुष्य का मानसिक तनाव है। मानसिक तनाव का प्रमुख कारण मनुष्य का जीवन के प्रति नकारात्मक सोच और निराशावादी रवैया है। अपनी रूचि के अनुकूल परिस्थितियों न होने के कारण व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन भी खो बैठता है ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति को बहुत ज्यादा दिमागी या मानसिक और शारीरिक विग्रता उत्पन्न है जो कि कई बार भयावह बिमारी का कारण बन जाती है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति को चिकित्सा विशेषज्ञों से सलाह लेनी पड़ती है और कभी-कभी तो अस्पताल में भर्ती भी हो जाना पड़ता है।

मुख्य शब्द – वातावरण, राग, औषधि, रोग, संतुलन, शक्ति।

प्रस्तावना - संगीत मात्र मनोरंजन नहीं है। यदि उसे भावनाओं और प्रेरणाओं से सुसज्जित रखा जा सके, तो इसका परिणाम न केवल गाने सुनने वालों के लिये वरन् सुविस्तृत वातावरण को श्रेयस्कर परिस्थितियों से भरा-पूरा बनाने में सहायक हो सकता है। अमेरिका की कला पत्रिका 'दि अदर ईस्ट विपेज में भारतीय संगीत भारतीय शास्त्रीय संगीत की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये लिखा है- 'मनुश्य की भीतरी सत्ता को राहत देने है।" और तरंगीन करने की भारतीय संगीत के ध्वनि प्रवाह में अपने दंग की अनोखी क्षमता भारतीय शास्त्रीय संगीत की बड़ी अनूठी विशेषता है कि इसमें ऋतुओं के अनुरूप विशिष्ट गायन एवं वादन का विधान है बसंत ऋतु में बसंत राग वर्षा ऋतु में मल्हार वमेध आदि के संकेत हैं। इसी प्रकार प्रातः काल राग भैरव, ललिन, भटियार एवं भक्ति रस की उपयोगिता मानी गई है. उसी प्रकार दिन-रात के विभिन्न समयों में विभिन्न राग एवं रस उपयोगी माने गये हैं कि एक बार अकबर के दरबार में तानसेन और बैजूबावरा की संगीत प्रतियोगिता रखी गई। तानसेन ने तोड़ी राग गाया और कहा जाता है कि उनकी स्वर लहरियां वन खण्ड में गुंजित हुई, मृगों का एक झुंड वहाँ दौड़ता हुआ चला आया। भाव विभोर तानसेन ने अपने गले पड़ी माला एक मृग के गले में डाल दी। संगीत प्रवाह रुक जाने के कारण सभी मृग जंगल की ओर चले गये।

तानसेन ने बैजू से आग्रह किया कि वह उस मृग को वापिस बुलाये जिसके गले में माला पड़ी है। इसके बाद बैजूबावरा ने 'मृग रंजनी तौड़ी गया (राग) और वह मृग दौड़ता हुआ राज्य सभा में आ गया जिसके गले में तानसेन ने माला पहनाई थी। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि संगीत मनुष्य ही नहीं अपितु प्राणीमात्र को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संगीत में वो शक्ति है या फिर कह सकते हैं कि ऐसा सम्मोहन जिसमें व्यक्ति जीव जो भी सुनता है वह उस संगीत की धुन में सम्मोहित हो जाता है। जड़ अचेतन में अविस्मरणीय प्रभाव उत्पन्न कर

देता है। यह व्यवस्था ऐसे ही मनमानी नहीं हैं वरन् इसके पीछे शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य के महत्वपूर्ण आध् गारों का समावेश है।

संगीत ईश्वर द्वारा मनुष्य को प्राप्त एक ऐसी औषधि है जिससे अनेक रोगों का उपचार बड़ी सरलता से किया जा सकता है। संगीत द्वारा रोगों का उपचार कोई आज की देन नहीं है। प्राचीन काल में बरतानियाँ और मिस्त्र आदि देशों में संगीत की शक्ति द्वारा मानसिक रोगियों का इलाज किया जाता था भिन्न-भिन्न रोगों द्वारा रोगियों के इलाज के विषय में विस्तार में जानकारी दी है। किसी भी गम्भीर नाद द्वारा दिमाग और शरीर भी नाडियों को संतुलित किया जा सकता है। इस प्रकार औषधि और शक्ति दोनों ही रूपों में संगीत चिकित्सा प्रणाली का प्रयोग किया जा सकता है। लंदन के अस्पताल में गूंगे, बहरे और मनोरोगियों के ऊपर इस प्रणाली द्वारा सफलता पूर्वक परीक्षण किये गये हैं और निरन्तर किये जा रहे हैं।

शास्त्रीय संगीत की इस विज्ञानभूत प्रक्रिया को अब पाश्चात्य देश भी अच्छी तरह समझने लगे हैं। अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन और रूस आदि सुविकसित देशों में वर्तमान पीढ़ी के युवक तेजी से भारतीय संगीत का अधिक लाभ प्राप्त करने के लिये वे लोग भारतीय संगीत सीख रहे हैं और उनके अन्य कारणों में इसी संगीत से उत्पन्न होने वाले शारीरिक एवं मानसिक प्रतिक्रिया का प्रभाव मुख्य है। उससे लोगों को बड़ी शांति मिलती है, फलस्वरूप भारतीय संगीत का अधिक लाभ प्राप्त करने के लिये वे लोग भारतीय भाषाओं को सीखना चाहते हैं।

संगीत एक थेरेपी -आज की इस तेज भागती हुई जिन्दगी में हर एक व्यक्ति पर कोई न कोई दबाव होता है चाहे वह परिवार सम्बन्धि हो शिक्षा सम्बन्धित हो या रोजगार सम्बन्धित हो। मानसिक तनाव व्यक्ति के दिलों दिमाग और मन से जुड़ी हुई एक संरचना है जिस पर कई बार दवाईयां और औषधियों काभी कोई असर नहीं होता। ऐसी स्थिति मे डॉक्टर व्यक्ति को यही सलाह देता है कि वो अपना मानसिक संतुलन बनाये रखे तथा शांति और धैर्य से काम ले। संगीत में वो शक्ति है जो व्यक्ति के अशान्त मन को शांत कर देता है। जब कोई उहिग्न और उत्तेजित व्यक्ति संगीत के रस में डूब जाता है। फिर उसे कोई चिन्ता नहीं रहती क्योंकि संगीत सुनते ही उसके दिल दिमाग और मन में जो भारी भरकम उद्विग्न होते हैं वो धीरे धीरे शान्त कर संगीत की मधुरता में निश्चित हो जाते हैं। और संगीत सुनने वाला व्यक्ति स्वर रहरियों खो जाता है संगीत के प्रभाव में हो जाता है और संगीत के भाव में समाकर उसे उस अलौकिक आनन्द के द्वार पर ले जाना है। इसलिये किसी भी प्रकार के मानसिक तनाव को दूर करने में संगीत अलौकिक औषधि 1 के रूप में कार्य करती है।

रमेश सक्सेना में एक लेख में विभिन्न रागों द्वारा अनेक रोगों के उपचार को स्वीकारा है। इसके अनुसार भैरव राग कफ संबंधी रोगों के उपचार हेतु मलहार सोरठ व जय जय वन्नी शरीर की ऊर्जा बढ़ाने में व क्रोध को कम करने में मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करने हेतु आसावरी रक्त, कफ तथा वीर्य सम्बन्धी व्यधियों के निवारण हेतु भैरवी सर्दी, दमा इनफल्यूयेजा प्यूरिसी, ब्रांकाइटिक व क्षयरोग के निवारण हेतु, गुर्जरी, बागेश्वरी तथा मालकाँस राग दमा व कफ रोगों में सारंग सिरदर्द व पित्त के रोगों में भीमपलासी, मुलतानी, पटदीप व पटमंजरी राग नेत्र रोगों में, दरबारी हृदय रोग व गठिया रोगों में हिन्दोल तिल्ली रोग में तथा पंचम राग पेट के रोगों के निवारण हेतु उत्तम बताया गया है। रमेश सक्सेना द्वारा वर्णित इन राग रूप औषधियों से प्रतीत होता है।

निष्कर्ष -

यह संगीत अगर मानसिक रोगी को सुनाया जाय तो उस पर भी असर ही होता है अमरीका में 500 से अधिक डाक्टर अपने रोगियों की चिकित्सा संगीत द्वारा करने का प्रयास कर रहे हैं इस सम्बन्ध में उन्हे सफलता भी मिली है।

परम्परागत किंवदतियों में अतिश्योक्ति तो स्वाभाविक ही है किन्तु संगीत मनुष्य और पशु-पक्षियों को ही नहीं अपितु पेड़-पौधों को भी प्रभावित करता है। संगीत वातावरण एवं प्राणियों को निः सन्देह प्रभावित करता है कृषि के क्षेत्र में भी इस पर कई कार्य हो रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पुस्तक सूची -

1. भारतीय संगीत वैज्ञानिक विश्लेषण, 1986 डॉ. स्वतन्त्र शर्मा।
2. संगीत विशारद, 1999 बसन्त।
3. संगीत रस मंजरी विमर्श 2005 रविन्द्रनाथ बहोरे।
4. संगीत का सौन्दर्य बोध- 2000, डॉ उमा गर्ग।
5. संगीत मैनुअल डॉ. मृत्युंजय शर्मा 2001।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 162-167
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ਪੰਜਾਬੀ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਦੀ ਦਸ਼ਾ ਤੇ ਮੁਕਤੀ ਦੀ ਨਿਸ਼ਾਨਦੇਹੀ

ਅਮਨਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ,
ਖੋਜਾਰਥੀ, ਪੀ.ਐਚ.ਡੀ., ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਭਾਗ,
ਡਾ. ਸੰਦੀਪ ਸਿੰਘ
ਨਿਗਰਾਨ,
ਗੁਰੂ ਕਾਸ਼ੀ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਤਲਵੰਡੀ ਸਾਬੋ, ਬਠਿੰਡਾ।

ਭਾਰਤੀ ਨਾਰੀ ਦਾ ਕਦੇ ਵੀ ਸਵਰਨ ਯੁੱਗ ਨਹੀਂ ਰਿਹਾ। ਉਸ ਦੀ ਦਸ਼ਾ ਤਰਸਯੋਗ ਤੇ ਨਿਰਾਦਰ ਭਰਪੂਰ ਹੀ ਰਹੀ ਹੈ। ਕੁਲੀਨ ਵਰਗ ਦੀ ਨਾਰੀ ਅਤੇ ਨਿਮਨ ਵਰਗ ਦੀ ਨਾਰੀ ਦੀ ਦਸ਼ਾ ਵਿੱਚ ਵੀ ਬਹੁਤ ਅੰਤਰ ਰਿਹਾ ਹੈ। 20ਵੀਂ ਸਦੀ ਵਿੱਚ ਵਿਸ਼ਵ ਭਰ ਵਿੱਚ ਨਾਰੀ ਦੀ ਸਮਾਜਿਕ ਸਥਿਤੀ ਬਾਰੇ ਵੱਡੇ ਪੱਧਰ ਤੇ ਚਰਚਾ ਹੋਣੀ ਆਰੰਭ ਹੋਈ। ਉਸ ਦੀ ਸੁਰੱਖਿਆ ਤੇ ਬਰਾਬਰੀ ਦੇ ਅਧਿਕਾਰ ਦੀ ਗੱਲ ਕੀਤੀ ਗਈ।

ਜਮਾਤੀ ਵੰਡ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਸਦਾ ਕਾਣ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਹ ਪ੍ਰਤਾੜਨਾ ਕੁਲੀਨ ਵਰਗ ਦੀ ਨਾਰੀ ਨੇ ਹੋਰ ਤਰ੍ਹਾਂ ਹੰਢਾਈ ਹੈ ਤੇ ਨਿਮਨ ਵਰਗ ਦੀ ਨਾਰੀ ਨੇ ਹੋਰ ਤਰ੍ਹਾਂ। ਨਿਮਨ ਵਰਗ ਦੀ ਨਾਰੀ ਨੇ ਤਾਂ ਸਗੋਂ ਦੂਹਰਾ ਸੰਤਾਪ ਭੋਗਿਆ ਹੈ। ਇਕ ਨਿਮਨ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਅਤੇ ਦੂਜਾ ਨਾਰੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ-ਨਿਮਨ ਵਰਗ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਸਦਾ ਕੁਲੀਨ ਵਰਗ ਤੋਂ ਆਪਮਾਨਤ ਹੋਣਾ ਪਿਆ ਹੈ ਅਤੇ ਨਾਰੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਘਰੋਂ ਵੀ ਤੇ ਬਾਹਰੋਂ ਵੀ ਇਹ ਪ੍ਰਤਾੜਨਾ ਸਹਾਰਨੀ ਪਈ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਵੀ ਉਸਨੂੰ ਸਿਆਣੀ ਧੀ, ਚਰਿੱਤਰਵਾਨ ਤੇ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰ ਪਤਨੀ ਤੇ ਮਮਤਾਮਈ ਮਾਂ ਬਣਾ ਕੇ ਹੀ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਉਹ ਹਰ ਸਮੇਂ ਵਰਜਨਾਵਾਂ ਤੇ ਸੰਕੋਚਾਂ ਵਿਚ ਘਿਰੀ ਰਹੀ ਹੈ। ਆਪਣੀਆਂ ਰੀਝਾਂ, ਇੱਛਾਵਾਂ, ਸੰਗਾਂ ਅਤੇ ਚਾਹਤ ਦੇ ਪ੍ਰਗਟਾਵੇ ਸਮੇਂ ਉਹ ਕਲਤਾਮਕ ਉਹਲਾ ਵਰਤਦੀ ਰਹੀ ਹੈ।

ਸਮਾਜ ਨੇ ਉਸ ਨੂੰ ਦੁਜੈਲੇ ਨਾਗਰਿਕ ਦੀ ਮਾਨਤਾ ਦਿੱਤੀ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਦੇ ਹੋਣ-ਥੀਣ ਨੂੰ ਮਨਫ਼ੀ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਅਤੇ ਕਿਰਤੀ ਵਰਗ ਸਾਮੰਤੀ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਮੁੱਲ-ਵਿਧਾਨਾਂ ਹੱਥੋਂ ਜ਼ਲੀਲ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਦੋਵੇਂ ਹੀ ਦਾਬੇ ਹੇਠ ਰਹੇ ਹਨ ਅਤੇ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋਏ ਹਨ। ਇਹਨਾਂ ਦੇ ਇਨਸਾਨ ਹੋਣ ਦਾ ਗੌਰਵ ਖ਼ਤਮ ਕੀਤਾ ਗਿਆ ਹੈ:-

> ਮੱਧਕਾਲੀ ਸਾਮੰਤੀ ਅਰਥ-ਵਿਵਸਥਾ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਅਤੇ ਕਾਮੇ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਇਕੋ ਜਿਹੀ ਹੈ। ਉਹ ਵਗਾਰੀਆਂ ਵਾਂਗ ਧੰਦੇ ਪਿੱਟਦੇ ਹਨ। ਆਪਣੀ ਕਿਰਤ ਤੋਂ ਵਿਯੋਗੇ ਹੋਣ ਕਾਰਨ

ਉਹ ਆਰਥਕ ਪੱਖੋਂ ਤਾਂ ਹੀਣੇ ਹੀ ਰਹਿੰਦੇ ਹਨ ਸਗੋਂ ਉਹ ਆਪਣਾ ਮਨੁੱਖੀ ਗੌਰਵ ਵੀ ਗੁਆ ਲੈਂਦੇ ਹਨ।[1]

ਰਿਸ਼ਤਾ-ਨਾਤਾ ਪ੍ਰਬੰਧ, ਨਿਆਂ-ਪ੍ਰਬੰਧ, ਵਿਆਹ-ਸੰਸਥਾ, ਪਰਿਵਾਰ-ਸੰਸਥਾ ਅਤੇ ਨੈਤਿਕ ਮੁੱਲ-ਵਿਧਾਨ ਮਰਦ ਦੀ ਸਰਦਾਰੀ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਰੱਖਦੇ ਹਨ। ਇਹਨਾ ਸਰੰਚਨਾਵਾਂ ਦੇ ਜ਼ਰੀਏ ਮਰਦ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਇਕ ਤਰ੍ਹਾਂ ਬੰਦੀ ਬਣਾ ਕੇ ਰੱਖਦਾ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਖ਼ੁਦ ਆਪਣੇ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਲਈ ਆਪ ਵੀ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰ ਬਣੀ ਹੈ। ਮੰਡੀ ਦਾ ਸੁਭਾਅ ਦਾ ਵੇਚ-ਵਟਕ ਦਾ ਹੈ, ਇੱਥੇ ਨਾਰੀ ਨੇ ਆਪਣੀ ਦੇਹ ਨੂੰ ਵਸਤ ਬਣਾ ਕੇ ਵੇਚਣ ਦੀ ਹਾਮੀ ਖ਼ੁਦ ਭਰੀ ਹੈ। ਸਮਾਜਕ ਸਰੰਚਨਾਵਾਂ ਨੇ ਕੁਝ ਖ਼ਾਸ ਮਾਪਦੰਡਾਂ ਰਾਹੀਂ ਨਾਰੀ ਦੇਹ ਦੇ ਪ੍ਰਦਰਸ਼ਨ ਨੂੰ ਸਨਮਾਨਜਨਕ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ। ਫ਼ਰਕ ਸਿਰਫ਼ ਏਨਾ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਹੁਣ ਦੇਹ-ਵਪਾਰ ਨਹੀਂ ਕਰਦੀ ਸਗੋਂ ਦੇਹ ਦਾ ਪ੍ਰਦਰਸ਼ਨ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਮੰਡੀ ਦੀ ਚਕਾਚੌਂਧ ਨੇ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਇਹਨਾਂ ਭਰਮਾ ਲਿਆ ਹੈ ਕਿ ਉਹ ਦੇਹ ਨੁਮਾਇਸ਼ ਲਈ ਕਿਸੇ ਵੀ ਹੱਦ ਤੱਕ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਮੰਡੀ ਨੇ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਵਿਕਣਯੋਗ ਅਤੇ ਦਿਖਣਯੋਗ ਵਸਤ ਬਣਾ ਕੇ ਰੱਖ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਤ੍ਰਾਸਦੀ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਮੰਡੀ ਦੀ ਚਕਾਚੌਂਧ ਵਿਚ ਗੁਆਚੀ ਨਾਰੀ ਆਪਣੇ ਅੰਗ-ਪ੍ਰਦਰਸ਼ਨ ਨੂੰ ਪ੍ਰਸਿੱਧੀ ਸਮਝ ਰਹੀ ਹੈ। ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਰੰਚਨਾਵਾਂ ਨੇ ਨਾਰੀ ਤੋਂ ਘਰ ਦੀ ਮਰਿਆਦਾ ਭੰਗ ਕਰਵਾ ਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਮੰਡੀ ਦੀ ਵਸਤ ਬਣਾ ਦਿੱਤਾ ਹੈ:-

> ਨਾਰੀ ਦੇਹ ਹੁਣ ਕੇਵਲ ਪਿੱਤਰਕੀ ਤੇ ਪ੍ਰਤੀਕਾਤਮਕ ਲੋੜਾਂ ਦਾ ਸਾਹਮਣਾ ਨਹੀਂ ਕਰ ਰਹੀ। ਅੱਜ ਨਾਰੀ ਦੇਹ ਨੂੰ ਅਨੇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਦੀਆਂ ਤਕਨਾਲੈਜੀਆਂ, ਜੀਵ ਵਿਗਿਆਨ, ਸਾਈਬਰਨੈਟਿਕ ਜੋੜ ਅਤੇ ਪੂੰਜੀਵਾਦ ਨਾਲ ਟਾਕਰਾ ਕਰਨ ਲਈ ਧੱਕ ਦਿੱਤਾ ਗਿਆ ਹੈ।[2]

ਹਰ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਨਿੱਜੀ ਜਾਇਦਾਦ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਪੈਦਾ ਹੋਣ ਤੋਂ ਬਾਦ ਨਾਰੀ ਦੀ ਸਮਾਜਕ ਸਥਿਤੀ ਨਿਘਾਰ ਵੱਲ ਗਈ ਅਤੇ ਉਸਦਾ ਬਹੁਪੱਖੀ ਤੇ ਬਹੁਪਾਸਾਰੀ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਸ਼ੁਰੂ ਹੋ ਗਿਆ। ਪਿੱਤਰ ਸਤਾਤਮਕ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਮੁੱਲ ਵਿਧਾਨ ਨੇ ਮਰਦ ਨੂੰ ਸਾਧਨ ਸੰਪੰਨ ਬਣਾਇਆ ਅਤੇ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਵੀ ਸਾਧਨ-ਵਿਹੂਣੀ। ਸਮਾਜਕ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਦੀ ਚਾਲਕ ਸ਼ਕਤੀ ਮਰਦਾਵੀਂ ਸਰਦਾਰੀ ਨੇ ਆਪਣੀਆਂ ਸਾਰੀਆਂ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਰਾਹੀਂ ਦੂਜੇ ਦਰਜੇ ਦੀ ਨਾਗਰਿਕ ਤੇ ਗ਼ੁਲਾਮ ਹੀ ਬਣਾਇਆ ਹੈ।

ਪਿੱਤਰਕੀ ਮੁੱਲ ਵਿਧਾਨ ਵਿਆਹ ਸੰਸਥਾ ਨੂੰ ਮਰਦਾਵੀਂ ਵੰਸ਼ ਨੂੰ ਅੱਗੇ ਤੋਰਨ ਦਾ ਮਾਤਰ ਸਾਧਨ ਸਮਝਦੀਆਂ ਹਨ। ਵੰਸ਼ ਤੇ ਵਿਰਾਸਤ ਮਰਦ ਦੇ ਨਾਂ ਚਲਦੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿਚੋਂ ਨਾਰੀ ਮਨਫ਼ੀ ਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਸਰੰਚਨਾਵਾਂ ਮਰਦ ਅਧਾਰਤ ਹੋਣ ਕਾਰਨ ਉਹ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਵਗਾਰੀ ਕਾਮਾ ਬਣਾਈ ਰੱਖਦੀਆਂ ਹਨ, ਜਿਸ ਨਾਲ ਨਾਰੀ ਦੀ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਦਾਸ ਭਾਵਨਾ ਤੇ ਲਾਚਾਰੀ ਵਾਲੀ ਬਣੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਵਿਚ ਪਿੱਤਰਕੀ ਸੱਤਾ ਪ੍ਰਬੰਧ, ਉਸ ਦੀ ਵਿਚਾਰਧਾਰਾ ਦੀਆਂ ਸੰਵਾਹਕ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਅਤੇ ਇਸਦੇ ਨੈਤਿਕ ਮੁੱਲ ਵਿਧਾਨ ਦੀ ਯਥਾਰਥਕ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਹੋਈ ਹੈ। ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਨਾਰੀ ਦੇ ਸ਼ੋਸ਼ਣੀ ਤੇ ਦੂਜੈਲੇ ਦਰਜੇ ਦੀ ਹਾਸ਼ੀਆਗਤ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਤਰ੍ਹਾਂ ਕਾਵਿ ਚਿਤਰਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਇਹ ਮੰਨਦਾ ਹੈ ਕਿ ਨਾਰੀ ਭਾਵੇਂ ਕਿਸੇ ਵੀ ਵਰਗ ਨਾਲ ਸੰਬੰਧਤ ਹੋਵੇ, ਉਸਦੀ ਸ਼ੋਸ਼ਣੀ, ਦਮਿਤ ਤੇ ਹਾਸ਼ੀਆਕ੍ਰਿਤ ਸਥਿਤੀ ਬਰਕਾਰਰ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ। ਸਮੁੱਚੇ ਪੰਜਾਬੀ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਨੇ ਨਾਰੀ ਦੀ ਹਾਸ਼ੀਆਕ੍ਰਿਤ ਤ੍ਰਾਸਦਿਕ ਸਥਿਤੀ ਦਾ ਯਥਾਰਥਕ ਤੇ ਸਟੀਕ ਕਾਵਿ ਪ੍ਰਵਚਨ ਉਸਾਰਿਆ ਹੈ।

ਸਮਕਾਲੀ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਚੇਤੰਨ ਹੋਈ ਹੈ ਅਤੇ ਉਹ ਆਪਣੀ ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚੋਂ ਬਾਹਰ ਆਉਣ ਲਈ ਸੰਘਰਸ਼ ਕਰ ਰਹੀ ਹੈ। ਵਿਸ਼ਵ ਭਰ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਅੰਦੋਲਨਾਂ ਰਾਹੀਂ ਇਹ ਜਾਗਰੂਕਤਾ ਪੈਦਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਹੈ। ਤ੍ਰਾਸਦੀ

ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਨਾਰੀ ਅਜੇ ਤੱਕ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਮੁਕਤ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕੀ। ਉਸਨੂੰ ਮਰਦ ਦੀ ਸਰਦਾਰੀ ਸਵੀਕਾਰਨ ਲਈ ਮਜਬੂਰ ਹੋਣਾ ਹੀ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਵਿਚ ਉੱਚ ਵਰਗ ਦੀ ਨਾਰੀ ਦਾ ਜ਼ਿਆਦਾ ਜ਼ਿਕਰ ਨਹੀਂ ਹੋਇਆ ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਸਮੁੱਚੀ ਨਾਰੀ ਜਾਤੀ ਦੀ ਦਮਿਤ ਸਥਿਤੀ ਦੀ ਪੇਸ਼ਕਾਰੀ ਹੋਈ ਮਿਲਦੀ ਹੈ:-

ਚਿੜੀਆਂ ਦੇ ਚੰਬੇ ਨੂੰ ਭੋਰਾ ਖ਼ਬਰ ਨਾ ਹੋਵੇਗੀ
ਅਚਾਨਕ ਕਿਤਿਉਂ ਲੋਹੇ ਦੀਆਂ ਚੁੰਝਾਂ ਦਾ ਜਾਲ
ਉਸ ਜੋਗੇ ਆਸਮਾਨ ਉੱਤੇ ਵਿਛ ਜਾਵੇਗਾ
ਅਤੇ ਲੰਮੀ ਉਡਾਰੀ ਦਾ ਉਹਦਾ ਸੁਫ਼ਨਾ
ਉਹਦੇ ਹਰਨੇਟਿਆਂ ਨੈਣਾਂ ਤੋਂ ਭੈਅ ਖਾਵੇਗਾ।[3]

ਇਹ ਸਥਿਤੀ ਸਮੁੱਚੀ ਨਾਰੀ ਜਾਤੀ ਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਇਸ ਸਥਿਤੀ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਣਾ ਚਾਹੁੰਦੀ ਹੈ। ਮੁਕਤੀ ਲਈ ਉਸਨੂੰ ਖ਼ੁਦ ਸੰਘਰਸ਼ ਦੇ ਮੈਦਾਨ ਵਿਚ ਆਉਣਾ ਪਵੇਗਾ, ਵਿਸ਼ਵ ਵਿਚ ਚੱਲੇ ਨਾਰੀ ਅੰਦੋਲਨਾਂ ਨੇ ਮਰਦ ਕੇਂਦਰ ਸੱਤਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਨੂੰ ਕੁਝ ਹੱਦ ਤੱਕ ਕਮਜ਼ੋਰ ਜ਼ਰੂਰ ਕੀਤਾ ਹੈ ਪਰ ਇਹ ਕਾਫ਼ੀ ਨਹੀਂ।

ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਨਾਰੀ ਦੀ ਇਸ ਜਾਗਰਤ ਅਵਸਥਾ ਬਾਰੇ ਆਪਣੀ ਕਾਵਿਕ ਪ੍ਰਤੀਕਿਰਿਆ ਵਿਅਕਤ ਕਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਸਦੀਆਂ ਤੋਂ ਕਠੋਰ ਵਰਜਨਾਵਾਂ ਅਤੇ ਮਰਿਆਦਾਵਾਂ ਰਾਹੀਂ ਹੋ ਰਹੀ ਨਾਰੀ ਦੀ ਹਾਸ਼ੀਆਕ੍ਰਿਤ ਸਥਿਤੀ ਦੀ ਲਗਾਤਾਰਤਾ ਦਾ ਬੋਧ ਵੀ ਕਰਵਾਉਂਦਾ ਹੈ

> ਪਿਛਲੇ ਅਰਸੇ ਵਿਚ ਉਪਰਲੇ ਤਬਕੇ (ਕੁਲੀਨ) ਤੇ ਮੱਧ ਵਰਗ ਦੀ ਔਰਤ ਆਪਣੇ ਨਾਰੀਤਵ ਦੀ ਪਛਾਣ ਪ੍ਰਤੀ ਵਧੇਰੇ ਸੁਚੇਤ ਹੋਈ ਹੈ ਪਰ ਉਹ ਅਜੇ ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਚਿੰਤਨ ਤੇ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਮੁੱਢਲੇ ਪੜਾਅ 'ਤੇ ਹੀ ਵਿਚਰਦੀ ਹੈ। ਪਿੱਤਰੀ ਸੱਤਾ ਕੇਂਦਰਿਤ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਦੇ ਦਮਨਕਾਰੀ ਵਿਹਾਰ, ਸਨਾਤਨੀ/ਸਥਾਪਨਾਵਾਦੀ ਵਿਚਾਰਾਂ ਦੀ ਜਕੜ, ਸਿੱਖਿਆ ਤੇ ਆਰਥਕ ਵਸੀਲਿਆਂ ਦੀ ਘਾਟ ਅਤੇ ਸਹੀ ਵਿਗਿਆਨਕ ਚੇਤਨਾ ਤੇ ਰਾਜਸੀ ਸੂਝ ਵਾਲੇ ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਸੰਗਠਨਾਂ ਦੀ ਕਮੀ ਕਰਕੇ ਭਾਰਤੀ ਨਾਰੀ ਸਮਾਜ ਦਾ ਵੱਡਾ ਹਿੱਸਾ ਅਜੇ ਹਨੇਰਾ ਢੋਅ ਰਿਹਾ ਹੈ।[4]

ਪਿੱਤਰਕੀ ਮੁੱਲ ਵਿਧਾਨ 'ਤੇ ਅਧਾਰਤ ਸੰਰਚਨਾਵਾਂ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਤੇ ਮਰਦ ਦੇ ਸੰਬੰਧ ਅਸੰਤੁਲਿਤ ਅਤੇ ਅਸਾਵੇਂ ਹੀ ਰਹੇ ਹਨ। ਪਿੱਤਰਕੀ ਮੁੱਲ ਵਿਧਾਨ ਦਾ ਪ੍ਰਵਚਨ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਸਮਾਜ ਵਿਚੋਂ ਖੀਣ ਕਰਕੇ ਦੂਜੇ ਦਰਜੇ ਦੀ ਨਾਗਰਕ ਬਣਾਉਂਦਾ ਹੈ। ਇਸ ਨਾਲ ਨਾਰੀ ਦੀ ਸ਼ਖ਼ਸੀਅਤ ਅਸੁੰਤਲਿਤ ਬਣੀ ਰਹਿੰਦੀ ਹੈ:-

> ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਨਿਰਸੰਦੇਹ ਹੋਰ ਜਮਾਤੀ ਪ੍ਰਬੰਧ ਵਾਂਗ ਮਰਦ ਪ੍ਰਧਾਨ ਨਿੱਜੀ ਜਾਇਦਾਦ ਦੀ ਵਿਰਾਸਤੀ ਵਿਵਸਥਾ ਦਾ ਅਨੁਸਾਰੀ ਹੈ, ਜਿਸ ਵਿਚ ਜਾਇਦਾਦ ਦਾ ਵਾਰਸ ਮਰਦ ਹੀ ਹੈ, ਔਰਤ ਨਹੀਂ।[5]

ਪੰਜਾਬੀ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਦੀ ਇਸ ਹੀਣੀ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਹੈਸੀਅਤ ਦਾ ਕਾਵਿ ਚਿਤਰਨ ਹੋਇਆ ਮਿਲਦਾ ਹੈ। ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਦਾ ਕੇਂਦਰੀ ਧੁਰਾ ਨਾਰੀ ਦਾ ਜੀਵਨ ਢੰਗ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਦਾ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਅਤੇ ਸੰਤਾਪ ਬਹੁਮੁਖੀ ਅਤੇ ਬਹੁ-ਪਾਸਾਰੀ ਹੈ। ਨਾਰੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਮਰਦ ਦੀ ਕਾਮੁਕ ਸੰਤੁਸ਼ਟੀ ਦਾ ਅਧਿਕਾਰਕ ਸਾਧਨ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਯੌਨਿਕ ਸੰਤਾਪ ਵੀ ਹੰਢਾਉਂਦੀ ਹੈ। ਕਿਰਤੀ ਵਰਗ ਦੀ ਨਾਰੀ ਦਾ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਬਹੁ-ਪਰਤੀ ਹੈ:-

ਜਾਣਦਾ-
ਉਹ ਡਰੀ ਹਿਰਨੀ ਜਿਹੀ ਬੜਾ ਕੁਝ ਕਰੇਗੀ
ਚੂਚਿਆਂ ਦਾ ਖੁੱਡਾ ਖੋਹਲਣ ਲੱਗਿਆਂ
ਕੰਬ ਜਾਇਆ ਕਰੇਗੀ ਇਹ ਸੋਚ
ਕਿਤੇ ਨਿਕਲਦਿਆਂ ਹੀ ਚੂਚੇ
ਬਾਂਗਾਂ ਦੇਣੀਆਂ ਨਾ ਸਿੱਖ ਜਾਣ
ਅਤੇ ਚੜ੍ਹ ਜਾਣ ਨਾ ਆਉਂਦੇ
ਤਿਉਹਾਰਾਂ ਦੀ ਨਜ਼ਰ।[6]

ਨਾਰੀ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੀ ਤ੍ਰਾਸਦਿਕ ਸਥਿਤੀ ਇਹ ਹੈ ਕਿ ਵਿਆਹ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਅਤੇ ਬਾਦ ਵਿਚ ਉਸਦੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਕੋਈ ਫ਼ਰਕ ਨਹੀਂ ਪੈਂਦਾ। ਦੋਵੇਂ ਹਾਲਤਾਂ ਵਿਚ ਹੀ ਉਸਨੇ ਗੈਰ-ਉਤਪਾਦਕੀ ਕਿਰਤ ਹੀ ਕਰਨੀ ਹੈ। ਮਰਦ ਦੁਆਰਾ ਸਿਰਜੇ ਮੁੱਲ ਵਿਧਾਨ ਵਿਚ ਰਹਿਣਾ ਉਸਦੀ ਮਜਬੂਰੀ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਪਿੱਤਰੀ ਸੱਤਾ ਨੇ ਇਹ ਮੁੱਲ ਵਿਧਾਨ ਮਰਦਾਵੀਂ ਸਰਦਾਰੀ ਨੂੰ ਨਾਰੀ 'ਤੇ ਕਾਇਮ ਰੱਖਣ ਲਈ ਹੀ ਸਿਰਜੇ ਹਨ।

ਹਰ ਯੁੱਗ ਵਿਚ ਨਾਰੀ ਆਪਦੀ ਹਾਸ਼ੀਆਕ੍ਰਿਤ ਸਥਤੀ ਤੋਂ ਅਜ਼ਾਦ ਹੋਣਾ ਲੋਚਦੀ ਰਹੀ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਦੀ ਪਹਿਲੀ ਕਵਿੱਤਰੀ ਪੀਰੋ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਸਮਕਾਲੀ ਨਾਰੀਵਾਦੀ ਅੰਦੋਲਨ ਤੱਕ ਇਸ ਪਿੱਤਰਕੀ ਸੱਤਾ ਦੀਆਂ ਮਜਬੂਤ ਦੀਵਾਰਾਂ ਤੋਂ ਅਜ਼ਾਦ ਹੋਣ ਦਾ ਯਤਨ ਕਰਦੀ ਰਹੀ ਹੈ ਪਰ ਇਤਿਹਾਸਕ ਚੇਤਨਾ ਦੀ ਘਾਟ ਤੇ ਪਿੱਤਰਕੀ ਸੱਤਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਦੀਆਂ ਚਾਲਾਂ ਬਾਰੇ ਨਾਰੀ ਸਮੂਹਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਜਾਗਰੂਕ ਨਹੀਂ ਹੋ ਸਕੀ।

ਪਿੱਤਰਕੀ ਸੱਤਾ ਪ੍ਰਬੰਧ ਅਤੇ ਉਪਭੋਗਤਾਵਾਦੀ ਸਭਿਆਚਾਰ ਵਿਚ ਸਾਧਨ ਵਿਹੂਣੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਦਲਿਤ ਨਾਰੀ ਤ੍ਰਾਸਦਿਕ ਜੀਵਨ ਸਥਿਤੀਆਂ ਭੋਗਦੀ ਖ਼ਾਨਾਬਦੋਸ਼ਾਂ ਵਰਗਾ ਜੀਵਨ ਜਿਉਂ ਰਹੀ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਨਾਰੀ ਦੀ ਇਸ ਖ਼ਾਨਾਬਦੋਸ਼ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਸਜੀਵ ਮੋਟਿਫ਼ਾਂ ਰਾਹੀਂ ਚਿੱਤਰਦਾ ਹੈ, ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਅਨੁਸਾਰ ਨਾਰੀ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਦਾ ਮੂਲ ਕਾਰਨ ਸਮਾਜਕ ਸਭਿਆਚਾਰਕ ਪੱਧਰ 'ਤੇ ਤਾਕਤ ਦਾ ਕੇਂਦਰੀਕਰਨ ਮਰਦ ਦੇ ਹੱਕ ਵਿਚ ਹੋਣਾ ਹੀ ਹੈ।

ਮਰਦ ਸੱਤਾ ਅਧਾਰਤ ਸਮਾਜਕ ਢਾਂਚੇ ਵਿਚ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਦਾ ਸ਼ਿਕਾਰ ਹੋਈ ਨਾਰੀ ਲਾਚਾਰ, ਦਮਿਤ ਤੇ ਬੇਵੱਸ ਹੈ। ਉਸ ਦੀਆਂ ਤੁੱਛ ਰੀਝਾਂ ਵੀ ਪੂਰੀਆਂ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀਆਂ। ਜੇਕਰ ਉਹ ਚਾਅ ਨਾਲ ਵੰਗਾਂ ਚੜਾਉਂਦੀ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸਦੀ ਹਾਸ਼ੀਆਕ੍ਰਿਤ ਅਤੇ ਦਮਿਤ ਸਥਿਤੀ ਉਸਨੂੰ ਵੰਗਾਂ ਛਣਕਾਉਣ ਤੋਂ ਵਰਜਦੀ ਹੈ। ਉਹ ਵੰਗਾਂ ਚੜ੍ਹਾ ਕੇ ਬੈਠਣਾ ਨਹੀਂ ਚਾਹੁੰਦੀ ਸਗੋਂ ਕਿਰਤ ਕਰਨਾ ਚਾਹੁੰਦੀ ਹੈ ਕਿਉਂਕਿ ਜੀਵਨ ਨਿਬਾਹ ਲਈ ਕਿਰਤ ਕਰਨਾ ਉਸਦੀ ਮਜ਼ਬੂਰੀ ਹੈ।

ਜਿਹੜੇ ਪਿਡ ਲਾਵਾਂ ਦੀਆਂ
ਅੱਖੀਆਂ 'ਚ ਅੱਥਰੂ
ਤੇ ਸਿਹਰਿਆਂ ਦੇ ਵਿਚ ਅੱਗ ਨੀ।
ਜੰਮਦੀਆਂ ਕੁੜੀਆਂ ਨੂੰ ਰੋਗ ਜਿੱਥੇ ਦਾਜ ਦਾ
ਜਾਂਦਾ ਅਠਰਾਹੇ ਵਾਂਗੂੰ ਲੱਗ ਨੀ।
ਜਿਹੜੇ ਪਿੰਡ ਸੋਨੇ ਦਿਆਂ ਬੁੰਦਿਆਂ ਦੀ ਥਾਵੇਂ
ਕੰਨੀਂ ਭੁੱਖਿਆਂ ਦਾ ਹੌਕਾ ਹੀ ਪਵੇ।[7]

ਪੰਜਾਬੀ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਕਿਰਤੀ ਨਾਰੀ ਦੀ ਸ਼ੋਸ਼ਣੀ ਤੇ ਦਮਿਤ ਸਥਿਤੀ ਲਈ ਜ਼ਿੰਮੇਵਾਰ ਕਾਰਨਾਂ ਦੀ ਨਿਸ਼ਾਨਦੇਹੀ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਕਿਰਤੀ ਨਾਰੀ ਦੇ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਦੀਆਂ ਕੋਈ ਇਕ ਦੋ ਪਰਤਾਂ ਨਹੀਂ ਸਗੋਂ ਇਹ ਬਹੁ-ਪਰਤੀ ਹੈ। ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਉਸਦੀ ਜੀਵਨ ਸਥਿਤੀ ਬਾਰੇ ਜਾਗਰੂਕ ਕਰਕੇ ਉਸ ਨੂੰ ਮੁਕਤੀ ਦੀ ਚੇਤਨਾ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਚੇਤੰਨ ਹੋਈ ਨਾਰੀ ਹੀ ਆਪਣੀ ਜੰਗ ਆਪ ਲੜ ਸਕਦੀ ਹੈ। ਜੇਕਰ ਖ਼ੁਦ ਨਾਰੀ ਆਪਣੀ ਦਮਿਤ ਸਥਿਤੀ ਪ੍ਰਤੀ ਚੇਤੰਨ ਨਹੀਂ ਹੁੰਦੀ ਤਾਂ ਉਸਦੀ ਸਥਿਤੀ ਵਿਚ ਕੋਈ ਬਦਲਾਅ ਨਹੀਂ ਵਾਪਰੇਗਾ। ਪਿੱਤਰਕੀ ਮਰਿਆਦਾਵਾਂ ਨੇ ਵਿਆਹ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਤੇ ਵਿਆਹ ਤੋਂ ਬਾਦ ਨਾਰੀ ਦੀ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਵਿਚ ਯਥਾ-ਪੂਰਵ ਸਥਿਤੀ ਬਣਾਈ ਰੱਖਣ ਲਈ ਕਈ ਪ੍ਰਾਵਧਾਨ ਕੀਤੇ ਹਨ:-

ਚਿੜੀਆਂ ਦਾ ਚੰਬਾ ਉੱਡ ਕੇ ਕਿਤੇ ਨਹੀਂ ਜਾਵੇਗਾ।
ਐਥੇ ਹੀ ਕਿਤੇ ਉਰੇ ਪਰੇ ਬੰਨਿਆਂ ਤੇ ਘਾਹ ਖੇਤੇਗਾ
ਰੁੱਖਾਂ ਮਿੱਸੀਆਂ ਰੋਟੀਆਂ ਢੋਇਆ ਕਰੇਗਾ
ਕਿ ਮੈਲੀਆਂ ਚੁੰਨੀਆਂ ਭਿਉਂ ਕੇ
ਲੋਆਂ ਨਾਲ ਲੂਸੇ ਚਿਹਰਿਆਂ 'ਤੇ ਫੇਰੇਗਾ।[8]

ਪਿੱਤਰੀ ਸੱਤਾ ਵੱਲੋਂ ਮਰਦ ਕੇਂਦਰਤ ਉਸਾਰੀਆਂ ਸੰਸਥਾਵਾਂ ਵਿਚ ਜਨਮ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਮੌਤ ਤੱਕ ਨਾਰੀ ਨੂੰ ਮਰਦ ਦੀ ਅਧੀਨਗੀ ਵਿਚ ਰਹਿਣਾ ਪੈਂਦਾ ਹੈ। ਇਹਨਾਂ ਪ੍ਰਬੰਧਾਂ ਨੇ ਨਾਰੀ ਦੀ ਸਥਿਤੀ ਨੂੰ ਯਥਾ-ਪੂਰਵ ਰੱਖਣ ਲਈ ਉਸਨੂੰ ਸਾਧਨ-ਵਿਹੂਣੀ ਕਰਕੇ ਮਰਦ 'ਤੇ ਨਿਰਭਰ ਕਰ ਦਿੱਤਾ ਹੈ। ਸਮਕਾਲ ਵਿਚ ਕਿਰਤੀ ਨਾਰੀ ਜਾਗਰਿਤ ਹੋ ਰਹੀ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਅਜੇ ਇਹ ਜਾਗਰਿਤ ਅਵਸਥਾ ਆਪਣੇ ਮੁੱਢਲੇ ਦੌਰ ਵਿਚ ਹੀ ਹੈ। ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਕਿਰਤੀ ਨਾਰੀ ਦੇ ਜੀਵਨ ਦੇ ਕਰੂਰ ਯਥਾਰਥ ਨੂੰ ਨਵੇਂ ਪ੍ਰਤੀਕਾਂ, ਬਿੰਬਾਂ ਰਾਹੀਂ ਚਿੱਤਰਦਾ ਹੈ:-

ਉਦੋ ਅਸੀਂ ਬਹੁਤ ਛੋਟੇ ਸਾਂ
ਜਦ ਸਾਨੂੰ ਗਿੱਧੇ ਦੇ ਝੁਰਮਟ 'ਚੋਂ
ਤੀਵੀਆਂ ਨੇ ਮਾਰ ਭਜਾਇਆ ਸੀ।
ਓਦੋਂ ਨ੍ਹਾਮੇ ਦੀ ਔਰਤ ਸਭ ਕੱਪੜੇ ਉਤਾਰ ਕੇ ਨੱਚੀ ਸੀ
ਉਹ ਮੂੰਹ 'ਚ ਮੰਜਾ ਉਠਾ ਕੇ
ਜਾਂ ਪਾਣੀ ਦਾ ਭਰਿਆ ਘੜਾ ਲੈ ਕੇ ਨੱਚ ਲੈਂਦੀ ਸੀ।[9]

ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਨੇ ਕਿਰਤੀ ਨਾਰੀ ਵੱਲੋਂ ਨੱਚੇ ਇਸ ਨਾਚ ਨੂੰ ਮਿੱਥ-ਭੰਜਕ ਨਾਚ ਕਿਹਾ ਹੈ। ਕਿਰਤੀ ਨਾਰੀ ਕੋਲ ਰੰਗਦਾਰ ਚਮਕੀਲੀਆਂ ਮਹਿੰਗੀਆਂ ਪੁਸ਼ਾਕਾਂ ਨਹੀਂ। ਆਪਣੇ ਕੱਪੜਿਆਂ ਨੂੰ ਇਕ-ਇਕ ਕਰਕੇ ਲਾਹੁਣਾ ਇਸ ਗੱਲ ਦਾ ਪ੍ਰਤੀਕ ਹੈ ਕਿ ਜੇ ਉਸ ਨੇ ਅਪਣੀ ਇਸ ਸ਼ੋਸ਼ਣੀ ਤੇ ਹਾਸ਼ੀਆਕ੍ਰਿਤ ਸਥਿਤੀ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਹੋਣਾ ਹੈ ਤਾਂ ਉਸਨੂੰ ਲੋਕ-ਲੱਜਿਆ, ਥੋਪੀਆਂ ਮਰਿਆਦਾਵਾਂ, ਕਠੋਰ ਬੰਦਿਸ਼ਾਂ ਤੇ ਸਮਾਜਕ ਵਰਜਨਾਵਾਂ ਨੂੰ ਇਕ-ਇਕ ਕਰਕੇ ਲਾਹ ਕੇ ਸੁੱਟਣਾ ਪਵੇਗਾ। ਆਜ਼ਾਦੀ ਦਾ ਤਾਂਡਵ ਨੱਚਣਾ ਪਵੇਗਾ। ਮੰਜੀ ਮੂੰਹ ਵਿਚ ਉਠਾ ਕੇ ਨੱਚਣ ਦਾ ਪ੍ਰਤੀਕ ਪਿਤਰਕੀ ਮੁੱਲ ਵਿਧਾਨ ਦਾ ਤਖ਼ਤ ਪਲਟਾਉਣ ਵੱਲ ਇਸ਼ਾਰਾ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਪਾਣੀ ਦਾ ਭਰਿਆ ਘੜਾ ਨਵੀਂ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਦਾ ਸ਼ੁੱਭ-ਸੰਕੇਤ ਹੈ ਕਿ ਕਠੋਰ ਵਰਜਨਾਵਾਂ ਉਲੰਘ ਕੇ ਕੀਤੇ ਸੰਘਰਸ਼ ਬਾਦ ਉਹਨਾਂ ਦੀ ਝੋਲੀ ਭਰੀ ਰਹੇਗੀ। ਇਉਂ ਜੁਝਾਰ ਕਾਵਿ ਕਿਰਤੀ ਨਾਰੀ ਦੀ ਹਾਸ਼ੀਆਕ੍ਰਿਤ, ਦਮਿਤ ਤੇ ਸ਼ੋਸ਼ਣਮਈ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਨੂੰ ਆਪਣਾ ਕਾਵਿ-ਪੈਟਰਨ ਬਣਾ ਕੇ ਉਸਨੂੰ ਮੁਕਤੀ ਦਾ ਸੰਕਲਪ ਦਿੰਦਾ ਹੈ।

ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ

1. ਡਾ. ਕਮਲਪ੍ਰੀਤ ਕੌਰ ਸਿੱਧੂ, ਆਲੋਚਨਾ, ਅੰਕ- 230-231, ਪੰਨਾ-74
2. ਡਾ. ਦਪਿੰਦਰਜੀਤ ਰੰਧਾਵਾ, ਕਾਵਿ-ਸ਼ਾਸਤਰ, ਅਪ੍ਰੈਲ-ਜੂਨ, 2018, ਅੰਕ-11, ਪੰਨਾ-70
3. ਪਾਸ਼, ਸੰਪੂਰਨ ਪਾਸ਼ ਕਾਵਿ, ਪੰਨਾ-143
4. ਸੁਖਦੇਵ ਸਿੰਘ, ਕਾਵਿ ਸਰੋਕਾਰ, ਪੰਨਾ-147
5. ਡਾ. ਜਸਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ, ਪੰਜਾਬੀ ਸਭਿਆਚਾਰ: ਮੂਲ ਪਛਾਣ ਚਿੰਨ੍ਹ, ਪੰਨਾ- 158-159
6. ਪਾਸ਼, ਸੰਪੂਰਨ ਪਾਸ਼ ਕਾਵਿ, ਪੰਨਾ-171
7. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ-177
8. ਪਾਸ਼, ਸੰਪੂਰਨ ਪਾਸ਼ ਕਾਵਿ, ਪੰਨਾ-143
9. ਉਹੀ, ਪੰਨਾ-53

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 168-172
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रवासी महिलाओं का साहित्य

जितेन्द्र
शोधार्थी,
दिल्ली विश्वविधालय

शोध सार:- भारतीय लोग सम्पूर्ण विश्व में अपनी अमिट पहचान बनाए हुए हैं। आज भूमंडलीकरण के दौर में भारतीय मूल के निवासी विदेशों में लेखन कार्य करके प्रवासी साहित्य का निर्माण कर रहे हैं ओर हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श ओर आदिवासी विमर्श के समकक्ष प्रवासी साहित्य को विशेष स्थान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें है। प्रवासी साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है की, जहां एक तरफ विदेश में भाषा की चुनौती है वहीं साहित्य का निर्माण करना प्रवासियों को विशिष्ट बनाता है। जिनमें महिला प्रवासी साहित्यकारों का स्थान प्रमुख है। हिन्दी के प्रवासी साहित्य को आगे लाने में मॉरीशस में बसे प्रवासी भारतियों की रचनाओं को प्रमुख माना गया है। इसके बाद यह ब्रिटेन, अमेरिका, नीदरलैंड, सूरीनाम, कनाडा इत्यादि में आगे बढ़ा ओर प्रवासी महिलाओं के साहित्य को एक विशेष पहचान दिलाई, जिसमें भारतीय जीवन शैली, जीवन मूल्य, दो संस्कृतियों की टकराहट, पुनः अपने देश वापस आने की तड़प ओर ललक, पाश्चात्य ओर भारतीयता के मध्य झूलते प्रवासियों की मानसिकता आदि का गहनता से वर्णन किया है। विदेश में रहने वाले हिन्दी-साहित्यकार, विशेषत: लेखिकाएं, जहां एक ओर इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं कि उनकी रचनों में विभिन्न देशों की राजनैतिक, सामाजिक ऑर सांस्कृतिक परिस्थितियाँ हिन्दी के इतिहास और भूगोल का हिन्दी के पाठकों तक विस्तार होता है, विभिन्न शैलियों का आदान प्रदान होता है। प्रवासी साहित्य को अपनी अलग पहचान दिलाता है प्रवासी हिन्दी साहित्य एक भिन्न संवेदना एंव सरोकार का आनंद दिलाता है जो इन साहित्यकारों की रचनाओं में संवेदना पूर्ण जीवन दृष्टि में इंगत है। यह आलेख प्रवासी लेखन के क्षेत्र में वर्णित पीड़ा, सत्य, संस्कृति, परिवर्तन के चित्रण का एक सार्थक प्रयास करता है। हिन्दी साहित्य के इस विशाल समुंदर में प्रवासी हिन्दी साहित्य नई अभिव्यक्ति और मौलिकता के साथ नई जमीन को तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

बीज शब्द:- प्रवासी साहित्य, दो संस्कृतियों की टकराहट, स्त्री, संवेदना, हिन्दी साहित्य।

प्रस्तवाना: प्रवास का इतिहास भले ही पुरातन हो लेकिन हिन्दी प्रवासी साहित्य की प्रक्रिया का प्रारम्भ मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'यह मेरी जन्मभूमि है' से माना जा सकता है। प्रेमचंद की कुछ कहानी में मॉरीशस के गिरमिटया मजदूरों का

चित्रण भी मिलता है जिसमें सामाजिक विमर्श को भी उकेरा गया है। प्रवासी सैनिकों की छवि चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कालजयी कहानी उसने कहा था में भी देखने को मिलता है जहां भारतीय सैनिकों की एक टुकड़ी मित्र देशों की तरफ से जर्मनी सेनाओं के खिलाफ लड़ रही है। गोदान में धनिया और गोबर के बीच बातचीत में भी मारीच देश का वर्णन किया गया है, जो माँरीशस का अपभ्रंश माना गया है।

प्रवासी भारतीय लेखिकाएं स्त्री के जीवन को बहुत संघर्षशील मनाती है। उनके अनुसार, सदियों से चलीं आ रही पितृसत्तात्मक समाज की पुरुष प्रधान सोच को चुनौती देकर स्त्री जीवन के संघर्ष को महत्वपूर्ण बनाती है। स्त्रियों के प्रति हो रहे उत्पीड़न के खिलाफ स्त्री जाति की तीखी प्रतिक्रिया है। यदि वर्तमान सदी के स्त्रीवादी विचारों की बात करें तो साठ से सत्तर के दशक के बीच के स्त्रीवादी चिंतन से बहुत अलग देखने को मिलता है। पहले स्त्री की लड़ाई स्वतन्त्रता के लिए होती थी किन्तु आज स्त्री संघर्ष के लिए लड़ रही है जिसमें शोषण के विरुद्ध, असमानता व पुरुष-स्त्री समकक्षता इत्यादि।

प्रवासी महिला लेखन स्त्रीवादी चिंतन से ओत-प्रोत रहा है, यदि प्रवासी उपन्यासों को गहराई से देखें तो वहाँ नारी पात्र स्वयं के यथार्थ व अस्तित्व पर शोध करते नजर आते हैं। इसमें स्त्री समाज से बराबरी के अधिकारों की मांग करती नजर आती हैं। प्रवासी भारतीय लेखिकाओं में अर्चना पैन्यूली, उषा प्रियंवदा, दिव्य माथुर, उषा राजे सक्सेना, सुषम बेदी, शैलजा सक्सेना, जय वर्मा, नीना पॉल, आदि के नाम प्रमुख है। विदेशी भूमि पर इन सभी लेखिकाओं ने स्त्रियों के यथार्थ का मार्मिक विश्लेषण किया है किस प्रकार से प्रवास में रह कर स्त्री जीवन किन किन कठिनाइयों से जूझ रहा है इसका पूर्ण रूप से वर्णन सभी प्रवासी महिला साहित्यकारों ने अपने लेखन में किया है। इनमें उषा प्रियंवदा को महत्वपूर्ण श्रेय जाता है जिनके द्वारा प्रवासी भारतीय लेखिकाओं ने उपन्यासों की आधारशिला को रखा व उसे सुद्रढ़ किया।

पचपन खम्भे लाल दीवारें में समाज की संकीर्ण मानसिकता से दबी स्त्री का चित्रण पूर्ण रूप से देखने को मिलता है। इसमें भारतीय नारी की सामाजिक, आर्थिक समस्यओं को भी देखा जा सकता है। भारतीय नारी के अंतर्मन द्वन्द को पूर्ण से लेखिका ने व्यक्त किया है। एक स्त्री जीवन की उत्पीड़न और उसकी झटपटाहट को प्रवासी महिला लेखिका ने अपनी लेखिनी में महत्पूर्ण स्थान दिया है।

अर्चना पैन्यूली का **'परिवर्तन'** उपन्यास में नायिका के रूप में रतना के जीवन की गाथा प्रस्तुत करता है और स्त्री जीवन के संघर्ष को सामने लाने का प्रयास लेखिका के द्वारा किया जाता है। दिव्या माथुर का उपन्यास **'शाम भर बातें'** समूचे प्रवासी समाज पर केन्द्रित है। इसमें प्रवासी समाज की दिशा और दशा का समावेश किया गया है।

वहीँ **'सात फेरे अधूरे'** उपन्यास में विवाह का उपरांत प्रवास में स्त्री जीवन की कशमकश का वर्णन पूर्ण रूप से देखने को मिलता है। और **देश निकाले** उपन्यास में पुनर्विवाह के साथ बार-बार तलाक के कारण स्त्री के मन को लगने वाली चोट का चित्रण करने की कथा का ताना-बाना बुना गया है। सफ़र के साथी की पात्र नीरजा मानसिक टूटन से ग्रस्त होती दिखाई गई है।

इन सभी उपन्यासों में पाश्चात्य संस्कृति के साथ स्त्री जीवन को रेगिस्तानी कैक्टस की भांति कशमकश करती व्यक्त किया गया है। इसके अलावा पुरुष प्रधान समाज में अपने अस्तित्व को तलाशती स्त्री वेदना को भी व्यक्त किया गया है। प्रवासी लेखिकाओं ने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री को स्त्री के रूप में देखने के लिए विवश किया है। और सागर के दो किनारें, पुरुष व स्त्री को एक ही किनारे पर लाने का प्रयास किया है।

सुषम बेदी के लेखन में भारतीय संस्कृति और रीति रिवाजों की झलक पूर्ण रूप से देखने को मिलती है। इनकी कहानियों में स्त्री हर रस्मों और रिवाजों को निभाने में हर तरह से प्रयास करती है। 'अवसान' कहानी का नायक शंकर अपने मित्र का दाह संस्कार हिन्दू रीति रिवाजों से करना चाहता है किन्तु उसकी अमेरिकन पत्नी हेलन सारी औपचारिकता विदेशी संस्कृति के अनुसार चर्च में ही पूरा करना चाहती है। इस कहानी में सुषम बेदी ने दो देशों की संस्कृति की टकराहट का द्वन्द पूर्ण रूप से दिखाया है। जिसमें विदेशी मूल की स्त्री किसी भी तरह से भारतीय स्त्री से मेल नही खाती है और इसकी पीड़ा नायक सहता है। यह स्वाभाविक ही है कि भारतीय और पाश्चातय सभ्यता और संस्कृति व जीवन शैली में बहुत अंतर है। सुषम बेदी ने अपने लेखन में इस सभ्यता और संस्कृति के द्वन्द को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है और भारतीय संस्कृति की झटपटाहट विदेशी घरती पर मुख्य रूप से देखने को मिलती है जिसका वर्णन बेदी के लेखन में स्वाभाविक रूप से देखने को मिलता है।

उषा देवी विजय कोलाहट ने अपनी कहानियों से अमेरिकी संस्कृति को पूर्ण रूप से उकेरा है जिसमें स्त्री के द्वारा शराब पीना, सिगरेट पीना व नशा करना आदि महत्वपूर्ण समस्याओं को व्यक्त किया है उषा देवी की कहानियों में पाश्चात्य संस्कृति की तुलना यदि भारतीय संस्कृति के साथ की जाए तो एक बड़ी टकराहट पैदा होती दिखाई देती है। प्रवासी हिंदी कहानी पर विश्लेष्ण करने पर यह स्पष्ट होता है कि जितनी भी प्रवासी साहित्य में कहानियां लिखी गई सभी के केंद्र में मूलतः स्त्री जीवन ही है। अर्थात महिला प्रवासी साहित्यकारों ने स्त्री जीवन को केंद्र में रखकर जितनी बात स्त्री विमर्श पर की है वह भारतीय स्त्री विमर्श से भिन्न दिखाई पड़ती है। डॉ. प्रीत अरोड़ा प्रवासी कहानियों और भारतीय कहानियों में वर्णित स्त्री विमर्श में अंतर स्पष्ट करते हुए कहती है, अधिकतर कहानी स्त्री विमर्श के नाम पर दैहिक विमर्श भी करती नजर आती है।

उषा वर्मा की कहानी 'सलमा' में स्त्री अस्मिता को सामने लाकर खड़ा किया है और स्त्री अस्मिता की पहचान के लिए स्त्री को संघर्ष करते दिखाया गया है।जिसमें स्त्री पुरुष प्रधान समाज के सामने अस्मिता को लेकर द्वन्द करती दिखाई पड़ती हैं।

डॉ. सुनीता सिंह लिखती है की "प्रवासी के लिए यह आसान नही होता कि वह अपने अपनाये हुए देश की संस्कृति, सभ्यता और रीति रिवाजों से पूरी तरह जुड़ पाए। उनकी जड़ें अपनी मात्रभूमि, संस्कारों एवं भाषा से जुडी होती है और जहां तक स्त्री की बात आती है तो सभी धर्मों और देशों में नारी का रुतबा हमेशा दोयम दर्जे का रहा है जो प्रवासी रचनाकारों की कथाओं में झलकता है"

इन कहानियों का विश्लेष्ण करने से यह स्पष्ट होता है कि विदेशी संस्कृति के टकराव से भारतीय संस्कृति भी प्रभावित होती दिख रही है। प्रवासी महिला कहानिकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से बदलते हुए परिवेश, अकेलापन, स्त्री जीवन की त्रासदी, स्त्री अस्मिता, नारी शोषण, वेश्यावृति, मानवीय संवेदनहीनता, सामजिक धार्मिक सांस्कृतिक रीति रिवाजों की समस्याओं का चित्रण मुख्य रूप से व्यक्त किया है।

प्रवासी कहानियों को तीन द्रष्टिकोण के रूप में और मानसकिता की कहानी के रूप में भी देखा जा सकता है- प्रथम श्रेणी में ऐसी लेखिकाओं की कहानी है जिनका निवास तो अब विदेश में है पर भारतीय मानसकिता की जकड़न में वो अभी भी कैद है। वे नए आयामों और नए मूल्यों से परिचित होने के साथ साथ आकर्षण भी है किन्तु वे दुविधा में भी है इसे दुविधाग्रस्त पीढ़ी भी कहा जा सकता है।

दूसरी पीढ़ी में वो सब आती है जो वेशभूषा, रहन सहन और नए परिवेश में तो अपने को ढाल चुकी है लेकिन वे अभी भी पुराने संस्कारों के साथ नए संस्कारों के मध्य अभी भी झूल रहीं हैं अर्थात दोनों मूल्यों के ऊहापोह में आवाजाही करती रहती है इस अर्थ में मुक्त पीढ़ी कहलाती है।

तीसरी पीढ़ी में वे लेखिकाएं आती है जिनका जन्म विदेश में ही हुआ है और वहीँ के संस्कारों, रीति रिवाजों को अपनाकर शिक्षा को प्राप्त किया और पाश्चात्य जीवन शैली को अपना चुकी है। यह पीढ़ी स्वतंत्र जीवन जीने की कला और हौसंला रखती है। इसे मुक्त पीढ़ी का नाम दिया जाता है। प्रवासी कथा साहित्य आधुनिक बनती दुनिया का नया साहित्य है जो हिंदी साहित्य में नई जमीं को तैयार कर रहा है साथ ही उदारवाद का विस्तार भी कर रहा है। प्रवासी हिंदी कहानियों में यथार्थ का समवेश पूरी निष्ठा के साथ अभिव्यक्त किया जा रहा है।

प्रवासी महिला साहित्यकारों ने अपने देश की संस्कृति के साथ साथ प्रवास में उपजे दुःख दर्द की संवेदनाओं को भी अभिव्यक्त किया है। अधिकतर प्रवासी लेखिकाओं ने अपने व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों से जुड़े पात्रों का चयन किया है इसलिए इनके साहित्य में भोगा हुआ यथार्थ चित्रित हुआ दिखाई पड़ता है।

निष्कर्ष:- आज हिंदी साहित्य को महिला साहित्यकारों ने वैश्विक स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है जिसमें प्रवासी साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है। दो संस्कृतियों तथा समाज की परम्पराओं, सांस्कृतिक मूल्यों, समस्याओं, स्त्री पुरुष संबधों की टकराहट आदि को व्यक्त करने में प्रवासी महिला साहित्यकारों के लेखन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन प्रवासी महिला साहित्यकारों ने अपने समाज तथा समय की दुर्दशा को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त किया है भले ही विदेशों में भारतियों ने अपने आप को खुश बताने की चेष्टा की हो, किन्तु भीतर ही भीतर वो दुखी हैं। टूटते हुए कमजोर दिख रहें है। सभी कहानिकारों ने अपनी कहानियों में स्त्री मन की वेदना, आंतरिक पीड़ा, भारतीय विदेशी संस्कृति की टकराहट, अंतर्द्वंद, वेश्यावृति, नारी उत्पीड़न, समाज में पनपता परुषपन, परिवार के होते हुए भी अकेलापन, बदलते परिवेश, मानवीय संवेदनहीनता, युवाओं की बढती भोग विलास एवं काम वासनामय प्रवृति आदि विभिन्न समस्यओं को व्यक्त किया है। इन्होने अपनी कृत्तियों में पश्चिमी समाज की विसंगतियों के साथ साथ भारतीय संस्कृति की महत्वता को भी मुख्य रूप से व्यक्त करने की चेष्टा की है। स्त्री जीवन को आंतरिक रूप से समझने के लिए सभी प्रवासी महिला साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा है जिन्होंने प्रवासी साहित्य में स्त्री जीवन को पूर्ण रूप से व्यक्त किया है यही प्रवासी साहित्य की कहानियों की मूल संवेदना है। प्रवासी कहानियां एक भिन्न संवेदना और सरोकार का आस्वादन करता है। इसकी एक उपयोगिता यह भी है की यह शोध के लिए नई दिशाएँ भी खोलता है जिससे आने वाली पीढ़ी को विभिन्न देशों की संस्कृति को समझने का अवसर भी प्राप्त हो सकेगा। भारतीय नारी कैसे पश्चिमी समाज में एक माँ, पत्नी और बेटी की महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने के साथ-साथ प्रयेसी होने की भी अहम् भूमिका निभा रही है जिस प्रकार वह अन्य रूप में शोषित हो रही है उसी तरह इस रूप में भी उसका शोषण प्रवासी साहित्य में देखा गया है। अकेले प्रवास में रह रही भारतीय नारी को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अत: प्रवासी हिंदी साहित्य में महिला साहित्यकारों ने पूरे विश्व में इसको एक अलग पहचान दिलाने की बहुमूल्य कोशिश की है जिसकी वजह से पाठक वर्ग को विभिन्न संस्कृति को जानने का अवसर भी प्राप्त होने लगा है इस तरह प्रवासी साहित्यकारों की वजह से आज हिंदी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान भी बना रही है।

सहायक संदर्भ सूची:

01. सिंह, अमृता, हिंदी साहित्य को प्रवासी साहित्यकारों का योगदान, कश्मीर विश्वविधालय

02. माथुर, दिव्या, प्रवासी हिंदी महिला साहित्यकार और स्त्री चेतना, वॉल्यूम-1

03. डॉ. तृप्ति उकास, हिंदी प्रवासी साहित्य में समकालीन विमर्श, वॉल्यूम-1,सितम्बर,२०२३.
04. अपनी माटी, प्रवासी दुनिया- प्रवासी विमर्श और सुषम बेदी का उपन्यास, त्रिमासिक ई पत्रिका, मार्च,२०१७)
05. नम्रता नितिन काड्गे, प्रवासी हिंदी साहित्य में महिला कहानिकारों का योगदान, IJAAR,Vol.5 no.35
06. दिव्या माथुर- 'मेन इन इंडिया और अन्य कहानियां, संस्करण २०१३.
07. संपादक, प्रो. प्रदीप श्रीधर, प्रवासी हिंदी साहित्य अवधारणा एवं चिंतन,२०१८.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 173-179
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Youth and Political Participation in the Digital Era

Deepika Singh
Research scholar,
Department of Political Science University of Delhi

Abstract
The digital era has fundamentally transformed the ways in which young people engage with politics. With the proliferation of social media, smartphones, and internet-based communication, political participation is no longer limited to traditional modes such as voting, rallies, and party membership. Instead, youth are increasingly using online platforms to voice opinions, mobilize collective action, and influence political discourse. This paper explores the role of youth in political participation within the digital era, analyzing both opportunities and challenges. It highlights how digital tools facilitate civic engagement, increase access to political information, and enable transnational solidarity movements. At the same time, it underscores the risks of misinformation, digital divides, and superficial participation. The paper uses a conceptual and comparative approach, drawing from global and Indian experiences to examine how digital participation shapes democracy. By critically reflecting on the transformative potential of digital technologies, the study argues for a balanced understanding that values both online and offline engagement as integral to democratic participation.
Keywords: youth, political participation, digital era, social media, online activism, democracy

Introduction

Youth are often described as the backbone of a nation, representing both its present dynamism and future potential. In the context of democracy, the participation of young citizens is particularly significant, as they embody the ideals of innovation, change, and transformation. With the arrival of the digital age, political participation has undergone profound shifts. No longer restricted to casting votes during elections or joining political organizations, youth participation has expanded into new spaces such as social media campaigns, online petitions, digital protests, and hashtag activism. This has altered the meaning of citizenship and redefined the boundaries between state, society, and individuals.The importance of youth political engagement lies in its potential to strengthen democracy. Active youth involvement ensures accountability, responsiveness, and inclusivity in governance. It allows new perspectives, creative problem-solving, and energy to enter the political system. In societies like India, where nearly 65% of the population is below the age of 35, the political role of youth becomes even more decisive. Their choices, values, and digital behaviors directly influence electoral outcomes, policy debates, and the legitimacy of democratic institutions.The digital revolution has provided youth with unprecedented access to information and networks. Social media platforms like Twitter, Instagram, and YouTube have become central spaces for political debate, while WhatsApp and Telegram facilitate grassroots mobilization. From organizing large-scale protests such as the Arab Spring and the global climate strike movement to influencing national

elections, digital participation has shown its transformative power. At the same time, however, it has raised concerns about misinformation, online polarization, and surveillance.The study contributes to political science by bridging the gap between classical understandings of political participation and contemporary digital realities. It highlights that while the internet provides powerful tools for democratization, the quality and depth of participation must also be evaluated. This reflection is crucial because digital activism can sometimes be reduced to symbolic gestures rather than substantive democratic change.Thus, the paper argues that understanding youth political participation in the digital era requires a nuanced, interdisciplinary, and critical perspective—one that appreciates the empowering role of technology while remaining aware of its limitations.

Understanding Political Participation

Political participation broadly refers to the ways in which citizens influence political processes, decisions, and institutions. Traditionally, it has included activities such as voting, joining political parties, campaigning, contesting elections, or engaging in civil society organizations. Sidney Verba and Norman Nie (1972) defined political participation as "activities that have the intent or effect of influencing government action." This definition highlights that political participation is not limited to formal structures but also encompasses informal ways of expressing political preferences.In the digital era, the boundaries of political participation have expanded significantly. Alongside conventional forms, new modes such as online petitions, hashtag activism, virtual protests, crowdfunding for political causes, and digital campaigning have become central. This shift represents not only a change in methods but also a transformation in the meaning of citizenship and political voice.Youth is more than just a demographic category defined by age; it is also a social and political identity. The United Nations defines "youth" as individuals between 15 and 24 years, while many national policies extend the definition to 29 or even 35 years. In countries like India, where youth form the majority of the population, they represent a decisive political constituency.Youth are often associated with innovation, openness to change, and willingness to challenge authority. Historically, student movements and youth-led protests have been at the forefront of democratic transformations—from the anti-colonial struggles in Asia and Africa to the civil rights movement in the United States. In the digital era, this political energy has found new spaces of expression online, where youth can bypass traditional hierarchies and directly connect with wider audiences.The concept of "digital citizenship" provides a useful lens to analyze youth participation in the digital era. Digital citizenship refers to the ability to use digital tools responsibly to engage in society, politics, and culture. It combines technical skills (such as navigating social media and online platforms) with critical awareness (evaluating information, recognizing misinformation, and using technology ethically).For youth, digital citizenship is not just about being online but about constructing identities, participating in communities, and contributing to political debates. For instance, online campaigns such as #MeToo or #ClimateStrike were largely driven by young digital citizens who mobilized transnational solidarity through social media. In this sense, digital citizenship expands the arena of democracy beyond nation-states and into global networks.Theoretical studies often distinguish between "conventional" and "unconventional" participation. Conventional participation refers to activities like voting, party membership, or contacting representatives. Unconventional participation includes protests, demonstrations, or boycotts. In the digital era, both forms are increasingly mediated by technology: campaigns use social media to reach voters, while protests are organized through hashtags and online communities.Scholars like Lance Bennett (2008) argue that digital participation represents a shift from "dutiful citizenship," based on obligations to formal institutions, to "self-actualizing citizenship," based on personal expression and networked action. Youth are particularly inclined towards the latter, as they

often value flexibility, autonomy, and horizontal communication rather than rigid structures.Critical political theories also enrich our understanding of youth digital participation. From a Habermasian perspective, digital platforms can be seen as new public spheres where citizens deliberate and hold authorities accountable. However, critics warn that these spheres are fragmented, dominated by corporate interests, and vulnerable to manipulation. Similarly, postmodern perspectives highlight that online participation allows multiple identities and voices to emerge, challenging traditional hierarchies but also risking relativism and fragmentation.Thus, the theoretical framework shows that youth political participation in the digital era is not simply a matter of technological change—it reflects deeper transformations in citizenship, democracy, and power relations

Social Media and Political Mobilization

Social media platforms such as Facebook, Twitter (now X), Instagram, and YouTube have become central arenas of political engagement. For youth, these spaces provide immediacy, visibility, and connectivity. Unlike traditional media, which relies on editorial gatekeeping, social media allows young people to broadcast their views instantly and directly.Political mobilization through social media has two major dimensions: Information dissemination: Youth use digital platforms to access news, fact-check government claims, and share alternative viewpoints. Independent media collectives and citizen journalism initiatives led by young creators have challenged mainstream narratives.Mobilization for collective action: Hashtags such as #BlackLivesMatter and #FridaysForFuture have connected young people across continents, enabling global solidarity. In India, the #StudentsProtest campaigns and discussions around #FarmersProtest drew enormous attention through youth-led online activism.Social media has thus transformed politics from hierarchical communication into a networked dialogue, where young individuals are both consumers and producers of political content. Digital activism, sometimes called “clicktivism” or “hashtag activism,” involves political participation primarily through online activities: signing petitions, sharing content, creating memes, crowdfunding, or joining virtual communities. While critics dismiss it as superficial, digital activism often acts as the first step toward deeper political engagement.For example:The #MeToo movement, which exposed gender-based violence, was largely sustained by young digital users across the globe.During the Arab Spring, youth used Twitter and Facebook to organize protests against authoritarian regimes.In India, youth-led campaigns such as Save the Internet (2015) effectively mobilized online support to preserve net neutrality.Thus, online activism has expanded the scope of political participation by lowering entry barriers—anyone with internet access can participate, regardless of geographical location or organizational affiliation. Elections remain the cornerstone of representative democracy, and digital platforms have reshaped how young people engage with them. Political parties increasingly run campaigns on WhatsApp, Instagram, and YouTube to target youth voters. Data analytics and targeted advertisements, though controversial, have made youth an important electoral constituency.For young voters:Digital campaigns provide accessible information on party manifestos, candidates, and issues.Online registration and e-governance portals have made it easier to participate in formal processes.Youth influencers and digital celebrities also shape political discourse, guiding voter perceptions.In India, where first-time voters number in the tens of millions during each general election, digital participation plays a decisive role. The 2019 elections saw youth-driven campaigns that highlighted issues like jobs, education, and social justice through both online and offline spaces. Digital platforms have also emerged as spaces of civic education. Traditional civic education was confined to schools and universities, but now, YouTube channels, podcasts, and Instagram reels are teaching youth about constitutions, laws, governance, and political theory.For instance:Independent educators and NGOs run digital literacy programs that empower youth to critically analyze political

claims.Platforms like PRS Legislative Research and youth-focused portals explain parliamentary debates and policy issues in accessible formats.Memes, while often humorous, act as simplified tools of political communication, making complex debates understandable for young audiences.By merging entertainment with political knowledge. Despite its transformative potential, digital political engagement faces several challenges:Misinformation and fake news: Youth are vulnerable to false narratives spread rapidly through social media, especially during elections.Digital divide: Access to digital participation is unequal. Rural-urban disparities, gender gaps, and class differences mean that not all youth have equal opportunities to participate online.Echo chambers and polarization: Algorithms often expose youth to only like-minded opinions, reinforcing divisions rather than encouraging deliberation.Surveillance and privacy concerns: Digital participation generates vast amounts of data, which can be exploited by governments or corporations to monitor and influence behavior.Superficial participation: Critics argue that liking, sharing, or retweeting may not translate into substantive political change unless combined with offline action.

Global and Indian Perspectives

Across the world, the digital era has redefined how youth interact with politics. In several countries, young people have been at the forefront of digital movements that have shaken governments, created new political narratives, and demanded accountability.The Arab Spring is often cited as the first "social media revolution." Youth activists in Tunisia, Egypt, and Libya used Facebook and Twitter to organize protests against authoritarian regimes. Hashtags and viral videos spread information rapidly, bypassing state-controlled media. Though the outcomes were mixed—some countries slid into instability—it highlighted the power of digitally connected youth to challenge entrenched system.The Black Lives Matter (BLM) movement, reignited after the killing of George Floyd in 2020, showed how digital activism can transform into mass street mobilization. Youth played a central role by livestreaming protests, amplifying voices of victims, and pressuring policymakers to address systemic racism. The movement demonstrated how local struggles could gain international solidarity through digital platforms. Greta Thunberg in Sweden, the Fridays for Future movement mobilized millions of youth across continents to demand urgent action against climate change. Using hashtags, online petitions, and virtual meetings, the movement turned climate change into a youth-centered political issue. It showcased how digital natives can build a transnational political movement without relying on traditional political organizations.Youth in Hong Kong utilized encrypted apps, memes, and social media platforms to organize leaderless protests against state control. Digital tools provided anonymity, decentralized leadership, and resilience, making it difficult for authorities to suppress the movement. Lesson from global experiences: The digital era empowers youth with tools of rapid mobilization, global networking, and visibility. However, the long-term impact depends on whether digital energy is converted into institutional reforms. India, with one of the world's youngest populations (65% under 35), has seen youth increasingly participate in politics through digital tools. The Indian experience is unique due to its diversity, democratic framework, and digital expansion. Indian universities have historically been sites of political debate. In the digital era, movements like the protests at Jawaharlal Nehru University (2016) and Jamia Millia Islamia (2019–2020) gained visibility far beyond campus walls due to live tweets, viral videos, and social media campaigns. Youth leaders used digital platforms to articulate demands about freedom of speech, social justice, and minority rights. The Anna Hazare-led anti-corruption movement saw massive participation from urban youth, amplified by

Facebook and Twitter. Young Indians, frustrated with corruption, rallied online and offline, leading to the emergence of the Aam Aadmi Party (AAP). This marked one of the first large-scale demonstrations of digital political participation in India.Youth played a leading role

in organizing nationwide protests against the CAA. Platforms like WhatsApp and Instagram were used for coordination, while Twitter amplified messages to global audiences. Student groups, artists, and youth influencers turned digital activism into street mobilization, challenging state policies in a democratic framework. Although led primarily by farmers, youth participation was visible through digital solidarity campaigns. Young Indians created awareness, debunked misinformation, and mobilized support on platforms like Instagram and Twitter. The role of diaspora youth in spreading global attention was particularly significant. Indian elections in the last decade have seen unprecedented digital campaigning. Political parties invest heavily in youth-targeted campaigns on WhatsApp, YouTube, and Instagram. At the same time, youth themselves run independent campaigns focusing on issues like unemployment, climate change, and gender equality. First-time voters increasingly rely on digital platforms for political information.

Theoretical Perspectives on Youth and Digital Politics

Classical democratic theory treats participation as the lifeblood of legitimacy: citizens vote, deliberate, and hold power to account. In digital settings, participation unfolds inside what scholars call the networked public sphere—a space created by networked media that lowers barriers to entry and speeds up information flows (Benkler, 2006; Dahlgren, 2009). For youth, this sphere is native terrain: they learn, converse, and mobilize in group chats, comment threads, and livestream. Deliberative democracy values reason-giving, mutual respect, and inclusive dialogue (Habermas, 1996). Online spaces can, in theory, host large-scale deliberation at low cost. Youth forums, Reddit-style AMAs with public officials, or student-run policy debates exemplify this promise. Yet the same spaces suffer from trolling, incivility, and echo chambers, reducing the quality of discourse (Sunstein, 2017) For youth, the challenge is cultivating digital civic skills: checking sources, resisting baiting, and listening across difference. Structured environments (moderated town halls, civic-tech platforms) tend to raise deliberative quality more than open comment sections. Traditional social-movement theory emphasized organizations, leadership, and resources. Digital-era movements often rely on "connective action"—personalized sharing and loose networks rather than rigid organizations (Bennett & Segerberg, 2013). Youth thrive in this model: they remix messages, create memes, and mobilize peers without waiting for gatekeepers. Castells (2012) describes a society organized around networks, flows, and digital communication. Power struggles increasingly play out in communication networks; whoever shapes attention and meaning shapes outcomes. Youth, as digital natives, are well positioned to set frames—on climate justice, education, or jobs—by turning personal experiences into shareable narratives. However, network power is asymmetric. Platforms, states, and large campaigns possess data, money, and infrastructure, which can overwhelm grassroots voices. Youth participation, therefore, is empowered yet vulnerable to platform logics. A political-economy lens asks: Who owns the infrastructure of digital politics? Platforms monetize attention and personal data, enabling microtargeting and behavioral profiling (Zuboff, 2019). This can energize youth outreach but also manipulates preferences and narrows information diets (Pariser, 2011). For young citizens, political participation is entangled with surveillance capitalism: the same tools that connect also track. Democratic safeguards—data protection, ad transparency, platform accountability—become part of the participation agenda itself. Feminist and intersectional scholars show how gender, caste, class, race, and region shape who speaks and who is heard online (Banet-Weiser, 2018; Rege, 2013). Youth-led campaigns such as #MeToo or student protests spotlight voices long excluded from mainstream politics, yet online harassment disproportionately targets women and marginalized youth. Postcolonial perspectives remind us that much of the digital public sphere is designed by Global North firms. In countries like India, digital participation must be read alongside language hierarchies, rural connectivity, and state capacity, or else apparent inclusivity masks

new Research on civic learning shows that schools, families, and peer networks still matter. Digital platforms can accelerate civic learning via explainers, podcasts, and interactive tools (Kahne & Bowyer, 2019). The key is not mere access but competence: media literacy, fact-checking skills, and norms of respectful debate. Youth participation deepens when educators pair digital tools with project-based civic work and local problem-solving.

Conclusion

The digital era has radically expanded how young people participate in politics. From hashtag campaigns and livestreamed protests to civic-tech platforms and data-driven advocacy, youth have turned networked media into a toolkit for democratic voice. They set agendas, build communities, and pressure institutions at speeds and scales once unimaginable. Yet digital participation is not a democratic cure-all. The same systems that amplify youth voices also commodify attention, sort information, and expose participants to harm. Misinformation, polarization, harassment, and the digital divide can mute or distort youth participation. Moreover, clicks do not automatically translate into change: sustainable impact typically requires hybrid strategies that connect online mobilization with offline organizing, coalition-building, and institutional engagement. For educators, policymakers, and civil society leaders, the task is twofold. First, empower youth with the skills and protections needed to participate well: media literacy, data rights, safety tools, and fair platform rules. Second, open pathways from digital voice to real decisions: participatory budgeting, youth advisory councils, transparent consultations, and responsive parties and bureaucracies. The lesson from global and Indian experiences is clear: youth are not just the future of democracy—they are its present tense. When their digital energies are welcomed into inclusive institutions and anchored in civic competence, youth participation can deepen deliberation, widen representation, and make democracies more just, resilient, and innovative. The work ahead is to shape digital infrastructures and civic norms so that the power of youth strengthens—not weakens—the democratic experiment.

References

1. Bhatnagar, S. (2014). ICT and e-governance in India: Recasting development.
2. SAGE Publications.
3. Chakrabarti, S. (2018). Digital India: Democracy and governance on the electronic frontier. Routledge India.
4. Kumar, S. (2019). Youth and politics in India: Emerging trends in the digital age.
5. Rawat Publications.
6. Rajagopal, A. (2009). Politics after television: Hindu nationalism and the reshaping of the public in India. Cambridge University Press.
7. Pal, J. (2020). Digital activism in India: Social media and protest. Routledge.
8. Duke University Press.
9. Castells, M. (2012). Networks of outrage and hope: Social movements in the Internet age. Polity.
10. Coleman, S., & Blumler, J. G. (2009). The Internet and democratic citizenship:
11. Theory, practice and policy.
12. Cambridge Banet-Weiser, S. (2018). Empowered: Popular feminism and popular misogyny.
13. Duke University Press.
14. Benkler, Y. (2006). The wealth of networks: How social production transforms markets and freedom. Yale University Press.
15. Norris, P. (2002). Democratic phoenix: Reinventing political activism.
16. Cambridge University Press.
17. Pariser, E. (2011). The filter bubble: What the Internet is hiding from you. Penguin.

18. Putnam, R. D. (2000). Bowling alone: The collapse and revival of American community.
19. Simon & Schuster.
20. Rheingold, H. (2002). Smart mobs: The next social revolution. Perseus.
21. Sunstein, C. R. (2017). #Republic: Divided democracy in the age of social media.
22. Princeton University Press.
23. Tufekci, Z. (2017). Twitter and tear gas: The power and fragility of networked protest.
24. Yale University Press.
25. Zuboff, S. (2019). The age of surveillance capitalism. PublicAffairs

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 180-182
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कमल कुमार के कथा-साहित्य में स्त्री चेतना के बदलते स्वर

प्रियंका मिश्रा
शोधार्थी,
आनंद आर्टस कॉलेज सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, आनंद गुजरात

आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने और पश्चिमी सभ्यता के संपर्क में आने के पश्चात नारी की दशा में जो बदलाव हुए हैं, उसका प्रभाव नारी की स्थिति पर पड़ा है। कमल कुमार ने अपने कथा-साहित्य में स्त्री-पुरुष के संबंध को बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रित किया है। स्त्री अपनी खुशी के लिए वर्जित रिश्तों से बाहर इस भौतिकवादी समाज में देखने की हिम्मत रखती है। इस बारे में डॉक्टर गुलबक्श सिंह फ्रैंक लिखते हैं — "यह मामला शारीरिक खेल से स्त्री की बर्बादी का नहीं बल्कि जिंदगी के खेल में स्त्री की बर्बादी का है।"

अनेक अत्याचारों से जूझती स्त्री जब आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाती है, तब वह खुद को प्रत्येक क्षण से मुक्त और बेहतर स्थिति में पाती है। उत्तर आधुनिक के इस दौर में समाज और समय में बहुत परिवर्तन आया है, स्त्री और पुरुष के संबंध में भी परिवर्तन हुआ है, परंतु इस बदलते समाज में नारी की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ।

आधुनिक समाज में जहां नारी के अस्तित्व को मान्यता मिली है, उसे शिक्षा प्राप्त करने की पूरी छूट मिली है, नौकरी करने और आत्मनिर्भर बनने की पुरुष के बराबर छूट मिली है और पुरुष के समान ही संवैधानिक व सामाजिक अधिकार मिले हैं, वहां नारी अभी भी पुरुष के अस्तित्व भर से आक्रांत होने के कारण विचलित और विच्छुब्ध है।

आधुनिक सभ्यता साक्षर तो हुई है पर शिक्षित नहीं। उत्तर आधुनिक दौर में नारी एक वस्तु बन कर रह गई है। आज भी नारी को एक बिकाऊ माल ही समझा जाता है। अश्लीलता, नग्नता के जरिए सौंदर्य के बजाय नारी में बेहूदापन आया है, जिसके कारण हमारी सामाजिक सीमाओं पर आक्रमण हुआ है। इस तरह के विज्ञापन देखने में ही शर्म आती है।

सरोज परमार के अनुसार, उपभोक्तावाद ने औरत को भी एक वस्तु के रूप में पेश किया है, उसे बिकाऊ बना दिया है। विभिन्न संचार माध्यमों ने ऐसी हवा बहा दी है कि बच्चे से लेकर बूढ़े तक उसकी विकृति की चपेट में हैं। दैविक सौंदर्य की शास्त्रीय तथा संस्कारित मानसिकता नष्ट-भ्रष्ट हो रही है। जब तक नारी भोग की वस्तु बनी रहेगी, वह घर और समाज में लांछित होती रहेगी। नारी को भोग की वस्तु के बजाय मनुष्य मानना होगा, तभी वह इस उत्तर आधुनिक समाज में अपनी स्वतंत्र पहचान बना पाएगी।

बैजनाथ सिंघल के अनुसार, उत्तर आधुनिकता ने उपभोक्ता संस्कृति को जन्म दिया है। नारी ही उसका अधिक शिकार बन रही है। उसने मीडिया तथा उपभोक्ता के लिए स्वयं को एक आकर्षक वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है।

कमल कुमार जी के उपन्यास 'हैम्बर्गर' की नायिका रतेंद्र जब पश्चिम की दुनिया में प्रवेश करती है, तब वह सोचती है कि "जिंदगी यूं ही छोड़ देने वाली चीज नहीं है।" उसके साथ जो हुआ, उससे भी बड़े हादसे स्त्रियां झेलती हैं। पश्चिम में संबंध स्वतंत्र हैं और यहां वह भी स्वतंत्र है। उसने नहीं सोचा था कि कौन क्या कहेगा — घर, परिवार, समाज, इज्जत, आबरू, मर्यादा, संस्कार — कोई मायने नहीं रखता। यह अनुभव की ऐसी सच्चाई थी, जहां उसकी मां अचेतन की दुनिया से परियों के दबाव से हटकर देख रही थी।

रतेंद्र विदेश में आकर एक नई जिंदगी की शुरुआत करती है, अपनी पहले वाली जिंदगी को भूलकर जिसमें वह किसी के दखल को स्वीकार नहीं करती। यहां वह पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। उसकी जिंदगी में कोई ऐसा नहीं है जो उसे किसी भी प्रकार से नियंत्रित करे। यहां वह अपनी मनमर्जी का जीवन जीती है। कहीं न कहीं कमल कुमार ने अपनी कथा-साहित्य में नारी को स्वतंत्र दिखाने की कोशिश की है कि इस बदलते समाज में किस प्रकार से नारी अपना अस्तित्व खुद बना रही है।

इसी प्रकार का एक अन्य उपन्यास 'पासवर्ड' है। इसकी नायिका अमेरिका, एशिया व यूरोप के कई देशों की यात्राएं कभी किसी कॉन्फ्रेंस के संदर्भ में तो कभी किसी गोष्ठी में बार-बार करती है। अमेरिका के मृगमरीचिका वाले रूप पर जहां भी अवसर मिला है, नायिका करारी चोट करती है। "खाओ, खरीदो" — यही जिंदगी का मोटिव है। बड़े-बड़े मॉल, शॉपिंग सिटी, 88 मंजिलें, कपड़ों की दुकानें, खाने की दुकानें — पश्चिम की संस्कृति एक भोगवादी संस्कृति है, जहां बाजार अपनी ताकत से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है।

अमेरिकी संस्कृति में जो बाज़ारवाद हमें दिया गया है, मॉल उसी की सौगात है जिसमें उपभोक्ता को बढ़ावा दिया गया है। भले ही समाज बदल रहा है, परंतु समाज में नारी की स्थिति में बहुत ज़्यादा सुधार नहीं दिखता।

इसका एक उदाहरण हम कमल कुमार की कहानी 'समय बूँद' में देख सकते हैं, जिसकी नायिका गोरी अपने मालिक के यौन शोषण का शिकार होती है। जब उसकी मालकिन विदेश से वापस आती है, तो वह मालकिन को सारी करतूत मालिक की बतलाती है। परंतु मालकिन हमदर्दी न दिखाकर उल्टा उस पर आरोप लगाती है और कहती है — "तुम क**** लोग नाली के कीड़े हो, नाले के लायक ही हो। जिस थाली में खाते हो उसी में छेद करते हो। इतने बड़े खानदान की इज्जत को मिट्टी में मिला दिया। तुम्हें नरक से निकालकर इंसान की जिंदगी दी लेकिन तुमने हमारे ही मुंह पर थूक दिया।"

कमल कुमार ने अपनी कथा-साहित्य में यह दिखाने का प्रयास किया है कि आधुनिक समय में भी नारी सब लोगों के द्वारा देह शोषण का शिकार होकर अपने जीवन में कभी भी सहज नहीं हो पाती।

नए युग में भले ही नारी की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक दशा में सुधार हुआ है, परंतु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आज भी नारी के अंदर अकेलापन व्याप्त है।

महादेवी वर्मा का मत है कि — "आर्थिक दृष्टि से आज जो स्वतंत्रता स्त्री को प्राप्त हुई है, उसके विस्तार की असंख्य संभावनाएं हैं। जैसे-जैसे कर्म-क्षेत्र की लक्ष्मण रेखा मिटती जाती है, वैसे-वैसे वह नवीन कर्तव्यों को संभालने की क्षमता प्राप्त करती जाती है। पर समाज की स्थिति के कारण यह आर्थिक स्वावलंबन भारतीय स्त्री को पारिवारिक सहानुभूति से वंचित व अकेला बनाता जाता है। पुरुष अकेला हो सकता है परंतु स्त्री अनेक संबंधों की केंद्र होने के कारण एक संस्था के समान है।"

यदि बात की जाए बाज़ारवाद की, तो 21वीं सदी की मुख्य प्रवृत्तियों में से एक है निजीकरण और उदारीकरण में पैदा हुआ यह बाज़ारवाद। इसने पूरे विश्व में कई परिवर्तन को जन्म दिया है। भूमंडलीकरण अर्थात विश्व की अर्थव्यवस्था के परस्पर बनते संबंधों ने बाजारवाद की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया है।

आज बाज़ारवाद की वजह से ही हमारी आर्थिक संस्कृति में ही नहीं बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर भी कई परिवर्तन हुए हैं। इस संदर्भ में अमित कुमार सिंह का कथन है — "वैश्वीकरण ने प्राचीन एवं परंपरागत भारतीय

समाज की यदि संस्था को झकझोर कर रख दिया है। भारत में व्यक्ति, परिवार, समाज और संस्कृति के समक्ष पुनर्परिभाषा का संकट उत्पन्न हो गया है।"

भूमंडलीकरण ने भारत में समाज व संस्कृति के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। इस परिवर्तन में कभी भविष्य के खतरे की आहट सुनाई देती है तो कभी इसमें एक नए भविष्य की रचना का सुखद असर लक्षित होता है। जिस तरह से समाज आज आर्थिक लाभ के लिए किसी भी हद तक जा सकता है, अपने सगे संबंधियों को भी पीछे धकेल रहा है — यह हमें कमल कुमार की कहानी 'चौराहा' में दिखता है।

'चौराहा' कहानी में महानगरीय जीवन को दिखाया गया है। कहानी का मुख्य पात्र मनीष अपने स्वार्थ के लिए अपने बुजुर्ग पिता को किस प्रकार अकेला छोड़ आता है और महानगरीय जीवन यापन करता है। जब मनीष चौराहे पर बैठे एक भिखारी में अपने पिता की छवि देखता है, तब वह अतीत में हुए पिता के प्रति अन्याय का प्रायश्चित करता है।

'चौराहा' के भिखारी की मृत्यु से उसे ऐसा आघात लगता है जैसे उसके किसी अपने की मृत्यु हुई हो। कमल कुमार ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के ऐसे रूप को चित्रित किया है जिसमें सच्चाई का उद्घाटन हुआ है। वे इस कहानी के माध्यम से आज की पीढ़ी का पर्दाफाश करती हैं।

इस प्रकार सर्वविदित है कि परिवर्तित समाज में नारी-चिंतन के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है। कमल कुमार जी के कथा-साहित्य में नारी अपने अधिकार के प्रति, अपने सम्मान के प्रति और अपनी निष्ठा के प्रति सचेत है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कमल कुमार एक ऐसी कथाकार हैं जिनके कथा-साहित्य में नारी को केंद्र में रखकर उनके जीवन की विडंबनाओं के आधार पर कथानक बुना गया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ शिव प्रसाद सिंह, आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 119
2. श्री महेंद्र चतुर्वेदी, हिंदी उपन्यास एक सर्वेक्षण , पृष्ठ संख्या 188
3. शंकर प्रसाद, सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान, पृष्ठ संख्या 27
4. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियां, साधना सदन प्रयाग, पृष्ठ संख्या 52
5. कमल कुमार, कमल कुमार की यादगार कहानियां , पृष्ठ संख्या 146
6. कमल कुमार, हैमबर्गर , पृष्ठ संख्या 136
7. राहुल सांकृत्यायन, अंतर्विरोधों में लय, समकालीन सृजन, कलकत्ता ,संस्करण 1995, पृष्ठ संख्या 25

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 183-187
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

झुंझुनू जिले में उच्च शिक्षा की स्थिति : एक समीक्षात्मक अध्ययन

उमा शंकर
सहायक आचार्य,
स्वामी विवेकानंद राजकीय महाविद्यालय, खेतड़ी (झुंझुनू)

शोध सारांश :

झुंझुनू जिला राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र का एक प्रमुख शैक्षिक केंद्र है जिसका उच्च शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान में महत्वपूर्ण स्थान है। यह उच्च शिक्षा के दृष्टिकोण से राजस्थान के पांच अग्रणी जिलों में शामिल है। यहां ऐतिहासिक रूप से शिक्षा को सामाजिक सशक्तिकरण का माध्यम माना गया है। जिले में राजकीय एवं निजी महाविद्यालयों, शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों तथा व्यावसायिक शिक्षा केंद्रों की संख्या में वृद्धि हुई है जिससे उच्च शिक्षा तक पहुँच पहले की तुलना में बेहतर हुई है। ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में बालिकाओं की उच्च शिक्षा में सहभागिता बढ़ना भी एक सकारात्मक संकेत है। झुंझुनू जिले में उच्च शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता और शोध संस्कृति पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द : झुंझुनू, उच्च शिक्षा, विश्वविद्यालय, नवाचार, शेखावाटी, महिला शिक्षा।

प्रस्तावना :

उच्च शिक्षा किसी भी राष्ट्र के बौद्धिक विकास तथा सामाजिक आर्थिक प्रगति की आधारशिला होती हैं। यह नवाचार, अनुसंधान, कुशल मानव संसाधन के निर्माण, समाज को प्रगतिशील और आत्मनिर्भर बनाने तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के सुदृढ़ीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत जैसे विकासशील देश में विशाल जनसंख्या, सामाजिक विविधता तथा आर्थिक असमानताओं के मद्देनज़र उच्च शिक्षा की भूमिका और भी व्यापक हो जाती हैं।

राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में स्थित झुंझुनू जिला अपनी ऐतिहासिक विरासत और समृद्ध संस्कृति के लिए जाना जाता है जिसने शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान बनाई है। विशेष रूप से उच्च शिक्षा के मामले में यह जिला राज्य के अन्य जिलों की तुलना में अग्रणी है। यहाँ शिक्षा के प्रति जागरूकता अन्य जिलों की तुलना में अधिक देखी जाती है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा के विकास की दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए, जिससे जिले में कई प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थानों की स्थापना हुई जो राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। जिले में उच्च शिक्षा के विकास हेतु सरकारी और निजी शिक्षण संस्थाओं का एक व्यापक नेटवर्क विद्यमान है। तीन निजी विश्वविद्यालयों सहित अनेक राजकीय एवं निजी महाविद्यालय संचालित हो रहे हैं जो कला, विज्ञान, वाणिज्य, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करते हैं। जिले के विद्यार्थी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर

अपनी प्रतिभा का उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रहे हैं। यहाँ के बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड साइंस (बिट्स), पिलानी जैसे संस्थान न केवल देश बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी पहचान बना चुके हैं।

राजस्थान के 2211 महाविद्यालयों में से झुंझुनू जिले में 122 महाविद्यालय स्थित है जिनमें से 45 बालिका महाविद्यालय तथा 77 सह शिक्षा महाविद्यालय है जो गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा सुनिश्चित करते हैं। महाविद्यालयों की संख्या की दृष्टि से जिले का संपूर्ण राजस्थान में तीसरा स्थान हैं।

तालिका – 1 : जिले में महाविद्यालयों की संख्यात्मक स्थिति

क्र. सं.	महाविद्यालय	सहशिक्षा महाविद्यालय	बालिका महाविद्यालय	कुल महाविद्यालय
1.	राजकीय महाविद्यालय	11	08	19
2.	निजी महाविद्यालय	66	37	103
कुल		77	45	122

स्रोत : वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन (2024-25), उच्च शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार

जिले में स्थित 19 राजकीय महाविद्यालयों में से 8 कन्या महाविद्यालय तथा अन्य 11 सह शिक्षा महाविद्यालय हैं जो निम्नलिखित है -

तालिका – 2 : जिले में स्थित राजकीय महाविद्यालय

क्र. सं.	महाविद्यालय का नाम	स्थापना वर्ष	कॉलेज का प्रकार	स्तर
1.	स्वामी विवेकानन्द राजकीय महाविद्यालय, खेतड़ी	1999	COED	PG
2.	सेठ नेतराम मघराज टिबड़ेवाला राजकीय महिला महाविद्यालय, झुंझुनू	1999	GIRLS	PG
3.	सेठ श्री केदारनाथ मोदी राजकीय महाविद्यालय, गुढ़ा	2013	COED	PG
4.	श्री राधेश्याम आर.मोरारका राजकीय महाविद्यालय, झुंझुनू	2013	COED	PG
5.	श्री राधेश्याम आर. मोरारका राजकीय महाविद्यालय, नवलगढ़	2013	COED	PG
6.	राजकीय महाविद्यालय मलसीसर	2018	COED	UG
7.	राजकीय कन्या महाविद्यालय, हेतमसर	2019	GIRLS	UG
8.	मास्टर हजारी लाल शर्मा राजकीय महाविद्यालय, चिड़ावा	2020	COED	UG
9.	राजकीय महाविद्यालय, सूरजगढ़	2020	COED	UG
10.	राजकीय महाविद्यालय, उदयपुरवाटी	2021	COED	UG
11.	राजकीय महाविद्यालय, बुहाना	2022	COED	UG
12.	राजकीय कन्या महाविद्यालय, बबाई (खेतड़ी)	2022	GIRLS	UG
13.	राजकीय कन्या महाविद्यालय, गुड़ा	2022	GIRLS	UG
14.	राजकीय कन्या महाविद्यालय, अलसीसर	2022	GIRLS	UG
15.	राजकीय कन्या महाविद्यालय, मंड्रेला	2022	GIRLS	UG
16.	राजकीय कन्या महाविद्यालय, मुकुंदगढ़	2022	GIRLS	UG

17.	राजकीय महाविद्यालय, बिसाऊ	2023	COED	UG
18.	राजकीय कन्या महाविद्यालय, परसरामपुरा	2023	GIRLS	UG
19.	राजकीय महाविद्यालय, किठाना	2024	COED	UG

कृषि महाविद्यालय और शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्तंभ हैं जो क्रमशः ग्रामीण विकास और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करते हैं। विकसित भारत @ 2047 व आत्मनिर्भर भारत और ज्ञान आधारित समाज के निर्माण हेतु इन दोनों प्रकार के महाविद्यालयों का सुदृढ़ और समन्वित विकास अनिवार्य है। जिले में एक राजकीय कृषि महाविद्यालय और 200 से अधिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थित है।

प्रमुख उच्च शिक्षा संस्थान

जिले में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तीन निजी विश्वविद्यालय संचालित हो रहे हैं जिनके पास नवीनतम बुनियादी ढांचा है और वे विविध पाठ्यक्रम उपलब्ध कराते हैं जो निम्नलिखित हैं -

- सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी : विविध शैक्षणिक कार्यक्रमों की पेशकश करने वाला एक प्रमुख निजी विश्वविद्यालय है जो उच्च शिक्षा के विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए जाना जाता है। यह विश्वविद्यालय विज्ञान, प्रबंधन, मानविकी और विधि के क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्रदान करता है। यहाँ शोध और नवाचार को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न अनुसंधान केंद्र स्थापित किए गए हैं।
- जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय, चुड़ैला : विभिन्न स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के लिए जाना जाने वाला एक अन्य निजी विश्वविद्यालय। तकनीकी और प्रबंधन शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। इस विश्वविद्यालय में चिकित्सा, इंजीनियरिंग और प्रबंधन सहित कई पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं।
- श्रीधर विश्वविद्यालय, बिगोदना : विभिन्न तकनीकी और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की पेशकश करने वाला विश्वविद्यालय जो विज्ञान, प्रबंधन तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।
- बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड साइंस (बिट्स), पिलानी : वर्ष 1964 में स्थापित यह संस्थान विज्ञान, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा और शोध कार्य के लिए प्रसिद्ध है। यह भारत के सर्वश्रेष्ठ इंजीनियरिंग संस्थानों में से एक है और इसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ख्याति प्राप्त है। यहाँ से निकले छात्र देश-विदेश में उच्च पदों पर कार्यरत हैं।

सेठ मोतीलाल पीजी कॉलेज, सेठ ज्ञानीराम बंसीधर पोदार महाविद्यालय (नवलगढ़), चिड़ावा कॉलेज (चिड़ावा), कानोरिया कॉलेज (मुकुंदगढ़), विनोदिनी स्नातकोत्तर महाविद्यालय (राजोता, खेतड़ी) जैसे निजी शिक्षण संस्थान उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

तालिका – 3 : जिले में स्थित निजी विश्वविद्यालय

क्र. सं.	विश्वविद्यालय का नाम	स्थापना वर्ष
1.	सिंघानिया विश्वविद्यालय, पचेरी बड़ी	2007
2.	श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय, चुड़ैला	2009
3.	श्रीधर विश्वविद्यालय, बिगोदना	2010

विद्यार्थी नामांकन

उच्च शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार के वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन (2024-25) के अनुसार जिले के विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों में कुल 59,947 विद्यार्थी अध्ययनरत हैं जिनमें से 23,297 छात्र और 36,650 छात्राएँ हैं I जिलेवार कुल विद्यार्थी नामांकन की दृष्टि से इसका क्रमशः जयपुर, सीकर, अलवर के बाद राजस्थान में चतुर्थ स्थान हैं। तालिका तीन से स्पष्ट है कि छात्र नामांकन की तुलना में छात्राओं का नामांकन अधिक है जो छात्राओं की उच्च शिक्षा में बढ़ती भागीदारी को दर्शाता हैं।

तालिका – 4 : श्रेणीवार विद्यार्थी नामांकन (2024-25)

S.No.	Category	BOYS	GIRLS	TOTAL
1.	SC	4894	7700	14214
2.	ST	843	1360	2893
3.	OBC	13105	21071	37993
4.	GEN & EWS	4455	6519	11679
5.	TOTAL	23297	36650	59947
6.	MINORITY	706	1229	1935

स्रोत : वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन (2024-25), उच्च शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार

झुंझुनू जिले में महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं। बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ अभियान के तहत लड़कियों को उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। जिले में कन्या महाविद्यालयों की संख्या बढ़ रही है जिससे लड़कियों को उच्च शिक्षा तक आसानी से पहुंच प्राप्त हो रही है। आज झुंझुनू की महिलाएँ शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं और सैन्य, प्रशासनिक और चिकित्सा क्षेत्रों सहित विज्ञान और तकनीक में अपनी पहचान बना रही हैं। राजकीय नेतराम मघराज टीबड़ेवाला कन्या महाविद्यालय, महर्षि दयानन्द बालिका विज्ञान महाविद्यालय, जे. बी. शाह गर्ल्स कॉलेज, इंदिरा गांधी बालिका निकेतन (अरड़ावता), रामादेवी महिला शिक्षण संस्थान (हरनाथपुरा), हेलेना कौशिक महिला महाविद्यालय (मलसीसर) जैसे संस्थान महिलाओं के लिए शिक्षा का सशक्त माध्यम बनकर उभरे हैं। झुंझुनू की महिलाओं की उच्च शिक्षा में नामांकन दर राजस्थान के अन्य जिलों की तुलना में अधिक है। सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाएँ जैसे – बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, मुख्यमंत्री उच्च शिक्षा छात्रवृत्ति योजना आदि ने महिला उच्च शिक्षा को बढ़ावा दिया है। उच्च शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए केंद्र और राज्य सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ लागू की गई हैं जैसे – राजस्थान फ्री कॉलेज एजुकेशन योजना, मुख्यमंत्री अनुप्रति कोचिंग योजना, शेखावाटी विश्वविद्यालय की स्थापना और विस्तार, डिजिटल इंडिया मिशन के तहत ऑनलाइन शिक्षा का विस्तार।

जिले में कई प्रतिष्ठित कोचिंग संस्थान खुल चुके हैं जो विद्यार्थियों को प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में मदद कर रहे हैं जिससे प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल विद्यार्थियों की संख्या लगातार बढ़ रही है। हर साल जिले के कई युवा भारतीय प्रशासनिक सेवा, राजस्थान प्रशासनिक सेवा और अन्य सरकारी नौकरियों में चयनित होते हैं। इसी प्रकार जिले के अनेक छात्र आईआईटी और मेडिकल कॉलेजों में भी प्रवेश पाते हैं। राज्य और केंद्रीय स्तर की सरकारी नौकरियों में झुंझुनू जिले का महत्वपूर्ण योगदान है। झुंझुनू जिले में उच्च शिक्षा के अंतर्गत विभिन्न विषयों की पढ़ाई होती है जिनमें कला, विज्ञान, वाणिज्य, प्रबंधन, कृषि, कंप्यूटर साइंस, इंजीनियरिंग और मेडिकल शिक्षा शामिल हैं लेकिन अब भी यहाँ तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के विस्तार की आवश्यकता महसूस की जाती

है। झुंझुनू जिले में उच्च शिक्षा को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए सरकारी और निजी संस्थानों के बीच असंतुलन, अनुसंधान और नवाचार की कमी, डिजिटल शिक्षा और तकनीकी संसाधनों की कमी, बुनियादी ढांचे की समस्याएँ, ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा का सीमित विस्तार, रोजगारपरक शिक्षा का अभाव, निजी संस्थानों की बढ़ती फीस संरचना जैसी चुनौतियों का समाधान आवश्यक है जिससे जिले के छात्र उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त कर सकें और रोजगार के बेहतर अवसर हासिल कर सकें।

निष्कर्ष

झुंझुनू जिले में उच्च शिक्षा का परिदृश्य उत्साहजनक है। सही नीतियों, सामुदायिक सहभागिता, नवाचार और संसाधनों का सही उपयोग किया जाए तो झुंझुनू उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी बन सकता है। उच्च शिक्षा के बेहतर अवसर न केवल जिले के युवाओं को आत्मनिर्भर बनाएंगे बल्कि झुंझुनू को शैक्षिक रूप से समृद्ध और विकसित करने में भी योगदान देंगे। जिले में उच्च शिक्षा को और अधिक प्रभावी और समावेशी बनाने के लिए आवश्यक है कि मौजूदा समस्याओं का व्यवस्थित समाधान किया जाए। बेहतर प्रशासनिक समन्वय, डिजिटल शिक्षा का विस्तार, अनुसंधान को बढ़ावा और कौशल विकास कार्यक्रमों की मजबूती से जिले की उच्च शिक्षा प्रणाली को सशक्त बनाया जा सकता है। इसके लिए प्रशासन, शिक्षण संस्थानों और समाज को एक साथ मिलकर प्रयास करने होंगे। यदि तकनीकी शिक्षा और ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा का विस्तार किया जाए तो जिला राजस्थान में शिक्षा का एक आदर्श केंद्र बन सकता है तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक नए युग की शुरुआत कर सकता है।

संदर्भ

1. वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन (2024-25), उच्च शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार।
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) - 2020
3. विभिन्न समाचार पत्र।
4. https://www.education.gov.in
5. https://hte.rajasthan.gov.in/dept/dce/college.php

ई-मेल - umashankardhinwa@gmail.com
मोबाइल नंबर - 8764263431

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 188-192
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियों में निम्न वर्ग का यथार्थ

टेकराम
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
डॉ. अभिनेष सुराना
शोध निर्देशक,
शास.वि.या.ता.स्नात.स्वशासी महा. दुर्ग (छ.ग.)

शोध सार- यह शोध-सार शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियों में अभिव्यक्त निम्न वर्गीय जीवन के सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। हिंदी कहानी की यथार्थवादी परंपरा में शीतेंद्रनाथ चौधुरी का लेखन विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि वे निम्न वर्ग को करुणा या दया की वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक-आर्थिक संरचना के भीतर संघर्षरत, सचेत और श्रमशील मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों का यथार्थ जीवन के ठोस अनुभवों से निर्मित है, जहाँ अभाव, असुरक्षा, श्रम और शोषण दैनिक जीवन की अनिवार्य स्थितियाँ हैं।

शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कथाओं में श्रम केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि वर्गीय पहचान और आत्मसम्मान का आधार है। गरीबी और शोषण के चित्रण के साथ-साथ उनमें वर्गीय चेतना और मौन प्रतिरोध के स्वर भी उभरते हैं। विशेष रूप से स्त्री-जीवन का चित्रण निम्न वर्गीय संदर्भों में दोहरे उत्पीड़न - वर्ग और लिंग - की जटिलताओं को उजागर करता है। उनकी कहानियाँ निम्न वर्ग की पीड़ा को संवेदनात्मक स्तर पर प्रस्तुत करते हुए उसे सामाजिक संरचनाओं से जोड़ती हैं।

यह शोध-सार निष्कर्षतः प्रतिपादित करता है कि शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियाँ हिंदी कथा-साहित्य में निम्न वर्गीय यथार्थ को प्रामाणिक, वस्तुनिष्ठ और समकालीन दृष्टि के साथ अभिव्यक्त करती हैं तथा सामाजिक यथार्थ की परंपरा को सशक्त रूप में आगे बढ़ाती हैं।

बीज शब्द-निम्न वर्ग,श्रम,शोषण,औद्योगिकीकरण,प्रतिरोध,निम्न वर्गीय स्त्री,वर्गीय चेतना

प्रस्तावना- हिंदी कहानी की परंपरा में यथार्थ सदैव केंद्रीय सरोकार के रूप में उपस्थित रहा है। प्रेमचंद के कथा-साहित्य में यह यथार्थ मुख्यतः ग्रामीण जीवन, किसान और मज़दूर की सामाजिक - आर्थिक स्थितियों से संबद्ध है, जहाँ शोषण, गरीबी और मानवीय संघर्ष का स्पष्ट चित्रण मिलता है। प्रेमचंद के बाद हिंदी कहानी ने अपने यथार्थ-बोध का विस्तार किया और वह शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा बदलती सामाजिक संरचनाओं के साथ हाशिये पर धकेले गए वर्गों की जीवन-स्थितियों की ओर उन्मुख हुई। इस विकासशील यथार्थवादी परंपरा में सामाजिक संबंधों, वर्ग-संरचना और सत्ता-संतुलन की जटिलताओं को समझने का प्रयास लगातार गहराता गया। यथार्थ वह नहीं जो केवल दृश्य रूप में उपस्थित हो, बल्कि वह है जो सामाजिक संबंधों और वर्ग-संरचना के भीतर

कार्यरत हो। इस दृष्टि से देखा जाए तो यथार्थ केवल बाहरी दृश्य विधान नहीं, बल्कि समाज की अंतर्निहित संरचनाओं और प्रक्रियाओं की पहचान है।

इसी विकसित यथार्थवादी परंपरा के महत्त्वपूर्ण कथाकार के रूप में शीतेंद्रनाथ चौधुरी का स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनकी कहानियाँ न तो किसी आदर्शवादी समाधान का भ्रम रचती हैं और न ही भावुक सहानुभूति में उलझकर यथार्थ की धार को कुंद करती हैं। वे निम्न वर्गीय जीवन को रोमानी दृष्टि से देखने के बजाय उसकी ठोस, कठोर और जटिल वास्तविकताओं के बीच रखकर प्रस्तुत करते हैं। चौधुरी का कथालेखन जीवनानुभवों से उपजा हुआ है, जहाँ अभाव, श्रम, असुरक्षा और अस्थिरता निम्न वर्गीय अस्तित्व की स्थायी स्थितियाँ बनकर उभरती हैं। उनकी कहानियों में निम्न वर्ग केवल पीड़ित या निरीह पात्र नहीं, बल्कि सामाजिक - आर्थिक संरचना के भीतर संघर्षरत और सचेत मनुष्य के रूप में सामने आता है।

कहानी-संग्रह 'छत्ता' और 'हाते से बाहर' में शीतेंद्रनाथ चौधुरी का यथार्थबोध अधिक परिपक्व और सघन रूप में व्यक्त हुआ है। इन संग्रहों की कहानियाँ निम्न वर्गीय जीवन की विडंबनाओं, श्रम-संस्कृति और वर्गीय असमानताओं को गहरी संवेदनशीलता और वस्तुनिष्ठता के साथ प्रस्तुत करती हैं। वहीं पास - पड़ोस जैसे संपादित कहानी संकलन में उनकी प्रकाशित कहानी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि उनका कथ्य केवल निजी अनुभवों तक सीमित नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करता है। कहानी के इस वाक्यांश से स्पष्ट हो जाता है-"बाहर की दुनिया में श्रम था, पर भरोसा नहीं था; हाथ थे, पर काम नहीं था। व्यवस्था ने उसे यह सिखा दिया था कि मज़दूर की ज़रूरत केवल तब तक है, जब तक वह मुनाफे की गणना में फिट बैठता है।"1 इस प्रकार शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियाँ हिंदी कहानी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की परंपरा को न केवल आगे बढ़ाती हैं, बल्कि उसे समकालीन संदर्भों में नई अर्थवत्ता और गहराई प्रदान करती हैं।

इनकी कहानियों का केंद्रीय सरोकार निम्न वर्गीय जीवन की सामाजिक आर्थिक संरचना है, जो निरंतर अभाव, अस्थिरता और असुरक्षा से घिरी हुई है। यह वर्ग केवल आर्थिक रूप से विपन्न नहीं है, बल्कि सामाजिक संरचना में भी उसे हाशिये पर धकेल दिया गया है। लेखक की विशेषता यह है कि वे इस वर्ग को बाहर से देखने वाले कथाकार नहीं हैं, बल्कि उसी जीवन-संसार के भीतर से उसकी कथा रचते हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियों में निम्न वर्ग का यथार्थ किसी सांख्यिकीय विवरण या वैचारिक घोषणापत्र की तरह नहीं, बल्कि जीवन के अनुभवजन्य सत्य के रूप में सामने आता है।

निम्न वर्ग की सामाजिक आर्थिक संरचना: शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियों में निम्न वर्ग का जीवन अभाव को नियति की तरह स्वीकार करने को विवश दिखाई देता है। यहाँ गरीबी कोई अस्थायी स्थिति नहीं, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली सामाजिक अवस्था है। इस वर्ग की सामाजिक आर्थिक संरचना ऐसी है, जिसमें श्रम ही उसका एकमात्र पूँजी है, किंतु उसी श्रम का मूल्य सबसे कम आँका जाता है। कहानी 'पहचान' में श्रमिक वर्ग की यह स्थिति अत्यंत सघन रूप में उभरती है, जहाँ मेहनत और पारिश्रमिक के बीच गहरा असंतुलन दिखाई देता है और पात्र कहता है-"यही दुनिया का दस्तूर है। दूसरों के लिए इमारत बनाने वालों को झोंपड़ी में ही रहना पड़ता है।"2 यह कथन किसी एक पात्र की व्यक्तिगत पीड़ा भर नहीं है, बल्कि उस व्यवस्था की आलोचना है, जिसमें श्रम करने वाला वर्ग अपने ही श्रम के फल से वंचित रह जाता है। यहाँ लेखक किसी वैचारिक शब्दावली का सहारा नहीं लेता, बल्कि जीवन से उपजी एक साधारण-सी पंक्ति के माध्यम से पूरी सामाजिक संरचना पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। यह पंक्ति बताती है कि निम्न वर्ग के लिए श्रम जीवन को आगे बढ़ाने का साधन तो है, पर सम्मानजनक जीवन का आधार नहीं बन पाता।

निम्न वर्ग की आर्थिक विडंबना को अत्यंत सघन रूप में व्यक्त करने के संदर्भ में कहा जा सकता है कि शोषित वर्ग का यथार्थ केवल गरीबी का चित्र नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था की पहचान है जो गरीबी को बनाए रखती है। चौधुरी की कहानियाँ इसी व्यवस्था की पहचान करती हैं और उसे स्वाभाविक मानने से इंकार करती हैं।

चौधुरी की कहानियों में निम्न वर्ग की सामाजिक स्थिति भी उसकी आर्थिक दुर्बलता से गहरे रूप में जुड़ी हुई है। निर्धनता यहाँ केवल पैसे की कमी नहीं, बल्कि सामाजिक आवाज़ के अभाव का भी प्रतीक बन जाती है। यह वर्ग निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखा गया है और उसकी उपस्थिति केवल श्रम-शक्ति के रूप में स्वीकार की जाती है। इस प्रकार लेखक निम्न वर्गीय जीवन की उस संरचनात्मक विडंबना को उजागर करता है, जहाँ मेहनत जीवन की अनिवार्यता है, लेकिन उससे मुक्ति का कोई रास्ता नहीं खुलता।

श्रम और शोषण का यथार्थ: 'छत्ता' कहानी-संग्रह में श्रम और शोषण का संबंध और अधिक तीव्र तथा स्पष्ट रूप में सामने आता है। यहाँ श्रमिक की पराजय किसी व्यक्तिगत विफलता के रूप में नहीं, बल्कि वर्गीय नियति के रूप में उभरती है। कहानी 'आजादी' में श्रम की इस त्रासदी को अत्यंत मार्मिक और अर्थगर्भित पंक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है-"तेरह साल का छोटा-सा प्राण-उसने स्कूल छोड़कर होटल में नौकरी कर ली और तब से वह सुबह से रात तक सिर्फ़ एक मशीन बनकर रह गया।"3 यह कथन बताता है कि श्रम करने वाला वर्ग अपने अभाव को किसी असामान्यता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक नियति के रूप में स्वीकार करने को विवश है। यह पंक्ति श्रम के शोषण को स्थायी सामाजिक स्थिति के रूप में प्रस्तुत करती है। यहाँ 'मज़दूरी' शब्द केवल भुगतान का संकेत नहीं, बल्कि एक ऐसी व्यवस्था का प्रतीक बन जाता है, जिसमें श्रमिक की रोज़-रोज़ की हार को सामान्य और स्वाभाविक मान लिया गया है। चौधुरी की दृष्टि में शोषण कोई आकस्मिक घटना नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना का अनिवार्य परिणाम है।

लेखक श्रम को केवल आर्थिक समस्या के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे सामाजिक संबंधों की देन मानता है। श्रमिक और मालिक के बीच का संबंध समानता पर आधारित नहीं, बल्कि सत्ता और असमानता पर टिका हुआ है। इसी कारण श्रमिक की मेहनत व्यवस्था को चलाने के बावजूद उसे उसी व्यवस्था के भीतर सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं होता। चौधुरी की कहानियाँ इस असमानता को उजागर करते हुए यह संकेत देती हैं कि जब तक सामाजिक संरचना में परिवर्तन नहीं होगा, तब तक श्रम का शोषण भी समाप्त नहीं होगा।

निम्न वर्गीय स्त्री : दोहरा शोषण और संरचनात्मक मौन: शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानी 'हत्यारा' में निम्न वर्गीय स्त्री का जीवन दोहरे शोषण की ऐसी मार्मिक तस्वीर प्रस्तुत करता है, जहाँ उसका अस्तित्व श्रम और त्याग के बीच मौन रूप से पिसता हुआ दिखाई देता है। यहाँ स्त्री केवल आर्थिक अभाव की शिकार नहीं है, बल्कि पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के भीतर उसकी भूमिका एक अनिवार्य, किंतु अदृश्य श्रमिक की है। कहानी में माँ का चरित्र इसी यथार्थ को अत्यंत सघनता से उद्घाटित करता है। वह "मुँह-अँधेरे उठकर मजदूरों की बीवियों के साथ कतार में खड़े होकर पानी भरती, खाना बनाती, बर्तन माँजती, कपड़ा धोने के रोजमर्रा के काम से निपटकर सिलाई बुनाई का काम करती।"4 यह विवरण स्त्री के श्रम की बहुस्तरीय प्रकृति को सामने लाता है, जहाँ घरेलू और बाहरी - दोनों प्रकार के श्रम उसके जीवन की अनिवार्य दिनचर्या हैं।

यह श्रम केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था द्वारा उस पर लादी गई जिम्मेदारी है। स्त्री का यह श्रम किसी सम्मान या पहचान में परिणत नहीं होता, बल्कि स्वाभाविक मान लिया जाता है। वह अपने लिए नहीं, बल्कि परिवार और विशेषतः बेटे के भविष्य के लिए जीती है। कहानी में कहा गया है कि वह "अपनी सारी कमाई उसके पीछे ही खर्चती रही कि लड़का पढ़कर निकल जाएगा तो दिन फिर जाएंगे।"5 यह पंक्ति निम्न वर्गीय स्त्री की उस मानसिक संरचना को उजागर करती है, जहाँ उसका वर्तमान लगातार भविष्य के एक अनिश्चित स्वप्न पर टिका होता है। उसका जीवन 'आज' में नहीं, बल्कि 'कल' की उम्मीद में खपता चला जाता है।

यहाँ स्त्री का शोषण केवल आर्थिक नहीं है। उसका त्याग, उसका मौन और उसकी सहनशीलता सब कुछ सामाजिक अपेक्षाओं के नाम पर स्वीकृत कर लिया जाता है। वह सारा दुख सहती रही, लेकिन उसके दुख को कभी प्रश्न या प्रतिरोध का रूप नहीं मिलता। यही उसका संरचनात्मक मौन है, जो पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री पर थोपा गया है। इस प्रकार 'हत्यारा' की माँ न तो किसी आदर्श स्त्री की छवि है और न ही किसी क्रांतिकारी प्रतिरोध की प्रतीक, बल्कि वह उस यथार्थ की प्रतिनिधि है, जहाँ निम्न वर्गीय स्त्री का जीवन श्रम, त्याग और चुप्पी के त्रिकोण में कैद होकर रह जाता है।

वर्गीय चेतना और प्रतिरोध: यद्यपि शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियाँ करुणा में नहीं डूबतीं, फिर भी उनमें प्रतिरोध की चेतना धीरे-धीरे विकसित होती है। यह प्रतिरोध किसी अचानक हुए विद्रोह का परिणाम नहीं, बल्कि जीवन के अनुभवों से उपजी समझ का परिणाम है। कहानी 'छत्ता' में पात्र अन्याय को मौन स्वीकृति देने से इंकार करता है-"अब तक इन्हें जैसा चाहा जोता। जब चाहा तब छोड़ा। न तीज-त्यौहार न कोई छुट्टी। इनने चूं नहीं की। पर अब इनका सुर बदल रहा है"6 यह कथन वर्गीय चेतना के उदय का संकेत है। यहाँ प्रतिरोध उग्र या हिंसक नहीं, बल्कि अनुभवजन्य और बौद्धिक है। यह चेतना जीवन की ठोस परिस्थितियों से जन्म लेती है और धीरे-धीरे सामाजिक प्रश्न का रूप ले लेती है। चौधुरी की कहानी के पात्र जानते हैं कि चुप्पी भी शोषण को मजबूत करती है, इसलिए प्रतिरोध आवश्यक हो जाता है।

पास-पड़ोस कहानी संकलन में शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियों का समावेश इस बात का प्रमाण है कि उनका कथा-यथार्थ केवल व्यक्तिगत अनुभवों तक सीमित नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त कर चुका है। यहाँ 'पड़ोस' केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना का प्रतीक बन जाता है। निम्न वर्गीय जीवन समाज के उसी पड़ोस में रहता है, जिसे अक्सर मुख्यधारा की दृष्टि अनदेखा कर देती है। लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता और कथा की प्रासंगिकता को पुष्ट करता है। उनकी कहानियाँ समय के साथ और अधिक अर्थवान होती जाती हैं, क्योंकि उनमें वर्णित समस्याएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं।

शीतेंद्रनाथ चौधुरी की भाषा सरल, संवादात्मक और जीवन से जुड़ी हुई है। वे न तो अनावश्यक प्रतीकों का सहारा लेते हैं और न ही भाषिक जटिलता का। उनकी कहानियों में संवाद जीवन की स्वाभाविकता के साथ आते हैं, जिससे पात्र और परिस्थितियाँ अधिक विश्वसनीय बनती हैं। यही कारण है कि उनका यथार्थ पाठक को भावुक करने के बजाय सोचने पर विवश करता है।

इस प्रकार शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियाँ निम्न वर्गीय जीवन के सामाजिक - आर्थिक यथार्थ को गहराई, ईमानदारी और प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करती हैं। श्रम, शोषण, स्त्री-विमर्श, वर्गीय चेतना और प्रतिरोध - ये सभी तत्व मिलकर उनके कथा-संसार को हिंदी कहानी की यथार्थवादी परंपरा में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष: यह कहा जा सकता है कि शीतेंद्रनाथ चौधुरी की कहानियाँ हिंदी कथा-साहित्य में निम्न वर्गीय जीवन के यथार्थ का एक सशक्त, प्रामाणिक और विचारोत्तेजक दस्तावेज़ प्रस्तुत करती हैं। उनके कहानी-संग्रहों में संकलित रचनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि लेखक निम्न वर्ग को दया, सहानुभूति या करुणा का निष्क्रिय पात्र नहीं बनाता, बल्कि उसे सामाजिक आर्थिक संरचना के भीतर निरंतर संघर्षरत, श्रमशील और सचेत मनुष्य के रूप में रूपायित करता है। उनकी कहानियों में निम्न वर्ग का जीवन केवल अभाव और पीड़ा का आख्यान नहीं, बल्कि उसमें निहित जिजीविषा, आत्मसम्मान और प्रतिरोध की चेतना भी उद्घाटित होती है।

चौधुरी का यथार्थबोध भावुकता और आदर्शवाद से मुक्त होकर जीवन की ठोस परिस्थितियों से निर्मित है। श्रम, शोषण, गरीबी, स्त्री-जीवन और वर्गीय असमानता जैसे प्रश्न उनकी कथाओं में सामाजिक संरचना की देन के रूप में सामने आते हैं, न कि किसी व्यक्तिगत विफलता के रूप में। इस दृष्टि से उनका कथा-संसार प्रेमचंदोत्तर यथार्थवादी

परंपरा को समकालीन सामाजिक संदर्भ प्रदान करता है और उसे वैचारिक रूप से अधिक सघन तथा प्रखर बनाता है।

अतः इनकी कहानियाँ हिंदी कहानी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए निम्न वर्गीय जीवन के अनुभवों को साहित्यिक अभिव्यक्ति और सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं।

संदर्भ सूची

1. संपादक, श्रीवास्तव, रमाकांत. पास-पड़ोस. मध्य प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन भोपाल, अंकुर प्रकाशन : दिल्ली. प्रथम संस्करण, 1982. पृष्ठ संख्या 29
2. चौधुरी, शीतेंद्र नाथ. छत्ता. दीपा प्रकाशन : गाजियाबाद. प्रथम संस्करण, 2008. पृष्ठ संख्या 36
3. चौधुरी, शीतेंद्र नाथ. हाते से बाहर. कला प्रकाशन : इलाहाबाद. प्रथम संस्करण, 1986. पृष्ठ संख्या 20
4. चौधुरी, शीतेंद्र नाथ. हाते से बाहर. कला प्रकाशन : इलाहाबाद. प्रथम संस्करण, 1986. पृष्ठ संख्या 44
5. चौधुरी, शीतेंद्र नाथ. हाते से बाहर. कला प्रकाशन : इलाहाबाद. प्रथम संस्करण, 1986. पृष्ठ संख्या 44
6. चौधुरी, शीतेंद्र नाथ. छत्ता. दीपा प्रकाशन : गाजियाबाद. प्रथम संस्करण, 2008. पृष्ठ संख्या 94

ईमेल-ssnirala0328@gmail.com

दूरभाष नंबर-6264641047

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 193-200
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बुद्धिलाल पाल की कविता और सामाजिक चिंतन

युगेश कुमार देशमुख
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
शास.वि.या.ता.स्नात.स्वशासी महा. दुर्ग (छ.ग.),
डॉ. पन्नालाल यादव
शोध निर्देशक,
समाधान महाविद्यालय, बेमेतरा (छ.ग.)

शोध सार - यह शोध-पत्र समकालीन हिन्दी कवि बुद्धिलाल पाल की कविताओं में निहित सामाजिक चेतना और चिंतन के विविध आयामों का विश्लेषण करता है। बुद्धिलाल पाल मध्यप्रदेश के ग्रामीण जीवन से जुड़े कवि हैं, जिनकी कविताएँ सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक विसंगतियों के विरुद्ध सशक्त प्रतिरोध का रूप धारण करती हैं। उनके काव्य-संग्रह 'राजा की दुनिया', 'एक आकाश छोटा-सा', 'द्वैभाव्य' तथा 'चांद ज़मीन पर, आदि में शोषित वर्ग, असमानता, धर्म के नाम पर हो रहे विभाजन, शिक्षा के व्यावसायीकरण और सत्ता के दुरुपयोग जैसे विषय प्रमुख हैं।

पाल की कविता समाज में व्याप्त अन्याय, विघटन और आडंबरों के विरुद्ध एक मुखर आवाज़ है। वे प्रतीक और रूपक के माध्यम से 'राजा', 'ईश्वर' और 'शिक्षा' जैसी संस्थाओं की समीक्षा करते हैं, जिससे कविता एक आलोचनात्मक सामाजिक दस्तावेज़ बन जाती है। उनकी भाषा सरल, जन-सुलभ और संवादात्मक है, जो आम व्यक्ति की पीड़ा को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करती है।

बुद्धिलाल पाल की कविताएँ केवल आलोचना नहीं, बल्कि परिवर्तन की संभावनाओं की तलाश हैं। वे समाज में समानता, नैतिकता और विवेकपूर्ण दृष्टि के प्रसार की माँग करती हैं। इस प्रकार, उनका काव्य आधुनिक हिन्दी कविता में सामाजिक उत्तरदायित्व और जनचेतना का महत्वपूर्ण प्रतीक बनकर उभरता है।

बीज शब्द - सामंतवादी विचारधारा, सामाजिक चिंतन, समकालीन कविता, सत्ता, असमानता, चेतना, शिक्षा, धर्म, पर्यावरणीय चिंता, बाजारवाद, मानवता का संदेश, जनवादी दृष्टिकोण, ईश्वर, धर्मांधता, अंधश्रद्धा, पूंजीपति वर्ग।

प्रस्तावना - बुद्धिलाल पाल समकालीन हिंदी कविता के उन सशक्त कवियों में अग्रणी हैं, जिनकी रचनाएँ सामाजिक यथार्थ, मानवीय संवेदनाओं और समय के प्रश्नों को गहनता से अभिव्यक्त करती हैं। उनकी कविता केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समाज की जटिलताओं, उपेक्षित वर्गों के जीवन-संघर्ष, ग्रामीण परिवेश की विडंबनाओं तथा बदलते सामाजिक मूल्यों पर टिप्पणी प्रस्तुत करती है। बुद्धिलाल पाल का सामाजिक चिंतन मानवता की आधारभूत नैतिकताओं को केंद्र में रखकर आगे बढ़ता है, जिसमें सह-अस्तित्व, न्याय, करुणा और

मानवीय गरिमा की अनिवार्यता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनकी कविताओं में भाषा की सहजता, बिंबों की जीवंतता और अनुभवों की प्रामाणिकता पाठक को सीधे सामाजिक सच्चाइयों से रूबरू कराती हैं। इस प्रकार, बुद्धिलाल पाल का काव्य-संसार न केवल काव्यात्मक सौंदर्य का वाहक है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक जागरूक, संवेदनशील और प्रेरक विमर्श भी प्रस्तुत करता है।

शोध आलेख - कवि बुद्धिलाल पाल उन विरले कवियों में से हैं जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में पसरे हुए विद्रूपताओं को ज्यों का त्यों रूप में उजागर करने का प्रयास किया है। पाल की कविता उन विचारों की साधना है, जिनमें राजतंत्र की क्रूरता, पूंजीपति वर्गों के द्वारा शोषण, सामंतवादी विचारधारा, पर्यावरणीय चिंता, मानवता का संदेश, जनवादी दृष्टिकोण, बाजारवाद के प्रति असंतोष और परिवर्तनकामी स्वर लिए हुए एक अलग पहचान बनाने में सफलता अर्जित किया है। उनकी कविताएं समाज में व्याप्त रूढ़िवादी विचारधारा को पोषित करने वाले सामंतवादी शक्तियों का विरोध करती है। और समाज में जनतंत्र को स्थापित करने का आह्वाहन करता है। पाल की कविता सामाजिक रूप से हाशिए पर रह रहे लोगों के हित के लिए अपना स्वर मुखर करता हुआ दिखाई देता है। इनकी कविता समाज में एक नई चेतना का संचार करता है। बुद्धिलाल की कविता एक ओर कुरीतियों पर प्रहार करती है तो वहीं दूसरी ओर पूंजीपतियों के खिलाफ अपना स्वर बुलंद करता हुआ उसे देखा जा सकता है। वर्तमान में लोगों के अंतःकरण या चित्त में धर्म, जाति और संप्रदाय जैसे विचारधाराएं इतने भीतर तक धंस चुके हैं कि आज एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ मनुष्यता का व्यवहार करना भूल सा गया है, ऐसे भयावह समय में बुद्धिलाल पाल की कविता मनुष्यता को बनाए रखने का आह्वान करता हुआ दिखाई देता है। इनकी संपूर्ण हुआ कविताओं में समाज के प्रति व्यापक दृष्टिकोण गोचर होता हुआ नजर आता है। बुद्धिलाल पाल उन विरले कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपने रचना के माध्यम से समाज में फैले हुए धर्मांधता एवं अंध आस्था पर प्रहार करके समाज को एक नई दिशा प्रदान की।

धर्मांधता एवं अंध आस्था पर चोटः-

धर्मांधता सदियों से चली आ रही है, जिसे समय-समय पर साहित्यकारों ने अपने काव्य का विषयवस्तु बनाया है। मध्यकाल में तो संत-साहित्य में कबीरदास आदि संतकवियों ने लगातार समाज को जगाने का प्रयास किया है।

"कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूँडै बन माँहि।
ऐसे घटि घाटे राम हैं, दुनिया देखे नाँहि।"1

उसी भाव को बुद्धिलाल पाल की कविताओं में भी देखा और महसूस किया जा सकता है। उनकी कविता 'पूजा' में उन्होंने कहा है-

"घट घट में बसे है तू।
और हर दिल की बात है जाने तू।"2

यथार्थवादी कविताओं की यह महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि वे धार्मिक बाह्याडम्बर एवं अन्ध आस्था को बेनकाब करने में पुरजोर कोशिश करे। अंधी आस्तिकता पर व्यंग्य करने में बुद्धिलाल पाल का कोई सानी नहीं। उनकी कविता 'अंधी आस्तिकता' ऐसे ही लोगों का पर्दाफाश करता है, जिसने अपनी अंधी आस्था के जरिए शैतान को भी भगवान बना कर समाज के बीच स्थापित कर रखा। ऐसे अंधविश्वासी लोग उनके महिमामंडन के गीत गा रहे हैं। कवि बुद्धिलाल पाल इस भांति के लोगों पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं।

"भगवान को कब्रिस्तान में ढूँढ़ते हैं,
और अन्ततः
शैतान के भक्त हो जाते हैं।"3

इसी तरह 'दृष्टिकोण' कविता में आस्था के प्रतीक बने धर्मग्रंथों या व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं-

"जब कोई व्यक्ति विशेष
या धर्मग्रंथ
बन जाता है-आस्था का प्रतीक
उसका अँधेरा पक्ष भी
स्वीकार कर लिया जाता है
(मान लिया जाता है उज्ज्वल)"4

लोगों के अंध आस्था के कारण विभिन्न दुर्गुणों से युक्त व्यक्ति भी धर्म के ठेकेदार बन बैठते हैं और अमानवीय प्रवृतियों को भी समाज के द्वारा स्वीकार्य कर लिया जाता है। समाज को पथ भ्रष्ट करके गर्त की ओर ले जाने में ऐसे ही लोगों की विशेष भूमिका होती है।

मानवता का संदेश :-

इस क्रूर वर्तमान में लोगों में धर्म, वर्ग जाति, सम्प्रदाय, विचारधाराओं के मध्य खाईयां इतनी बढ़ गयी हैं कि मानव में मानवता का ह्रास होता जा रहा है। इस हास को भरने के लिए साहित्य का दायित्व बनता है कि वे समाज का सही दिशा की ओर मार्ग प्रशस्त करें। बुद्धिलाल पाल की कविताओं में यह संदेश भरपूर मिलता है, वे अपना दायित्व समझते हैं। उनकी कविता 'अनास्था और प्रार्थना' में वे पूछते हैं

"मानव तू क्या मानव है?"5

इस कविता में आगे सामुदायिक विभेद को दूर करते हुए, वे लोगों को एकता और भाईचारा का संदेश देते हुए कहते हैं-

"जन्नत मेरे मन में है
ईसा मेरे मन में है
गीता मेरे दिल में है
गुरुनानक की वाणी है-
नहीं कोई बेईमानी है।"6

बुद्धिलाल पाल के काव्य-संग्रह 'राजा की दुनिया' की कविताओं में भी मानवता की बात को शामिल करते हुए केन्द्रीय पक्ष के रूप में रखा गया है। अंजन कुमार के शब्दों में "यह कविताएँ राजा की अमानवीय दुनिया के बरअक्स मानवीयता का प्रतिसंसार रचती हैं।"7

जनवादी दृष्टिकोण:-

जनवादी चिंतन समकालीन कविता की एक प्रमुख विशेषता है। गणतन्त्र की रक्षा एवं उसके सुगम संचालन के लिए जनवादी होना प्रियकर है। बुद्धिलाल पाल की कविताएँ भी जनवाद की प्रखर सहयोगी चिंतन की ओर अग्रसर हैं, उन्होंने आम जन के दैनिक संघर्ष को आत्मसात कर अपनी कलम से न केवल अभिव्यक्ति दी है अपितु उसे यथार्थ के पलड़े पर तौलने का प्रयास भी निरन्तर किया है। जनता के दुःख को, उसके अंतिम क्षण तक संघर्षरत रहने की विवशता को, दो वक्त की रोटी की जुगाड़ में मृत्यु तक की यात्रा नाप देने वाली जनता के पक्ष को अभिव्यक्त करने में जनवादी कवि पीछे नहीं रह सकता, बुद्धिलाल पाल की कविताओं में जनता का पक्ष देखा जा सकता है।

"नून, तेल, लकड़ी के लिए
भागती रही, भागती रही
खटती रही उम्र भर

कोल्हू के बैल तरह
उसकी आँखें
मृत्यु देवता के दर्शन तक
रोटी में, लंगोटी में
छप्पर में टंगी रही।"8

जनता की इस दीन-हीन स्थिति का जिम्मेदार कौन है? एक तरफ पूँजीपतियों के पास देश का सारा धन इकट्ठा हो रहा है और दूसरी और कोई दो वक्त की रोजी-रोटी की जुगाड़ में मृत्यु को प्राप्त हो रहा है। यह अमीरी और गरीबी की खाई निरन्तर गहरीहोती जा रही है। सरकारें गरीबी हटाओ के नारे बस लगाती रह जाती हैं। गरीब जनता को आश्वासन के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता है। गरीबी भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती जा रही है। गरीब और गरीब हो रहा है और अमीर और अमीर। नेता गरीबों की गरीबी को भी चुनाव जीतने का हथियार बना रहे हैं। बुद्धिलाल की कविता 'गरीबी और पोस्टर में गरीबी की विद्रूप स्थति को देखिए-

"जब भूख धरोहर में मिलती हो
तो आश्वासन भी खाली नारों में ही मिलते है
और हर बार नारों में तुम
दीवार की पोस्टर की तरह
चिपका दिये जाते हो।"9

जनवादी दृष्टि बुद्धिलाल पाल की कविताओं की आत्मा है। उनके काव्य संग्रह 'चाँद जमीन पर' और 'राजा की दुनिया' की कविताओं में जनवादी दृष्टिकोण पर आसानी से दृष्टिपात किया जा सकता है।

राजतंत्र के विरुद्ध एक मुहिम :-

बुद्धिलाल पाल जनतंत्र के प्रबल पक्षधर हैं और राजतंत्र के कट्टर विरोधी। वे जनतंत्र के अंदर बैठे राजतंत्र के पैरोकारों पर भी लगातार तीखा व्यंग्य करते हैं। उनकी कविताएँ राजसत्ता के मायाजाल को बेनकाब करने में तथा राजा के उज्ज्वल सौन्दर्य के पीछे छिपे घिनौने चेहरे को सबके सामने लाने में कोई कसर नहीं छोडती। पाल ने अपनी कविता 'मायाजाल' में राजा का जनता के प्रति शुभचिंतक दिखने एवं जनता के लिए खतरे से खेलने का अभिनय करने की चालबाजी को भी अभिव्यक्ति दी है।

“वह राजा है
जादूगर की तरह
रस्सी पर चढ़ता है
हमें दिखाई नहीं देता है
—----------
जैसे कि वह
जनता के लिए
बहुत खतरे में है।”10

राजा की प्रवृत्ति ही सदा से जनता को भ्रम में रखने की है। जनता को लगता है कि राजा दयालु है, वह उनके लिए अनेक लाभकारी योजनाएँ बनाता है, किन्तु वास्तवमें राजा अपनी पेटी भरने के बहाने खोजता रहता है। अरविन्द अवस्थी का कहना है कि "क्या वर्तमान में ऐसा देखने को नहीं मिल रहा है कि जनता मंहगाई और भ्रष्टाचार से बुरी तरह पस्त है और सरकारें कोरा ढांढस बंधाती हुई यह दिखावा करती हैं कि वे आम आदमी के भी सुख-सुविधाओं के लिए बहुत खतरे उठा रही हैं।"11

वीरगाथा काल और रीतिकाल की सर्वाधिक कविताएँ राजाओं की चाटुकारिता के लिए ही लिखी गयी हैं। तब दरबारी कवि आश्रयदाता राजा के व्यक्तित्व को बढ़ा-चढ़ा करके उनकी प्रशस्तिगान किया करते थे। आज का दौर भी कुछ ज्यादा बदला नहीं है। तब राजा एवं सामंत हुआ करते थे, अब नेता और पूँजीपति हैं। ऐसे दौर में बुद्धिलाल की कविताएँ जनता के पक्ष को दृढ़ता के साथ प्रस्तुत करती हैं। अनवर हुसैन के शब्दों में "बुद्धिलाल पाल की कविताएँ राजाओं की मानसिकता और प्रजा की बेचारगी का बयान करती हैं।"12

वास्तव में राजा एक वर्चस्ववादी शक्ति का प्रतीक है जो हर उस व्यक्ति में हो सकती है, जो अपने से निम्नतर व्यक्ति का शोषण करता है या शोषक का सहायक होता है।राजा यहाँ पर एक व्यक्ति या पद नहीं वरन एक प्रवृत्ति है जिसे हम वर्तमान प्रजातंत्र में भी देख और भोग रहे हैं।

'राजा की दुनिया' कविता के माध्यम से बुद्धिलाल पाल, राजा एवं राजतंत्र के विरुद्ध एक मुहिम छेड़ रहे हैं।

पर्यावरणीय चिन्ता :-

आदिकालीन, भक्तिकालीन, रीतिकालीन हिन्दी कविताओं सहित आधुनिककालीन पूर्ववर्ती कालखण्डों में प्रकृति के विभिन्न अवयवों का आलम्बन एवं उद्दीपन विभाव के रूप में प्रयोग होता था अर्थात् नायक-नायिका के सौन्दर्य वर्णन अथवा विरहादि दृश्यों को मार्मिक बनाने के दृष्टिकोण से प्रकृति के विभिन्न उपादानों जैसे जंगल, नदी, पर्वत, झरने, पशु-पक्षी, मेघ, वर्षा, खेत, हरियाली आदि का सहायक के रूप में प्रयोग किया जाता था। तब प्रकृति सचमुच सुंदर थी।"समकालीन दौर का पर्यावरण साहित्य बताता है कि किस प्रकार प्रकृति के अतीत गाथा गौरवमयी रही और धीरे-धीरे नील गगन, मलयज-पवन, पावन-निर्मल जल और हरियाली से युक्त प्रकृति मानवी अत्याचार से क्षत-विक्षत हो गयी। कुल्हाड़ियों के भय से जंगल कराहने लगा है।"13 जैसे-जैसे मानव आधुनिक होता गया, वह गाँवों को छोड़ शहरों की ओर पलायन करता गया, मिट्टी के घरों ने कॉक्रीट के घरों का रूप ले लिया, प्रदूषण अपने चरम पर आ गया, ऐसे में आज का कवि प्रकृति के सौन्दर्य की अपेक्षा उसके यथार्थ स्वरूप को उकेरने को अपना कर्तव्य समझता है। बुद्धिलाल पाल की चिन्ता प्रकृति के इसीयथार्थ स्वरूप को उकेरने में है। वे उनकी 'बस्तर' कविता में आदिवासियों की विडम्बनापूर्ण जीवन पर लिखते हैं-

"साल, सागौन, हरो, बेहरा, महुआ के पेड़
जिनसे लिपटकर वह रो सकता था
वे भी अब उसके अपने नहीं रहे
घास-फूस की झोपड़ियाँ
जिनकी दीवारों में सिर टिकाकर
सुस्ता लेता था
वे भी अब उसकी अपनी नहीं रहीं।"14

कल-कारखानों को लगाने के लिए जंगल के जंगल काटे जा रहे हैं, जंगलों में रहने वाले आदिवासियों को विस्थापित किया जा रहा है। ऐसे दौर पर्यावरण सौन्दर्य के गीत गाने का नहीं है। यह बुद्धिलाल पाल बखूबी समझते हैं। शायद इसीलिए प्रकृति पर उन्होंने बहुत कम कविताएँ लिखी हैं, किंतु जितनी भी लिखी हैं, इसी तर्ज पर लिखी हैं। लगातार आधुनिक होता हुआ समाज पर्यावरण से दूर होता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण चरम पर है, दिल्ली जैसे शहरों में साँस लेना दूभर होने लगा है। खेती और फैक्ट्रियों के विस्तार के लिए लगातार जंगल काटे जा ही रहे हैं, दावानल आदि प्राकृतिक आपदाओं से जंगल पर दोहरी मार पड़ रही है किन्तु तथाकथित बुद्धिजीवी एवं पर्यावरणविद् ए.सी. की कमरों में बैठे-बैठे जंगल बचाने की चिंताओं में व्यस्त हैं। इस पर बुद्धिलाल पाल कहते हैं -

"अगस्त्य ने जो पी रखा है समुद्र
उसी की टोह लगाने भर की सोचता हूँ

पर सोचता हूँ ऐसे में
समुद्र भी मिल जाएगा तो
क्या होगा क्या आग बुझ जाएगी ?
यह मेरी कोरी कल्पना है,
जिस दिन तक समुद्र मिलेगा
उस दिन तक शायद जंगल का
जंगल झुलस गया होगा
इसीलिए मुझसे बेहतर तो चिड़िया ही है।"15

पाल की उपर्युक्त कविता में प्रत्येक मनुष्य अपने सामर्थ्यानुसार पर्यावरण को बचाने के लिए प्रतिबद्ध हो। पर्यावरण को बचाने हेतु छोटे-छोटे ही सही परन्तु अपने कार्य को परिणति दे और अपना योगदान समझे, इसका अप्रत्यक्ष आह्वान किया गया है।

परिवर्तनकामी स्वर :-

बुद्धिलाल पाल की कविताओं में परिवर्तन की कामना का स्वर मुखर हैं। वे क्रान्ति का बिगुल फूंकते दिखाई देते हैं। ईश्वर, अंध-श्रद्धा, साम्प्रदायिक सोच, राजतंत्र आदि पर लगातार व्यंग्य करते हैं। 'राजा की दुनिया संग्रह में राजतंत्र एवं उसके विविध आयामी पर कुठाराघात करती उनकी कविताएँ प्रसिद्ध हैं। निर्मल आनंद लिखते हैं-"धर्म जिस तरह से लोगों के विचारों को कुंद कर रहा है, विवेक को भोथरा बना रहा है। हम चाँद पर पहुँच गये हैं फिर भी धर्म और ईश्वर से मुक्त नहीं हो पाये हैं। अपनी 'धार्मिकता' कविता में पाल इस बात का पर्दाफाश करते हैं।"16 पाल का कहना है कि धार्मिक व्यक्ति बहुत अच्छे होते हैं, उनकी भावनाएँ भी बहुत अच्छी होती हैं, लेकिन उनके विचार बहुत खराब होते हैं क्योंकि उनकी सोच में दूसरे धर्म का व्यक्ति स्वीकार्य नहीं होता।

"धार्मिक व्यक्ति
बहुत अच्छे होते हैं
बहुत अच्छी होती हैं
उनकी भावनाएँ
कोमल, लचीली, और निर्मल
बहुत खराब होते हैं।
उनके विचार
उनकी सोच
उनकी सहिष्णुता
जिसमें दूसरे धर्म का
कोई व्यक्ति
स्वीकार नहीं होता है।"17

इस कविता में पाल की समझ अपरिपक्व लगती है। कोई व्यक्ति जिसकी भावनाएँ अच्छी हों, जिसकी भावनाएँ कोमल, निर्मल, लचीली हो, उसमें अन्य धर्म के व्यक्ति के प्रति अनावश्यक असहिष्णुता थोपना कहाँ तक सही है? लेकिन पूरी कविता का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि इनकी कविता कबीर की उलटबाँसी लिए हुए धार्मिक व्यक्ति पर व्यंग्य प्रहार कर रहा है।

बाजारवाद के प्रति असंतोष :-

यह दौर बाजार का है। आज हम जो कुछ भी सोचते हैं, बहुत संभव है कि उसे बाज़ार तय करता है। हमारा रहन-सहन, खान-पान, चाल-चलन सब पर बाजार हावी है। मोबाइल, टी. वी., समाचार पत्र-पत्रिकाएँ सबमें बाजार के लिए निर्मित विज्ञापनों का अंबार लगा हुआ है। हम न चाहते हुए भी विज्ञापनों से बच नहीं सकते। हमारे दिमाग में ये विज्ञापन तैरते रहते हैं और हम वही खरीद लेते हैं जो बाजार चाहता है। पाल की कविता 'नये मालिक' में बाजार के निर्माता पूँजीपतियों को नया राजा अर्थात् आज के दौर का राजा घोषित करते हुए कवि कहता है-

"उनकी नज़रों में
हम सिर्फ बाजार
जैसे वस्तु से
वस्तु की तुलना"18

बाजार के लिए प्रत्येक व्यक्ति उपभोक्ता है। पूँजीपति वर्ग इस बात को जानता है। विकसित देश अब भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देशों की ओर अपनी बाजारवादी खूनी पंजा फैलाने लगे हैं। निर्मल आनंद कहते हैं- "अमेरिका जिस तरह से सारे विश्व को अपनी बाजारवादी नीतियों से फॉसने में लगा है, सारे विकसित, अर्धविकसित देशों में अपना बाजार फैला रहा है, यह सोचनीय मुद्दा है।"19 बुद्धिलाल की कविता 'नया राजा' कविता में यह चिंता देखी जा सकती है-

"देखो, वो देखो
आंधी की तरह धूल उड़ाता
चला आ रहा है
वह बम धमाकों के साथ
मानवाधिकार की दुहाई देता
हम सबका
हमारी दुनिया का
नया राजा
सात समुन्दर पार से
पूरे ठाठ-बाट से।"20

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि बुद्धिलाल पाल की कविताओं में समकालीन भाव-बोध के साथ-साथ कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी अभिव्यक्त हुई हैं। सपाटबयानी, व्यंग्यात्मकता, परिवर्तनकामी स्वर, जनवादी चितन, पर्यावरणीय चिंता, बाजारवाद के प्रति असंतोष की भावना आदि प्रवृत्तियाँ पाल की कविताओं के मुख्य स्वर हैं।निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि बुद्धिलाल पाल की कविताएँ समाज की सच्चाइयों का दर्पण हैं, जो शोषण, असमानता, धर्म, सत्ता और शिक्षा की विसंगतियों को उजागर करती हैं। उनकी भाषा सरल होते हुए भी गहरी सामाजिक चेतना से ओतप्रोत है। वे आम जन की पीड़ा को स्वर देते हैं और परिवर्तन की राह सुझाते हैं। उनकी कविताएँ केवल विरोध नहीं, बल्कि जागरण और सुधार की प्रेरणा देती हैं। इस प्रकार, बुद्धिलाल पाल का काव्य हिन्दी साहित्य में सामाजिक जिम्मेदारी, संवेदनशीलता और मानवीय मूल्यबोध का सशक्त दस्तावेज़ बनकर स्थापित होता है।

संदर्भ सूची-

1) दास, श्यामसुन्दर, कबीर ग्रंथावली परिमार्जित पाठ, राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली, पहला परिमार्जित संस्करण, 2023, पृष्ठ संख्या 231.
2) पाल, बुद्धिलाल, चांद जमीन पर, श्री प्रकाशन : कसारीडीह दुर्ग, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ संख्या 75.

3) पाल, बुद्धिलाल, चांद जमीन पर, श्री प्रकाशन : कसारीडीह दुर्ग, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ संख्या 13.
4) पाल, बुद्धिलाल, चांद जमीन पर, श्री प्रकाशन : कसारीडीह दुर्ग, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ संख्या 18.
5) पाल, बुद्धिलाल, चांद जमीन पर, श्री प्रकाशन : कसारीडीह दुर्ग, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ संख्या 53.
6) पाल, बुद्धिलाल, चांद जमीन पर, श्री प्रकाशन : कसारीडीह दुर्ग, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ संख्या 54.
7) कुमार, डॉ. अंजन, सर्वनाम, जुलाई-सितम्बर 2011, वर्ष 26, अंक 103, पृष्ठ संख्या 66-67.
8) पाल, बुद्धिलाल, राजा की दुनिया, यश पब्लिकेशन्स : दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 35.
9) पाल, बुद्धिलाल, चांद जमीन पर, श्री प्रकाशन : कसारीडीह दुर्ग, प्रथम संस्करण, 1993, पृष्ठ संख्या 20.
10) पाल, बुद्धिलाल, राजा की दुनिया, यश पब्लिकेशन्स : दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 12.
11) अवस्थी, अरविंद, आकंठ, दिसंबर 2011, वर्ष 10, अंक 127, पृष्ठ संख्या 47.
12) सुहैल, अनवर, संकेत, अप्रैल-जून 2011. अंक 8, पृष्ठ संख्या 25.
13) http://ginajournal.com/paryavarniye-chetna/
14) पाल, बुद्धिलाल, चयनित कविताएँ, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन : नई दिल्ली, प्रथम सस्करण, 2023, पृष्ठ सं.110.
15) पाल, बुद्धिलाल, वैभाव्य, एकलव्य प्रकाशन : दुर्ग, प्रथम संस्करण,1992,पृष्ठ संख्या 16.
16) आनंद, निर्मल, वागर्थ, संपादक एकांत श्रीवास्तव, सितम्बर 2011, पृष्ठ संख्या 109.
17) पाल, बुद्धिलाल, राजा की दुनिया, यश पब्लिकेशन्स : दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 79.
18) पाल, बुद्धिलाल, राजा की दुनिया, यश पब्लिकेशन्स : दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 86.
19) आनंद, निर्मल, वागर्थ, संपादक एकांत श्रीवास्तव, सितम्बर 2011, पृष्ठ संख्या 109.
20) पाल, बुद्धिलाल, राजा की दुनिया, यश पब्लिकेशन्स : दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ संख्या 50.

ईमेल-ssnirala0328@gmail.com
दूरभाष नंबर-9752678070

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 201-206
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी भाषा एवं समाज में योगदान : महर्षि दयानंद सरस्वती

साक्षी शर्मा
शोधार्थी (पीएच. डी. हिंदी),
प्रोफेसर डॉ. सुनीता मच्छिन्द्र मोटे
शोध निर्देशक,
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसन्धान केंद्र
कॉलेज : न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइंस कॉलेज, (स्वायत्त) अहिल्यानगर
विश्वविद्यालय : सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महाराष्ट्र)

दयानंद सरस्वती जिनका वास्वतिक नाम मूलशंकर था, मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण तथा परिवार सहित भगवान शंकर के उपासक होने के कारण माता – पिता द्वारा मूलशंकर नाम दिया गया, मूलशंकर का जन्म सन् 1824 में गुजरात प्रान्त के काठियावाड़ संभाग के मोरवी राज्य के एक छोटे से गाँव टंकारा के ब्राह्मण परिवार में हुआ था, मूलशंकर से दयानंद सरस्वती बनने के पीछे बालक मूलशंकर के मन में उत्पन्न आलोचनात्मक विचारो का परिणाम पड़ा, एवं वही से दयानंद सरस्वती जी की जीवन यात्रा का आरम्भ हुआ, बचपन में महाशिवरात्रि की रात में मूलशंकर द्वारा उठे सवालों ने मूलशंकर के भीतर आलोचनात्मक दृष्टि को जन्म दिया, तथा इक्कीस वर्ष की आयु में विवाह एवं गृहस्थ जीवन का त्याग कर, गुरु की खोज ने मूलशंकर को दयानंद सरस्वती बनाया, दयानंद सरस्वती जी की भाषा गुजराती थी, परन्तु संस्कृति एवं धर्मशास्त्रों का ज्ञान उनके पिता द्वारा बचपन से दिया गया, इसी ज्ञान के चलते दयानंद जी संस्कृत के वाक्यों का प्रयोग करते तथा तर्क – वितर्क में धाराप्रवाह संस्कृत बोलते थे,

दयानंद जी को समाज सुधारक, महान विचारक के रूप में एवं हिन्दी भाषा में अपना योगदान देने के लिया जाना जाता है, दयानंद सरस्वती ने '**आर्य समाज**' की स्थापना की, एवं '**सत्यार्थप्रकाश**' जैसी प्रसिद्ध पुस्तक की रचना कर समाज कल्याण में अपना बहुमूल्य देकर समाज को एक नयी दिशा दी, दयानंद जी को धर्म मर्मज्ञ, शिक्षाविद् के रूप में भी ख्याति प्राप्त हैं, दयानंद जी द्वारा '**वेदों की ओर पुन: लोटो**' जैसे नारे दिए गये, जिसके पीछे का कारण वेदों से पुन: जुड़ना एवं जीवन में पुन: वापस लाना हैं.

दयानंद सरस्वती द्वारा समाज में योगदान : दयानंद जी ने समाज कल्याण के लिए अनेको महत्वपूर्ण कदम उठाये तथा समाज में संतुलन बनाये रखने एवं समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के लिए समाज सुधारक के रूप में अपने महान विचारो एवं संघर्षो द्वारा परिवर्तन लाने का कार्य किया, तथा समाज को एक नई दिशा की ओर अग्रसर किया, एवं

सकारात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से मनुष्य जीवन को सफल बनाने का श्रेष्ठ प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप आज मनुष्य अनेको कुरीतियों से मुक्त होकर, एक सशक्त जीवन निर्वाह कर समाज को विकसित करने में अपना योगदान दे रहा हैं,

सामाजिक अन्धविश्वासों का विरोध : समाज में फैली कुरीतियों व अन्धविश्वासों का कड़ा विरोध दयानंद जी द्वारा किया गया, जिसमें छुआछूत, ऊँच – नीच, जात – पात, बाल – विवाह, सती- प्रथा, पर्दा प्रथा, मूर्तिपूजा, बाह्य-आडंबर, पशुबलि, नरबलि, बहुविवाह, आदि का विरोध किया, तथा इन सब के सुधार कार्य के लिए, अनेको प्रयास कर सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाने का अत्यधिक प्रयास किया, एवं अपनी आलोचनात्मक दृष्टि से, तर्क – वितर्क से, विचारो से, रूढ़िबद्ध पंडितों का कड़ा विरोध कर, सामाजिक कुरीतियों को दूर कर समाज कल्याण व समाज सुधार में अनंत प्रयास किये.

शुद्धि आंदोलन : दयानंद जी द्वारा शुद्धि आन्दोलन को चलाने के पीछे धर्म परिवर्तन कर चुके हिन्दुओं को पुन: हिन्दू धर्म में वापस लाने का प्रयास था, जो हिन्दू अपना धर्म परिवर्तन कर ईसाई या इस्लाम धर्म में परिवर्तित हो चुके थे, उन्हें पुन: हिन्दू धर्म की ओर मोड़ने का कार्य इस आन्दोलन के अंतर्गत किया गया, इसी आन्दोलन के चलते एंटी बेसेंट ने दयानंद जी के लिए कहा था, दयानंद जी ही पहले ऐसे व्यक्ति है, जिन्होंने कहा है, कि भारत भारतीयों के लिए है.

महिलाओं की शिक्षा : दयानन्द जी ने महिलाओं की शिक्षा व समानता के अधिकारों का पुरजोर समर्थन कर, महिलाओं के शोषण के विरुद्ध विरोध प्रकट किया, स्त्रियों का स्थान सर्वोपरि एवं सम्मान जनक वैदिक काल से रहा है, दयानंद जी ने अपने महान विचारो से स्त्रियों की वही पुरानी सम्मान जनक स्थिति एवं सर्वोपरि स्थान वापस लाने का महान कार्य किया, तथा स्त्रियों को दयनीय दशा से बाहर निकालने का कार्य किया, तथा स्त्रियाँ भी पुरुषो की भाति पढ़-लिख सकती है, एवं पुरुषो की भाति ही समानता लिए हुए है, जैसे महान विचारो से समाज को परिचित कराया,

स्वतंत्रता आन्दोलन : दयानंद जी ने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान भारतीयों को विदेशी शासन व विदेशी नीतियों से परिचित कराकर जनता को उचित ज्ञान दिया, तथा विदेशी शासन से हो रहे अन्याय व हानि के प्रति लोगो को सचेत कर, भारतीयों का मार्गदर्शन किया, एवं राष्ट्रहित के कार्यों के प्रति प्रेरित कर उनको सार्थक प्रयास करने के लिए जागरूक किया, इसके साथ ही विदेशी शासन व्यवस्था का कड़ा विरोध दयानंद जी द्वारा किया गया, तथा 'भारत भारतीयों का है' जैसे नारे का प्रयोग भी स्वतंत्रता आन्दोलन के समय किया, एवं अपने विचारो से पूरे देश में क्रांति लाने का सफल प्रयास कर, परिवर्तन लाने की दिशा में सार्थक कार्य किये.

अनुसूचित जाति के लिए उद्धार कार्य : दयानंद जी ने अनुसूचित जाति के लोगो के लिए उद्धार कार्य किये, एवं सभी वर्गों द्वारा शोषण का शिकार होने के कारण अनुसूचित समाज को दयनीय स्थिति से उभारने के लिए समाज के सभी वर्गों के समक्ष समानता का भाव जाग्रत कर, एवं सभी लोगो के हित कार्य के अनुसार कार्य करने का अनुरोध किया तथा शोषण के प्रति विरोध कर अनुसूचित समाज को उभारने का कार्य किया.

विधवा विवाह का समर्थन : दयानंद जी द्वारा विधवा विवाह का समर्थन कर समाज का विरोध एवं प्रबल विचारधारा द्वारा अनुरोध कर समझाने का कार्य किया, जिस प्रकार एक पुरुष स्त्री की मृत्यु के पश्चात् पुन: विवाह कर सकता है, उसी प्रकार स्त्री भी पुरुष की मृत्यु पश्चात् पुन: विवाह कर सकती हैं, एवं खुशहाल गृहस्थ जीवन व्यतीत कर सकती हैं, स्त्री एवं पुरुष दोनों ही समान है, एवं समानता के अधिकार से विधवा विवाह को मान्य बनाने का भी पुरजोर समर्थन दयानंद जी द्वारा किया गया.

तर्क व वेदों का ज्ञान : दयानंद जी तर्क व वेदों के ज्ञान को अधिक महत्व देते हैं, उनके अनुसार किसी भी कार्य को करने से पूर्व देखो, परखो, और निष्कर्ष निकालो, केवल श्रद्धा भक्ति को आधार बनाकर कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि बिना सोचे – समझे कार्य करना घातक सिद्ध हो सकता हैं, श्रद्धा, भक्ति के साथ तर्क संगत उत्तर मिलने पर कार्य को करना उचित माना जाता हैं, इसके साथ ही वेदों का ज्ञान दयानंद जी के लिए विशेष महत्व रखता है, क्योकि वेदों का ज्ञान तर्कसंगत एवं उचित होता हैं, व वेदों के ज्ञान को जीवन में उपयोगी बनाने का समर्थन दयानंद जी ने सदैव किया हैं,

योग एवं प्राणयाम : दयानंद जी समाज के लोगो को योग के प्रति जागरूक करते भी दिखाई देते हैं, एवं योग से मिलने वाले लाभ से समाज के लोगो को परिचित कराते तथा योग द्वारा निरोगी काया प्राप्ति का सूत्र बताते नज़र आते है, एवं योग को जीवन का एक अभिन्न भाग बनाने का समर्थन करते दिखाई देते हैं, इसके साथ ही लोगो को योग से जुड़ने का आग्रह कर योग का जीवन में विशेष महत्व बताते हैं.

स्त्री – पुरुष समानता पर बल : दयानंद जी द्वारा स्त्री – पुरुष समानता पर मुख्य रूप से बल दिया गया हैं, एवं समाज में फैली असमानता का विरोध कर समझाया गया हैं, कि ईश्वर के समक्ष प्रत्येक प्राणी समान हैं, तो समाज में असमानता का भाव उत्पन्न करना अनुचित एवं अन्यायपूर्ण है, स्त्रियाँ भी पुरुषो की भाति समान एवं स्वतंत्र प्राणी हैं, एवं समान अधिकार की हकदार है, तथा समाज द्वारा स्त्रियों पर हो रहे शोषण व दयनीय स्थिति का कड़ा विरोध दयानंद जी करते हैं.

सामाजिक समानता का समर्थन : दयानंद जी समाज में समानता का भाव जाग्रत कर सामाजिक समानता पर बल देते हैं, तथा स्त्रियों, उपेक्षित वर्गों की दयनीय स्थिति का विरोध कर सभी को समान अधिकार देने का पुरजोर समर्थन करते हैं, एवं समाज की स्थिति में सुधार तभी संभव हैं, जब सभी समान रूप से स्वत्रंत रूप में अपना जीवन व्यतीत कर सके, वह समाज का कल्याण, सामाजिक समानता के साथ मानते हैं.

राष्ट्रीयता की भावना : दयानंद जी ने अपने उपदेशो के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना को उजागर कर राष्ट्र को संबोधित किया हैं, जगह – जगह घूम कर दयानंद जी ने राष्ट्र की चुनौतियों को समझा तथा भारतीयों को प्रेरित किया, दयानन्द जी की मातृभाषा गुजराती थी, परन्तु संस्कृति का ज्ञान बचपन से उनके पिता द्वारा दिया, एवं राष्ट्र को जोड़ने के लिए दयानन्द जी ने हिन्दी भाषा को सीखा तथा राष्ट्र हित के लिए अपनी रचनाये भी हिन्दी भाषा में लिखी, दयानन्द जी ने ही प्रथम बार स्वराज एवं स्वदेश जैसे शब्दों का प्रयोग किया.

शिक्षा में योगदान : दयानन्द जी ने समाज को उभारने के लिए परंपरागत असंगत रुढियों का विरोध कर उचित एवं सार्थक शिक्षा देने का प्रयास किया, एवं समाज को शिक्षा द्वारा सुधारने का भरपूर कार्य किया, जिसके लिए गुरुकुल एवं दयानंद एंगलो वैदिक विद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षा संस्थाये स्थापित किये, इसमें दयानंद जी के उपदेशो, विचारो के आधार पर समाज को शिक्षित करने का सार्थक प्रयास किया गया.

दयानंद सरस्वती का हिन्दी भाषा में योगदान : दयानंद जी की मातृभाषा गुजराती थी, एवं संस्कृति में वह महान पंडित थे, अपने जीवन काल के शुरूआती समय में वह विभिन्न जगहों के भाषा-भाषी लोगो से सरल संस्कृत में बात करते थे, यह भी माना जा सकता हैं, कि इक्कीस वर्ष की आयु में गृहत्याग कर, संन्यास लेने के लिए देश भर में भ्रमण करते हुए वह छुट – पुट हिन्दी समझने व बोलने लगे हो, परन्तु अपने विचारो को सभी के समक्ष प्रस्तुत करने में वह तब भी संस्कृत का प्रयोग करते थे, बंगाल में भ्रमण के दौरान केशवचन्द्र सेन एवं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अनुरोध पर उन्होंने हिन्दी [लोक भाषा] में प्रचार – प्रसार करना आरम्भ कर दिया था, तथा बंगाल प्रवास से दयानंद जी के जीवन में एक नया मोड़ जुड़ गया, तथा उनका हिन्दी की ओर रुझान बढ़ता गया, दयानंद जी ने हिन्दी लिखना, बोलना, सीखा व

समाज में अनेको परिवर्तन योग्य कार्य किए, पहली बार मार्च 1873 में दयानन्द जी ने केवल हिंदी से जुड़े पद्रन्ह माह पश्चात् ही, आयु के 50वे साल में काशी में अपना पहला हिन्दी भाषण दिया, उनका भाषण केवल साधारण भाषण न होते हुए, विचार प्रधान भाषण बना, जिसको तर्कों एवं धर्मग्रंथो के प्रमाण के साथ स्वीकार किया गया एवं विरोधियों को कड़ा जवाब मिला, प्रथम भाषण से उन्होंने बड़ी सूझ – बुझ से हिन्दी भाषी लोगो को प्रेरित कर, प्रमाणित किया, तथा लोकभाषाओं से सभी लोगो को संबोधित कर, अपने विचारो की गंभीरता को व्यक्त किया,

दयानंद जी ने जिस समय हिन्दी को अपने विचारों एवं जनता से जुड़ने का माध्यम बनाया, उस समय हिन्दी का प्रचलन शुरुआती समय में था, इससे पूर्व हिन्दी अपनी जड़े ज़माने के लिए प्रयारत थी, इतिहासकारों के अनुसार हिन्दी गद्य का वास्तविक आरंभिक काल उन्नीसवी सदी के आरंभ से माना जाता हैं, तथा इससे पूर्व हिन्दी को लोक भाषा बनाने व समर्थन के लिए हर साहित्यकार अपने – अपने प्रयास में लगा हुआ था, दयानंद जी भी 1873 से पूर्व अपने भ्रमण काल के दौरान संस्कृत का प्रयोग करते थे, परन्तु केशवचंद्र सेन के आग्रह करने पर वह हिन्दी की ओर झुके, तथा नौ वर्ष के अल्पकाल [1873 – 1883] के दौरान उन्होंने महान से महान कार्य कर सबको अचंभित किया, जो करना हर किसी के लिए असंभव मात्र था, उन्होंने अपने सभी व्याख्यानों की भाषा में हिन्दी को प्रधानता दी, तथा इसके पश्चात् प्रत्येक व्याख्यान हिन्दी में दिए, सभी ग्रन्थ हिन्दी में लिखना आरंभ किये, शास्त्रार्थ का ज्ञान हिन्दी में देना आरम्भ किया, पत्र- व्यवहार की भाषा में भी हिन्दी सामने आने लगी, सभी विज्ञापन हिन्दी में प्रकाशित हुए, उनके आदेश पर आर्यसमाज में पत्र – पत्रिकाओ की भाषा हिन्दी हो गयी, तथा हिन्दी भाषा के लिए नई- नई पाठशालाए खोली गई, उन्होंने आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए हिन्दी पढना, पढाना अनिवार्य कर दिया, तो वही दयानंद जी ने भी हिन्दी को देश की भाषा बनाने के लिए बहुत अधिक कार्य किये, जो हिन्दी भाषी तक नहीं कर सके, दयानंद जी ने समझा, भारत देश को एकता में पिरोये रखने के लिए हिन्दी ही सर्वश्रेठ भाषा हैं, हिन्दी भाषा के बिना देश में एकता कायम करना असंभव कार्य हैं,

मातृभाषा गुजराती होने के पश्चात् भी हिन्दी का पुरजोर समर्थन किया तथा देश में एकता कायम करने, एवं राष्ट्र को संबोधित करने, तथा समाज के कल्याण के लिए हिन्दी भाषा से उत्तम अन्य कोई भाषा नहीं हो सकती, दयानंद जी स्वयं यह बात बोलते हैं, कि ''जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा, आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य – संपादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रन्थ आर्य भाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं,'' दयानंद जी देश को आर्यावर्त तथा देशवासियों को आर्य कह कर संबोधित करते हैं, वह अन्य भाषाओ का भी समर्थन करते हैं, परन्तु हिन्दी भाषा आर्यावर्त की भाषा हो जिसका समर्थन स्वामी जी करते हैं, दयानन्द जी ने स्वतंत्रता आन्दोलन के समय में भी अपने व्याख्यानों के माध्यम से सर्वसाधारण को संबोधित किया, तथा हिन्दी में दक्षता हासिल कर, स्वयं शुद्ध हिन्दी लिखना, पढना, बोलना, सीख गये, तथा जनता को अपने विचारों, उपदेशों से अवगत कराते हुए जनता के हृदय में प्रभावशाली रूप से अपना स्थान कायम किया, दयानंद जी का व्याखान सुनने भारी संख्या में भीड़ उमड़ पड़ती थी, तथा विरोधी समाज दयानंद जी के खिलाफ षड़यंत्र रच उनके समाज कल्याण, देशहित के रास्ते में बाधा उत्पन्न करते, परन्तु सदैव मुँह की खाते, दयानंद जी ने शुद्ध एवं परिमार्जित हिन्दी का उच्चारण कर समाज को एक नयी सीख प्रदान की, तथा हिन्दी सीखने, पड़ने वालो के लिए प्रोत्साहन का कार्य किया, एवं हिन्दी के उभरते रूप में हिन्दी की विकास यात्रा में अपना बहुमूल्य योगदान देकर समाज को आगे बढ़ाने का कार्य किया.

दयानंद जी द्वारा दिए गए व्याखान, उपदेशों का समाज पर सकरात्मक प्रभाव पड़ा, तथा समाज में सुधार एवं परिवर्तन दिखाई देने लगे. उन्होंने हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए अनेक हिन्दी शिक्षा संस्थान खोले, जिससे

हिन्दी साहित्य उभर कर आ सके, तथा अधिक से अधिक जनता हिन्दी साहित्य से जुड़ सके, तथा समाज में हिन्दी मुख्य भाषा के रूप में स्थापित की जा सके, दयानंद जी ने साहित्य में अपना भरपूर योगदान दिया तथा समाज कल्याणकारी के रूप में अपनी अह्म् भूमिका से सभी को परिचित कराया.

आर्य समाज का उद्देश्य : आर्य समाज की स्थापना दयानंद सरस्वती ने 1875 में बम्बई में की, आर्य समाज को सुधार आन्दोलन के रूप में भी जाना जाता हैं, दयानंद सरस्वती ने मथुरा के स्वामी विरजानंद से प्रेरणा ग्रहण कर आर्य समाज की स्थापना की, इसका मुख्य उद्देश्य समाज कल्याण एवं विदेशी प्रभावों से मुक्ति एवं हिन्दू धर्म में सुधार कार्य के लिए आरंभ किया, आर्य समाज शुद्ध वैदिक परंपरा को स्वीकार करते थे, तथा मूर्तिपूजा, अवतारवाद, बलि, झूठे – आडम्बर आदि को अस्वीकार कर वैदिक परम्पराओं की ओर लौटने का आदेश देते थे, आर्य समाज ने छुआछूत जातिवाद का कड़ा विरोध किया, तथा स्त्रियों, शुद्रो को भी यज्ञ करने तथा वेद पढ़ने का समान अधिकार दिया था, 'सत्यार्थ – प्रकाश' नामक ग्रन्थ आर्य समाज का मूल ग्रन्थ हैं, जिसकी रचना दयानन्द जी ने की, आर्य समाज का आदर्श नारा हैं, 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' जिसका तात्पर्य हैं – 'विश्व को आर्य बनाते चलो'

आर्य समाज जिसका अर्थ दयानन्द कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं, आर्य शब्द से तात्पर्य – 'श्रेष्ट और प्रगतिशील' से हैं, अर्थात् आर्य समाज का अर्थ श्रेष्ठ एवं प्रगतिशील समाज की स्थापना से हैं, जो वेदों के अनुसार चलने का प्रयास करते हैं, तथा अन्य व्यक्तियों को भी इसी दिशा में चलने एवं कार्य करने का आग्रह करते हैं, आर्य समाज ने आदर्श रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा योगिराज कृष्ण को माना, इसी के आधार पर आर्य समाज की नीव रखीं गयी, आर्य समाज के सभी सिद्धांत एवं नियमों का आधार 'वेद' हैं, जिसके अनुकूल आर्य समाज चलता हैं, आर्य समाज सच्चे ईश्वर की पूजा करता हैं, तथा ईश्वर के एक ही रूप को मानने के पक्ष में हैं, अन्य सभी बातों का आर्य समाज खंडन करता हैं, जिसमें मूर्तिपूजा, अवतारवाद, व्रत, देवी जागरण, तीर्थयात्रा, जादू – तोना आदि, शामिल है, आर्य समाज के अनुसार ईश्वर का कोई अवतार नहीं होता, ईश्वर वायु तथा आकाश की भाति सर्वव्यापी हैं. एवं अनंत हैं, ब्रह्म हैं, इस सब के अतिरिक्त ईश्वर की अन्य कोई परिभाषा मान्य नहीं हैं, इसके अतिरिक्त जो भी कुछ प्रचलित हैं, वह केवल डोंग व आडंबर हैं, जिससे बचने के लिए आर्य समाज वेदों को पढने तथा जीवन में अपनाने का समर्थन करता हैं, आर्य समाज ईश्वर के अंदर अनंत गुण होने के कारण ईश्वर के अनेक नामो को स्वीकार करता हैं, परन्तु प्रत्येक नाम की मूर्ति - पूजा का विरोध करता हैं, इसी प्रकार आर्य समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, शुद्र, वैश्या, को कर्म के आधार पर मानता हैं, न कि जाति के आधार पर, आर्य समाज – स्वराज, स्वदेशी, स्वधर्म, स्वभाषा, एवं स्वसंस्कृति के हितकर हैं, एवं आर्य समाज सामाजिक सुधारो के लिए प्रमुख रूप से माना गया.

निष्कर्ष : सार रूप में कहा जा सकता हैं, कि दयानंद सरस्वती ने समाज सुधार में अपना बहुमूल्य योगदान दिया हैं, तथा समाज कल्याण एवं राष्ट्र हित में अनेको प्रयास से परिवर्तन की दिशा में सकारात्मक परिणाम प्राप्त किये, दयानंद जी ने हर रूप में सामाजिक कुरीतियों का विरोध कर, तर्कों एवं वेदों की ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित किया, तथा उपेक्षित वर्गों के लिए दयानंद जी हितधारक के रूप में कार्य कर, सभी वर्गों के लिए सम्मानपूर्वक जीवन का समर्थन किया, दयानन्द जी की आलोचनात्मक दृष्टि ने ही समाज में फैली असमानता, शोषण, पिछड़ापन, कुरीतियों का विरोध किया, तथा अपने ज्ञान, उपदेशो, विचारों, एवं तर्कों के माध्यम से जनता को संबोधित कर ज्ञान प्रदान किया, दयानन्द जी ने गुजराती परिवार में जन्म लेने के पश्चात् भी हिन्दी भाषा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसका ऋणी हिन्दी समाज सदैव रहेगा, हिन्दी भाषा में 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसी प्रसिद्ध पुस्तक की रचना कर, हिन्दी भाषा को उभारने का कार्य किया, तथा शास्त्रों का ज्ञान, व्याख्यान आदि हिन्दी में देकर राष्ट्र को एकता में बांधने का सफल कार्य किया, आर्य समाज की

स्थापना कर दयानन्द जी ने विदेशी प्रभावों से मुक्ति एवं हिन्दू धर्म में सुधार करने का प्रयास किया, आर्यसमाज सुधार आन्दोलन के अतिरिक्त समाज में अनेको आन्दोलन चला कर समाज को एक नयी दिशा प्रदान की, तथा 'वेदों की ओर पुन: लोटो', 'भारत भारतीयों का हैं', जैसे महान नारों के माध्यम से राष्ट्र को उनके हितों से परिचित कराया, तथा समाज में फैली अज्ञानता को अपने तर्कसंगत विचारों से दूर कर समाज को जागरूक करने का सकारात्मक प्रयास किया, दयानन्द जी का मानना था, कि समाज में विकास एवं परिवर्तन केवल शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता हैं, अनेको शिक्षा संस्थाओं का निर्माण, हिन्दी भाषा सभी के लिए अनिवार्य, वेदों को जीवन में वापस लाना आदि प्रयास राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने तथा राष्ट्र का समाज का विकास करने की दिशा में सकरात्मक परिवर्तन दयानन्द जी द्वारा किये गए,

इसी प्रकार कहा जा सकता हैं, दयानंद जी ने समाज के उत्थान में अनेकों प्रगतिशील प्रयास कर समाज सुधार में अपनी अहम् भूमिका अदा की, तथा दयानंद सरस्वती जी के विचारों, तर्कों के फलस्वरूप समाज प्रगति कर, परिवर्तन की दिशा में अग्रसर हो पाया,

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्रभाकर, विष्णु, (2002), भारतीय साहित्य के निर्माता : स्वामी दयानंद सरस्वती, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पुनमुर्द्रण
2. वर्मा, अमरनाथ, (2020), स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारो का विशलेषणपरक अध्ययन, (लेख)
3. त्रिपाठी, प्रतीक, (2001), स्वामी दयानंद सरस्वती के शैक्षिक दर्शन का वर्तमान शिक्षा में योगदान, (लेख)

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 207-209
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वंचित वर्ग की बालिकाओं के शैक्षिक सशक्तिकरण में कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की भूमिका

हरि शंकर प्रसाद
शोधार्थी,
शिक्षाशास्त्र विभाग बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश
भारत में शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन और समानता का सबसे प्रभावशाली माध्यम माना जाता है, किंतु वंचित वर्गों की बालिकाएँ लंबे समय तक इस अवसर से वंचित रहीं। आर्थिक गरीबी, सामाजिक रूढ़ियाँ, लैंगिक भेदभाव और शैक्षिक संसाधनों की कमी ने उनके शैक्षिक विकास को बाधित किया। इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना प्रारंभ की गई। यह योजना शैक्षिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों की बालिकाओं को आवासीय एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में योजना की अवधारणा, संरचना, प्रभाव और चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है तथा यह स्पष्ट किया गया है कि यह योजना वंचित वर्ग की बालिकाओं के शैक्षिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

मुख्य शब्द : सामाजिक परिवर्तन, वंचित वर्गों की बालिका, लैंगीक भेदभाव, शैक्षिक संसाधन, सशक्तिकरण

भूमिका

शिक्षा किसी भी समाज की प्रगति की आधारशिला होती है और बालिका शिक्षा को सामाजिक विकास का प्रमुख संकेतक माना जाता है। एक शिक्षित बालिका न केवल अपने जीवन को बेहतर बनाती है, बल्कि अपने परिवार और समाज को भी आगे बढ़ाती है। इसके बावजूद भारत में विशेष रूप से वंचित वर्गों की बालिकाएँ लंबे समय तक शिक्षा की मुख्यधारा से बाहर रही हैं।[1] ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा को प्राथमिकता न दिए जाने के कारण साक्षरता दर में असमानता बनी रही। ऐसी स्थिति में बालिकाओं के लिए विशेष योजनाओं की आवश्यकता महसूस की गई, जिनमें कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना एक महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में सामने आई।

वंचित वर्ग की बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति

वंचित वर्ग की बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति ऐतिहासिक रूप से कमजोर रही है। गरीबी के कारण परिवारों की प्राथमिकता जीविका अर्जन पर केंद्रित रहती है, जिससे बालिकाओं की शिक्षा को गौण समझा जाता है। सामाजिक परंपराएँ और रूढ़िवादी सोच भी बालिकाओं को घर की चारदीवारी तक सीमित कर देती हैं।[2] विद्यालयों की दूरी, सुरक्षा संबंधी चिंताएँ और घरेलू कार्यों का भार भी उनकी नियमित शिक्षा में बाधा बनता है। परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में बालिकाएँ या तो विद्यालय में नामांकित नहीं हो पातीं या बीच में ही पढ़ाई छोड़ देती हैं।

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना अवधारणा एवं विकास :

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की शुरुआत वर्ष 2004 में भारत सरकार द्वारा की गई। प्रारंभ में यह योजना सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत संचालित की गई, जिसे बाद में समग्र शिक्षा अभियान में सम्मिलित कर लिया गया। योजना का मुख्य उद्देश्य शैक्षिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों की वंचित वर्ग की बालिकाओं को औपचारिक शिक्षा से जोड़ना है। इस योजना का नामकरण कस्तूरबा गाँधी के नाम पर किया गया, जिन्होंने महिला शिक्षा और सामाजिक सुधार के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।[3]

योजना की संरचना एवं प्रमुख विशेषताएँ

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना की संरचना इस प्रकार की गई है कि बालिकाओं को सुरक्षित और अनुकूल शैक्षिक वातावरण प्राप्त हो सके। ये विद्यालय पूर्णतः आवासीय होते हैं, जिससे दूरस्थ क्षेत्रों की बालिकाएँ भी बिना किसी व्यवधान के शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। विद्यालयों में बालिकाओं को निःशुल्क आवास, भोजन, वस्त्र, पाठ्य सामग्री और स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।[4] इससे आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों पर शिक्षा का बोझ कम होता है और वे अपनी बालिकाओं को विद्यालय भेजने के लिए प्रेरित होते हैं।

शैक्षणिक एवं सहशैक्षिक व्यवस्था-

KGBV विद्यालयों में औपचारिक पाठ्यक्रम के साथ-साथ सह-शैक्षिक गतिविधियों पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। जीवन कौशल शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधी जानकारी, खेलकूद और सांस्कृतिक गतिविधियाँ बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास में सहायक होती हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से बालिकाओं में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक सहभागिता का विकास होता है, जो उनके समग्र विकास के लिए आवश्यक है।[5]

वंचित वर्ग की बालिकाओं के शैक्षिक उत्थान में योजना की भूमिका

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना ने वंचित वर्ग की बालिकाओं के लिए शिक्षा के द्वार खोलने का कार्य किया है। इस योजना के माध्यम से बड़ी संख्या में ऐसी बालिकाएँ शिक्षा से जुड़ी हैं जो पहले कभी विद्यालय नहीं गई थीं। आवासीय व्यवस्था और निःशुल्क सुविधाओं के कारण विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति में कमी आई है।[6] इससे न केवल नामांकन दर बढ़ी है, बल्कि शिक्षा में निरंतरता भी सुनिश्चित हुई है।

सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव

इस योजना का प्रभाव केवल शैक्षिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी व्यापक है। शिक्षित बालिकाएँ अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति अधिक जागरूक होती हैं। इससे समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा मिलता है और बाल विवाह जैसी सामाजिक कुप्रथाओं में कमी आती है। आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान की भावना बालिकाओं के व्यक्तित्व को सुदृढ़ बनाती है।[7]

योजना की उपलब्धियाँ

कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना ने महिला साक्षरता दर में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा का सकारात्मक वातावरण विकसित हुआ है। अनेक बालिकाएँ उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर हुई हैं और समाज में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। यह योजना सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति देने का एक सशक्त माध्यम बनी है।[8]

कार्यान्वयन से जुड़ी चुनौतियाँ

योजना की सफलता के बावजूद इसके कार्यान्वयन में कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। कई स्थानों पर शिक्षकों की कमी, अधोसंरचना की समस्याएँ और संसाधनों का अभाव देखा गया है। इसके अतिरिक्त नियमित निरीक्षण और प्रभावी निगरानी तंत्र की आवश्यकता भी महसूस की जाती है, ताकि योजना का लाभ वास्तविक पात्र बालिकाओं तक पहुँच सके।[9]

सुधार की संभावनाएँ एवं सुझाव

यदि इस योजना में प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति, आधुनिक शैक्षिक संसाधनों का उपयोग और समुदाय की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए, तो इसके प्रभाव में और वृद्धि हो सकती है। डिजिटल शिक्षा और कौशल आधारित प्रशिक्षण को शामिल करके बालिकाओं को भविष्य के लिए अधिक सक्षम बनाया जा सकता है।[10]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना वंचित वर्ग की बालिकाओं के शैक्षिक सशक्तिकरण की दिशा में एक प्रभावी और दूरदर्शी पहल है। यह योजना न केवल शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित करती है, बल्कि बालिकाओं को आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और जागरूक नागरिक बनाने में भी सहायक सिद्ध हो रही है। यदि इस योजना को सुदृढ़ कार्यान्वयन और पर्याप्त संसाधनों के साथ आगे बढ़ाया जाए, तो यह भारतीय समाज में बालिका शिक्षा की स्थिति को मौलिक रूप से परिवर्तित कर सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. अग्रवाल, जे. सी. *शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार*. विकास पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. भारत सरकार. *कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय योजना : दिशा-निर्देश*. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 2018
3. भारत सरकार. *समग्र शिक्षा अभियान : एकीकृत विद्यालय शिक्षा योजना*. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 2020
4. भारत सरकार. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 2020।
5. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय. *बालिका शिक्षा एवं सशक्तिकरण पर रिपोर्ट*. भारत सरकार, 2019
6. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी). *समकालीन भारत में शिक्षा*. एनसीईआरटी, 2017
7. नीति आयोग. *भारत में शिक्षा एवं सामाजिक विकास*. भारत सरकार, 2021
8. सिंह, यू. के. *शिक्षा का समाजशास्त्र*. ए. पी. एच. पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, 2011
9. शुक्ला, एस. एन. *भारतीय समाज एवं शिक्षा*. राधा प्रकाशन, 2009
10. त्रिपाठी, आर. पी. *भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं सुधार*. विनोद पुस्तक मंदिर, 2008

E-mail – haripr111@gmail.com Ph. No. - 9572527337

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 210-213
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महिला सशक्तिकरण में बिहार सरकार की योजनाएँ

डॉ० श्वेता कुमारी
इतिहास विभाग,
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

महिला सशक्तिकरण किसी भी समाज के सतत, समावेशी और संतुलित विकास का एक अनिवार्य आधार है। महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक रूप से सशक्त बनाए बिना सामाजिक न्याय एवं समग्र विकास की कल्पना संभव नहीं है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ सामाजिक असमानता और लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं, महिला सशक्तिकरण एक प्रमुख नीतिगत प्राथमिकता बनकर उभरा है। भारत के संघीय ढाँचे में राज्य सरकारों की भूमिका महिला सशक्तिकरण की योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण होती है। इसी संदर्भ में यह शोध-पत्र बिहार सरकार द्वारा संचालित महिला सशक्तिकरण से संबंधित विभिन्न योजनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का उद्देश्य यह मूल्यांकन करना है कि ये योजनाएँ महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा निर्णय-निर्माण क्षमता को किस हद तक सुदृढ़ करती हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना, जीविका योजना, महिला उद्यमिता तथा स्वास्थ्य एवं पोषण से जुड़ी योजनाओं ने बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने, महिलाओं की आर्थिक स्थिति मजबूत करने और उनके आत्मविश्वास में वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मुख्य शब्द - महिला सशक्तिकरण, महिला कल्याण योजनाएँ, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक विकास, लैंगिक समानता

भूमिका

महिलाएँ समाज की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं, परंतु ऐतिहासिक रूप से उन्हें समान अधिकार, अवसर और संसाधन प्राप्त नहीं हो पाए। पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना, अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक रूढ़ियाँ महिला सशक्तिकरण की राह में प्रमुख बाधाएँ रही हैं।[1] महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य केवल महिलाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करना नहीं है, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भर बनाना, निर्णय-निर्माण में भागीदार बनाना, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना तथा उन्हें सामाजिक सम्मान दिलाना भी है।[2] बिहार राज्य सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से लंबे समय तक पिछड़ा माना जाता रहा है। यहाँ महिलाओं की स्थिति विशेष रूप से चिंताजनक रही है—कम साक्षरता दर, बाल विवाह, मातृ मृत्यु दर और सीमित रोजगार अवसर इसकी प्रमुख समस्याएँ रही हैं। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बिहार सरकार ने महिला सशक्तिकरण को अपनी नीतियों का केंद्रीय तत्व बनाया है और अनेक योजनाएँ प्रारंभ की हैं।[3]

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा

महिला सशक्तिकरण एक बहुआयामी अवधारणा है। इसके प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं—

1. शैक्षणिक सशक्तिकरण – महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना।
2. आर्थिक सशक्तिकरण – रोजगार, स्वरोजगार एवं वित्तीय स्वतंत्रता।
3. सामाजिक सशक्तिकरण – सामाजिक भेदभाव से मुक्ति और समान अधिकार।
4. राजनीतिक सशक्तिकरण – निर्णय-निर्माण में सक्रिय भागीदारी।
5. स्वास्थ्य सशक्तिकरण – मातृ एवं बाल स्वास्थ्य की सुरक्षा।

बिहार सरकार की योजनाएँ इन सभी आयामों को समग्र रूप से संबोधित करने का प्रयास करती हैं।[4]

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य बिहार सरकार द्वारा संचालित महिला सशक्तिकरण से संबंधित विभिन्न योजनाओं का समग्र एवं विस्तृत अध्ययन करना है। अध्ययन के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि ये योजनाएँ महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक जीवन पर किस प्रकार प्रभाव डाल रही हैं। साथ ही, महिलाओं के जीवन-स्तर में आए परिवर्तनों, उनकी आत्मनिर्भरता, निर्णय-निर्माण क्षमता तथा सामाजिक स्थिति में हुए सुधार का मूल्यांकन करना भी इस शोध का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

बिहार सरकार की प्रमुख महिला सशक्तिकरण योजनाएँ

मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना

यह योजना बालिकाओं को जन्म से लेकर स्नातक शिक्षा तक आर्थिक सहायता प्रदान करती है। इसका उद्देश्य बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देना, बाल विवाह रोकना तथा लड़कियों में आत्मविश्वास विकसित करना है। इस योजना के कारण बालिकाओं के विद्यालय नामांकन और उच्च शिक्षा में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है।[5]

जीविका योजना

जीविका योजना के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों (SHG) का गठन कर महिलाओं को स्वरोजगार से जोड़ा जाता है। इससे ग्रामीण महिलाओं की आय बढ़ी है और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनी हैं। यह योजना महिला नेतृत्व को भी प्रोत्साहित करती है।[6]

मुख्यमंत्री नारी शक्ति योजना

इस योजना का उद्देश्य महिलाओं को सामाजिक और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाना है। पंचायत स्तर पर महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है, जिससे स्थानीय शासन में महिलाओं की भूमिका सुदृढ़ हुई है।

मुख्यमंत्री महिला उद्यमी योजना

इस योजना के अंतर्गत महिलाओं को उद्योग एवं व्यवसाय स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और मार्गदर्शन दिया जाता है। इससे महिला उद्यमिता को बढ़ावा मिला है।[7]

स्वास्थ्य एवं पोषण से जुड़ी योजनाएँ

मातृ स्वास्थ्य, पोषण और सुरक्षित प्रसव को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ चलाई गई हैं, जिससे मातृ मृत्यु दर में कमी आई है।

योजनाओं का प्रभाव

शैक्षणिक प्रभाव

- बालिकाओं की साक्षरता दर में वृद्धि
- उच्च शिक्षा में नामांकन बढ़ा

आर्थिक प्रभाव

- महिलाओं की आय एवं बचत में वृद्धि
- स्वरोजगार के अवसर बढ़े

सामाजिक प्रभाव

- आत्मविश्वास में वृद्धि
- घरेलू एवं सामाजिक निर्णयों में भागीदारी

राजनीतिक प्रभाव

- पंचायतों में महिला नेतृत्व को बल
- निर्णय-निर्माण में सक्रिय भूमिका

सुझाव

☐ योजनाओं के प्रति जन-जागरूकता बढ़ाई जाए।
☐ डिजिटल एवं पारदर्शी प्रणाली को मजबूत किया जाए।
☐ कौशल विकास एवं प्रशिक्षण पर अधिक बल दिया जाए।
☐ सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध निरंतर अभियान चलाए जाएँ।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि बिहार सरकार द्वारा प्रारंभ की गई महिला सशक्तिकरण योजनाओं ने न केवल महिलाओं की भौतिक परिस्थितियों में सुधार किया है, बल्कि उनके आत्मसम्मान और सामाजिक पहचान को भी मजबूती प्रदान की है। बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने, महिलाओं को स्वरोजगार से जोड़ने तथा स्वास्थ्य और पोषण सेवाओं तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करने से महिलाओं की भूमिका पारंपरिक घरेलू सीमाओं से आगे बढ़कर सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र तक विस्तृत हुई है। इससे महिलाओं में आत्मविश्वास का विकास हुआ है और वे अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति अधिक सजग हुई हैं।

सन्दर्भ

1. Ministry of Education, Government of India. विद्यालयी शिक्षा में लैंगिक समावेशन. भारत सरकार, 2019.
2. NITI Aayog. एसडीजी इंडिया इंडेक्स: लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण. भारत सरकार, 2021, www.niti.gov.in.
3. World Bank. ग्रामीण भारत में महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण. वर्ल्ड बैंक प्रकाशन, 2019, www.worldbank.org.
4. UN Women. सतत विकास के लिए महिलाओं का सशक्तिकरण. संयुक्त राष्ट्र, 2020, www.unwomen.org.
5. Government of Bihar. मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना: दिशा-निर्देश एवं प्रगति रिपोर्ट. शिक्षा विभाग, बिहार सरकार, 2022, education.bihar.gov.in.
6. Government of Bihar. जीविका: बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन सोसायटी. ग्रामीण विकास विभाग, बिहार सरकार, 2021, www.brlps.in.
7. Government of Bihar. मुख्यमंत्री महिला उद्यमी योजना. उद्योग विभाग, बिहार सरकार, 2022, industries.bihar.gov.in.

E-Mail – kumarish1984@gmail.com Ph. No. - 9006829277

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 213-215
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों का अध्ययन

आरती कुमारी
शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग,
बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
प्रो० (डॉ०) श्याम रंजन प्रसाद सिंह
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग,
बी० एम० डी० कॉलेज, दयालपुर (वैशाली)

सार
वर्तमान समय में भारत में प्राथमिक स्तर पर निजी विद्यालयों की संख्या में तीव्र वृद्धि देखने को मिल रही है। यह विस्तार केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण एवं अर्ध-शहरी क्षेत्रों में भी निजी प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना तेजी से हो रही है। इस शोध पत्र का उद्देश्य प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के प्रमुख कारणों का अध्ययन करना है। अध्ययन में यह विश्लेषण किया गया है कि सरकारी विद्यालयों की स्थिति, अभिभावकों की अपेक्षाएँ, शिक्षा की गुणवत्ता, प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण, आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन तथा सरकारी नीतियाँ किस प्रकार निजी विद्यालयों के विस्तार को प्रभावित कर रही हैं। यह शोध पत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है तथा द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का उपयोग किया गया है।

मुख्य शब्द: प्राथमिक शिक्षा, निजी विद्यालय, सरकारी विद्यालय, शिक्षा की गुणवत्ता, अभिभावक अपेक्षाएँ

भूमिका

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास का आधार होती है। प्राथमिक शिक्षा वह चरण है, जिसमें बालक के व्यक्तित्व, चरित्र और बौद्धिक विकास की नींव पड़ती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21(क) के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है।[1] इसके बावजूद, देश में प्राथमिक स्तर पर निजी विद्यालयों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। पिछले कुछ दशकों में यह देखा गया है कि अनेक अभिभावक सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा निजी विद्यालयों को प्राथमिकता देने लगे हैं। इस प्रवृत्ति ने शिक्षा व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को जन्म दिया है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों का गहन अध्ययन किया जाए।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारणों की पहचान करना।
2. सरकारी एवं निजी विद्यालयों की गुणवत्ता की तुलनात्मक समीक्षा करना।

3. अभिभावकों की बदलती सोच एवं अपेक्षाओं का अध्ययन करना।
4. निजी विद्यालयों के विस्तार के सामाजिक एवं शैक्षिक प्रभावों का विश्लेषण करना।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्त्व

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था को एक नई दिशा दी है। एक ओर यह शिक्षा में विकल्प एवं प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक असमानता एवं शिक्षा के व्यवसायीकरण जैसे प्रश्न भी उत्पन्न करता है। इस विषय पर अध्ययन से नीतिनिर्माताओं-, शिक्षाविदों एवं प्रशासकों को शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु उपयोगी सुझाव प्राप्त हो सकते हैं।[2]

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के कारण

सरकारी विद्यालयों की गिरती गुणवत्ता

कई सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों की कमी, अनियमित उपस्थिति, आधारभूत सुविधाओं का अभाव तथा कमजोर शैक्षिक वातावरण पाया जाता है। इन कारणों से अभिभावकों का सरकारी विद्यालयों से विश्वास कम हुआ है।[3]

शिक्षा की गुणवत्ता के प्रति बढ़ती जागरूकता

वर्तमान समय में अभिभावक अपने बच्चों के भविष्य को लेकर अधिक जागरूक हो गए हैं। वे ऐसी शिक्षा चाहते हैं जो केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित न होकर सर्वांगीण विकास पर आधारित हो, जिसे वे निजी विद्यालयों में अधिक उपयुक्त मानते हैं।[4]

अंग्रेज़ी माध्यम शिक्षा की माँग

निजी विद्यालयों के विस्तार का एक प्रमुख कारण अंग्रेज़ी माध्यम शिक्षा की बढ़ती माँग है। अभिभावक यह मानते हैं कि अंग्रेज़ी भाषा में दक्षता से रोजगार के बेहतर अवसर प्राप्त होते हैं।

बेहतर अनुशासन एवं प्रबंधन

निजी विद्यालयों में अनुशासन, समयपालन एवं प्रशासनिक नियंत्रण अपेक्षाकृत बेहतर होता है। विद्यालय प्रबंधन अभिभावकों के प्रति उत्तरदायी होता है, जिससे विश्वास में वृद्धि होती है।

प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण

निजी विद्यालयों में प्रतिस्पर्धा का वातावरण छात्रों को बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रेरित करता है। परीक्षा परिणाम, सहशैक्षणिक गतिविधियाँ एवं पुरस्कार प्रणाली छात्रों के विकास में सहायक – मानी जाती हैं।[5]

शहरीकरण एवं आर्थिक विकास

शहरीकरण, मध्यम वर्ग का विस्तार तथा आय में वृद्धि के कारण लोग निजी शिक्षा पर खर्च करने में सक्षम हो गए हैं। इससे निजी विद्यालयों के विस्तार को प्रोत्साहन मिला है।

सरकारी नीतियाँ एवं उदारीकरण

उदारीकरण एवं निजीकरण की नीतियों के अंतर्गत शिक्षा क्षेत्र में निजी भागीदारी को बढ़ावा मिला है। इससे निजी विद्यालयों की स्थापना एवं विस्तार आसान हुआ है।[6]

प्राथमिक निजी विद्यालयों के विस्तार के प्रभाव

सकारात्मक प्रभाव

- शिक्षा में विकल्पों की उपलब्धता
- गुणवत्ता सुधार हेतु प्रतिस्पर्धा
- अभिभावकों की संतुष्टि

नकारात्मक प्रभाव

- शिक्षा का व्यवसायीकरण
- सामाजिक एवं आर्थिक असमानता
- सरकारी विद्यालयों की उपेक्षा

सरकारी एवं निजी प्राथमिक विद्यालयों की तुलनात्मक स्थिति

सरकारी विद्यालय जहाँ निःशुल्क शिक्षा, मध्याह्न भोजन एवं सामाजिक समावेशन पर बल देते हैं, वहीं निजी विद्यालय गुणवत्ता, अनुशासन एवं आधुनिक सुविधाओं पर केंद्रित होते हैं। दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ एवं विशेषताएँ हैं।[7]

सुधार हेतु सुझाव

1. सरकारी विद्यालयों की गुणवत्ता में सुधार किया जाए।
2. शिक्षकों की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाए।
3. निजी विद्यालयों पर उचित नियंत्रण एवं विनियमन किया जाए।
4. अभिभावकों में सरकारी विद्यालयों के प्रति विश्वास बढ़ाया जाए।

निष्कर्ष

प्राथमिक निजी विद्यालयों का विस्तार अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक कारणों का परिणाम है। यह प्रवृत्ति जहाँ एक ओर शिक्षा में गुणवत्ता एवं प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देती है, वहीं दूसरी ओर समानता एवं सामाजिक न्याय के समक्ष चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करती है। अतः आवश्यक है कि सरकारी एवं निजी दोनों क्षेत्रों में संतुलन स्थापित करते हुए प्राथमिक शिक्षा को सुदृढ़ किया जाए।

सन्दर्भ

1. भारत सरकार, *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, 2020
2. कोठारी, डी. एस. *शिक्षा और राष्ट्रीय विकास : शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (1964–66),* भारत सरकार, 1966
3. अग्रवाल, जे. सी. *शिक्षा के सिद्धांत एवं आधार*, विकास पब्लिशिंग हाउस, 2010
4. तिलक, जंध्याला बी. जी. "भारत में निजी शिक्षा : प्रवृत्तियाँ एवं मुद्दे" *जर्नल ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन*, खंड 27, अंक 1, 2013, पृ. 1–20
5. किंगडन, गीता गांधी, "सार्वजनिक एवं निजी शिक्षा की गुणवत्ता और दक्षता : शहरी भारत का एक अध्ययन" *ऑक्सफोर्ड बुलेटिन ऑफ इकॉनॉमिक्स एंड स्टैटिस्टिक्स*, खंड 59, अंक 1, 1997, पृ. 57–82
6. टूलि, जेम्स, और पॉलीन डिक्सन, *गरीबों के लिए निजी शिक्षा : निम्न आय वाले देशों में निजी विद्यालयों का अध्ययन*, कैटो इंस्टिट्यूट, 2005
7. दास, बी. एन. *शिक्षा की आधारशिलाएँ*, कल्याणी पब्लिशर्स, 2012

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 216-221
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Examining the Professional Commitment of Teacher Educators with Reference to their Existing Teaching Span

Prativa Tiwari
Research Scholar,
Department of Education and Community Service, Punjabi University, Patiala.

Abstract
This study aimed to investigate the professional commitment of four hundred fifty teacher educators selected randomly from teacher training institutions of Punjab with respect to length of service. Professional commitment scale standardised by Kanchan Kohli (2005) was utilised to measure the professional commitment of teacher educators. Findings indicate clearly that there exists similar level of professional commitment among teacher educators regardless of their teaching length/ teaching span.
Key words: Professional Commitment, Teacher Training Institutions, Teacher Educators, Teaching Span.

Introduction:

Teachers are the key functionaries of every educational institution. As a nation builder they are entrusted with the task of preparing future citizens. Today, visualising the pedagogical global trends which are fast changing, a teacher is supposed to act in multifarious ways and perform numerous things while working in educational institution. Apart from teaching, the teacher is to to be proficient in digitalised learning technology, managing social, managerial and administrative affairs effectively to make sure that a sound and productive environment persists in educational institutions. Needless to say, these works can be well done by teachers who are skilled, efficient, competent and committed. Now, such teachers are prepared by teacher educators in teacher training colleges. Today, several regulatory agencies are focussed to maintain the quality in education as well as the professional quality among teacher educators through organising online and offline numerous training programs time to time, and thus, oriented towards the restructuring and revamping the teacher education programs. In spite of all this, our educational institutions are lagging behind considerably to produce professionally skilled teachers who are fit to work in the realm of present day quality education. Teaching experience of teacher educators plays an important role in managing wide range of academic activities, influences the administrative and managerial perspective, making proper academic planning, handling institutional problems, collaborating socially, modifying teaching methods and practices, better clasroom management,

achieving student outcomes, and effectively handling the professional responsibilities. Highly experienced teacher educators are supposed to be seasoned, confident and have wide knowledge as well as academic skills as compared to the novice teacher educators. This paper aims at investigating the professional commitment of teacher educators in the backdrop of their length of service.

Review of the Related Literature

Sood and Anand (2010) investigated professional commitment of teacher educators of Himachal Pradesh and came out with the result that significant differences exist in professional commitment of teacher educators regarding their gender, marital status and teaching experience. Teacher educators having high teaching experience were seen professionally better.

Kotreswaraswamy and Surapuramath (2012) studied professional commitment of teacher educators of Bangalore University and concluded that teacher educators with higher teaching experience had better professional commitment.

Badhwar (2014) studied professional commitment and accountability of 135 teacher educators and concluded with one of the major finding that highly experienced teacher educators were found more professionally committed as compared to low experienced teacher educators.

Rani and Rani (2015) investigated the effect of emotional intelligence on professional commitment of 200 teacher educators of Rohtak and Sonipat districts in Haryana and came out with the result that both groups of teacher educators (more experienced and less experienced) had similar level of professional commitment. Further, they found no correlation of emotional intelligence with the professional commitment.

Kini and Podolsky (2016) attempted to analyse the effect and relationship of teaching experiences and teacher effectiveness on student outcomes in United States. It was revealed that teaching experience has positive association with the academic achievement of the student. Highly experienced teachers have additional benefits in terms of their effectiveness in teaching and learning process, expertise knowledge of subject matter, collaborating well with the faculty and helping the institution as a whole. Further, it was suggested that professional development programmes supported by the policymakers would help in the retention of experienced and effective teachers and thereby reduce the turnover in schools.

Gill and Kaur (2017) studied professional commitment among secondary school teachers. Findings revealed that there was no significant interaction effect of (a) gender & teaching experience and (b) stream & teaching experience on the professional commitment.

Agrawal and Jain (2020) examined the professional commitment of 232 school teachers of Kathmandu valley in Nepal with regard to demographic variables. The study found that service length of teachers do influenced affective, and continuance commitment but not their normative commitment.

Hatim and Shakir (2021) studied the professional commitment of 136 secondary school teachers of aligarh district in up taking into account self-esteem, gender and length of service. The findings showed that there was no significant difference in the professional commitment and self esteem of teachers with less than 10 years of of teaching experience and those with more than 10 years-experience.

Shanthi and Renugadevi (2021) investigated professional commitment of primary school teachers. Results showed that teachers with higher experience were found to have higher professional commitment as compared to those having lower experience.

Izzati et al. (2022) studied quantitatively the difference in professional commitment of Indonesian teachers taking into account their gender and service period. Results revealed that teachers

significantly differed in professional commitment with regard to service period in favour of those who have long service length.

Mehmood et al. (2024) explored the influence of teachers' teaching experience on the accomplishment of professional responsibilities. It was concluded that the teachers who have higher experience are more thoughtfull, possess higher confidence level and academic skills, have insight in clasroom management and curriculum development. Again, the study emphasises continuous professional development programmes for the fresh teachers so as to enhance their capabilities and calls for targeted interventions and supportive climate at educational institutions for educators at diferent levels of their career.

Sombilon (2024) investigated gender, age, and work experience as predictors of teacher' organisational commitment. On the basis of findings it was implied that a longer tenure of teachers basically lead to increase higher organisational commitment among teachers.

Singh and Promila (2025) studied the professional commitment of elementary teacher educators with regard to their teaching experience and job satisfaction and came with the result that their professional commitment was not influenced by these variables. Again, the subjects with regard to teaching experience showed similar level of commitment.

Objective of the Study

1. To investigate the professional commitment of teacher educators with short and long teaching length.

Hypothesis of the Study

1. There exists no significant difference in the professional commitment of teacher educators with short and long teaching length .

Methodology

Descriptive survey approach was applied to conduct the present study. The population of the study included all teacher educators working in Government, Government Aided and Self-financed education colleges affiliated to Punjabi University, Panjab University and Guru Nanak Dev University. The investigator selected 450 teacher educators' responses using simple random sampling for further analysis and interpretation.

Finding and Interpretation

The finding is based on comparing the professional commitment of teacher educators with short and long teaching length for which the significant difference had to be worked in their professional commitment scores on categorizing them in two groups: (i) those with teaching span up to 10 years and (ii) those with teaching span above 10 years. To ascertain the difference in the mean professional commitment scores of teacher educators with short and long teaching length, t-test was conducted as presented in the table given below.

Table-1

Analysis showing t-test to find the difference in professional commitment of teacher educators with short and long teaching length.

Variable Teaching Length	N	Sum	Sum of Squares	Mean	S.D.	t-value
Short (up to 10 years)	207	19793	1919807	95.62	11.50	0.33
Long (more than 10 years)	243	23299	2266125	95.88	11.54	

It is evident from the table-1 that the obtained t-value signifying the difference in the mean professional commitment score of teacher educators with short and long teaching length is 0.33

which is much less than the critical value or table value 1.965 for significance at 0.05 level and 448 df. Obviously, this implies that significant difference does not exist between teacher educators with short and long teaching length on the professional commitment. So, the null hypothesis stating that "There exists no significant difference in the professional commitment of teacher educators with short and long teaching length", gets fully accepted.

Discussion of the Result with Concluding Remarks

The finding of the current research work highlights almost the similar level of professional commitment of teacher educators irrespective of their short or long existing service length. Findings of studies by Rani and Rani (2015), Hatim and Shakir (2021), Singh and Promila (2025) show that there exists similar level of professional commitment among teachers with respect to short or long teaching length. This is, indeed, in que with the present finding. Again, some studies done by Sood and Anand (2010), Kotreswaraswamy and Surapuramath (2012), Badhwar (2014), Agrawal and Jain (2020), Izzatti et al. (2022) indicate that teachers having long experience show higher professional commitment than those having short experience. This goes anti parallel to the finding of the present study. Finding of the current study could be supported by the plea that novice teachers may show commitment for satisfaction to authorities to gain their faith and confidence, and also for continuing with the job with proper adjustment in the institution they serve. On the other hand, experienced teachers may not show much commitment with the feeling that they have high job security, financial stability, unquestionable status and good rapport with students and faculty. However, this practice of working with such an unhealthy notion in an institution meant for imparting teacher education is quite dissapointing and disgusting. All the same, it is commonly believed that experienced teacher educators ought to act as mentors and show more commitment than their juniors who are almost fresh or have little experience. On the whole, who is acountable for deterioration in the quality of teacher education to the extent performance of teacher educators goes vague and arbitrary leading to a sharp decline in their commitment? Stakeholders and agencies concerned are answerable to the intellectual class of society as to why the commitment of the present day teacher educators does not correspond to that as defined categorically by Kanter (1968) in terms of (i) continuance commitment, (ii) cohesion commitment, and (iii) control commitment or that outlined in the NCTE's Initiation Document 1998 **'Competency based and Commitment-Oriented Teacher Education for Quality School Education'** as: (i) commitment to the learner, (ii) commitment to the society, (iii) commitment to the profession, (iv) commitment to achieve excellence and (v) commitment to basic human values. Evidently, need of the hour calls for the regular inspection of education colleges by regulatory bodies to curb any abnormalicy, irregularity or malpractice in play anywhere. Rgulations should be framed for functioning of institutions under effective check and control in order that they may show the satisfactory academic outcome in terms of the performance and achievement. Furthermore, it is suggested to arrange time to time faculty devlopment programes for professional excellence of teacher educators. This will indeed go a long way to promote the professional competency and commitment of teacher educators; thereby the expertise based on their teaching experience being harnessed to make the quality of teacher education much better in institutions where they work. Finally, the researcher concludes hopefully that the regular inspection of education colleges by NAAC or any other statutory or authorised body would be meant for acertaining the proper implementation of target oriented objectives together with action plans as mandated under definite guidelines in the NEP 2020-official document to achieve the specific goals in respect of quality-education for pupil-teachers.

Educational Implications

Today, the teacher educators need to perform well and keep up the professional loyalty and integrity in their professional life as they are the important personalities for preparing the student teachers meant for school education. Teacher effectiveness can well be maintained if they are treated with utmost dignity and side by side they fully perceive their autonomy at their respective workplace. In this connection, the stakeholders of education has the responsibility to see that there is effective governance, proper dicipline, culture of team work, professional growth oppurtunities for the staff, etc. so as to ensure and promote better organisational climate at the institutions. Clearly, all these will not only boost the motivation level and performance of teacher educators but will help the institutions with their knowledge output and overall teaching experiences in the long run. Needless to say, newly employed teaching community generally has the opportunity to gain much from the teachers who has longer tenure in terms of knowledge, skill and abilities.

References

1. Agrawal, S., & Jain, B. K. (2020). Influence of demographic variables on organisational commitment of school teachers: evidence from the Kathmandu valley, Nepal. *Quest Journal of Management and Social Sciences*, *2*(2), 262-274.
2. Badhwar, M. (2014). Professional commitment and accountability of teachers. *International Refereed Journal of Reviews and Research, 2*(2). http://irjrr.com/irjrr /March2014/1.pdf
3. Gill, S. P. Kaur., & Kaur, H. (2017). A study of professional commitment among senior secondary school teachers. *International Journal of Advanced Education and Research, 2(*4), 253-257.
4. Hatim, M., & Shakir, M. (2021). A study of professional comiment among secondary school teachers in relation to self-esteem, gender, and length of service. *Educational quest*: *An International Journal of Education and Applied Social Sciences*, *12*(1), 29-35.
5. Izzati, U. A., Nurchayati, N., Lolita, Y., & Mulyana, O. P. (2022). Professional commitment in terms of gender and tenure of vocational high school teachers. *International Journal of Recent Educational Research, 3*(2), 135-146.
6. Kanter, R. M. (1968). Commitment and social organisation: A study of commitment mechanisms in Utopian communities. *American Sociological Review*, *33*(4), 499-51.
7. NCTE. (1998). *Competency based and commitment oriented teacher education for quality school education* [Initiation Document No.10149]. New Delhi: National Council for Teacher Education.
8. Ministry of Human Resource Developmnt, Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. New Delhi: MHRD.
9. Kini, T. & Podolsky, A. (2016). Does teaching experience increase teacher effectiveness? A review of the research (research brief). Palo Alto, CA: Learning Policy Institute.
10. Kotreshwaraswamy & Surapuramath, A. (2012). A study of professional commitment among B.Ed. teacher educators of Bangalore University. *International Journal of Scientific Research, 1*(3), 26-27.
11. Rani, R. & Rani, S. (2015). Effect of Emotional Intelligence on Professional Commitment of Teacher Educators. *International Journal of Engineering Technology and Management, 2*(3), 66-70.
12. Shanthi, G., & Renugadevi, A. (2021). Professional Commitment of primary school teachers. *International Research journal of Education and Technology*, *3*(2), 1-7.

13. Shishupal (2001). *A study of commitment of teacher-trainees of B.Ed. classes towards teaching profession* (M.Ed. Dissertation). Chaudhary Charan Singh University, Meerut.

14. Singh, R., & Promila (2025). Professional commitment of elementary teacher educators in relation to teaching experience and job satisfaction. *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 12*(2), 119-125.
15. Sood, V., & Anand, A. (2010). Professional commitment among B.Ed teacher educators of Himachal Pradesh. *Journal of All Indian Association for Educational Research, 22*(1), 51-60.
16. Sombilon, E. J. (2024). Gender, age, and work experience as predictors of teachers'organisational commitment. *Asian Research Journal of Arts & Social Sciences.* https://doi.org/10.9734/ARJA/2024/V2212516
17. Mehmood, T., Akhtar, N., & Asadullah (2024). Impact of teaching experience of teachers on the accomplishment of their professional responsibilities. *Al-Misbah Research Journal, 4*(3), 51-60.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 December 2025 Page No. : 222-225
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

India–Sri Lanka Relations in the Indian Ocean Region: Challenges, Constraints, and a Way Forward

Anwith G Kumar
Research Scholar,
Department of Postgraduate Studies and Research in Political Science,
Mangalore University, Mangalagangothri, Konaje.

Abstract
India–Sri Lanka relations are evolving amid ethnic reconciliation efforts, China's growing influence, and the search for sustainable cooperation. This article argues that India's challenge is balancing Tamil Nadu's politics, Sinhala nationalism, and Chinese economic presence while promoting a cooperative neighbourhood policy. It explores three dimensions: India's support for reconciliation within Sri Lanka's constitutional framework; China's strategic footprint; and how developmental diplomacy can turn vulnerabilities into cooperation. India cannot match China financially, but it can offer transparent, people-centred projects and maritime collaboration to build a stable regional order in the Indian Ocean.

Introduction
India–Sri Lanka relations hold a key position in India's Indian Ocean strategy, linking security, connectivity, and political stability (Sahadevan, 2019). Sri Lanka's location near vital sea lanes and its cultural ties with India give the relationship special importance. However, ties have often been strained by the legacy of Sri Lanka's ethnic conflict, India's past involvement, recurring fishermen disputes, and differing political views across the Palk Strait.
China's growing presence in Sri Lanka through projects like Hambantota Port has changed the strategic landscape, challenging India's traditional influence (Roy-Chaudhury, 2023). Meanwhile, India's "Neighbourhood First" and SAGAR policies focus on development and maritime cooperation rather than pressure (Chaturvedy, 2017). This creates a complex situation where Sri Lanka balances between India and China, and India must consider its security, Tamil Nadu's sentiments, and Sri Lanka's autonomy.
This article examines how India can manage these challenges and suggests a practical way forward. It focuses on three connected areas: the Tamil question, China's influence, and developmental diplomacy. The main argument is that India should combine support for devolution, credible development projects, and maritime cooperation to strengthen Sri Lanka's independence and regional stability.

1. Ethnic Reconciliation and Tamil Politics
Sri Lanka's ethnic conflict remains a central issue in bilateral relations (Bandarage, 2008). Tamil Nadu's closeness to Sri Lanka means events affecting Sri Lankan Tamils impact Indian politics, especially during crises. India's past role, including the 1987 accord and peacekeeping forces, created mistrust among both Sinhalese and Tamils (Phadnis & Ganguly, 2001).

Tamil Nadu political parties often urge Delhi to take a stronger stand on Tamil rights, limiting quiet diplomacy with Colombo (Tharoor, 2016). At the same time, visible Indian pressure is seen as interference in Sri Lanka, strengthening Sinhala nationalism and reducing room for compromise.

India's approach should support devolution and reconciliation within Sri Lanka's own systems. Backing the full implementation of the 13th Amendment, aiding local institutions, and expanding cultural and economic links in Tamil areas can build trust quietly (Keethaponcalan, 2019). This steady engagement helps India promote minority rights while working with all Sri Lankan political groups.

Reconciliation is also key to long-term regional security. Lasting peace in Sri Lanka requires including minorities economically and politically, reducing risks of conflict, refugees, and cross-border tensions (Sánchez-Cacicedo, 2014). For India, reconciliation is both a moral concern and a strategic need for a stable neighbourhood.

2. China's Strategic Footprint

China's involvement in Sri Lanka, part of its Belt and Road Initiative, has grown through ports, airports, and urban projects (Rithmire & Li, 2022). These have increased China's economic role and sometimes limited Sri Lanka's policy freedom.

Such projects, often lacking transparency, have raised concerns about debt, governance, and sovereignty in Sri Lanka (Roy-Chaudhury, 2023). China's financial strength gives it an advantage, even though India provided critical support during Sri Lanka's 2022 economic crisis.

India cannot compete with China on funding alone. Instead, it should focus on transparent projects, capacity building, and partnerships that boost Sri Lanka's resilience (Pattanaik, 2012). Working with Japan, the US, and the EU can promote sustainable, rules-based infrastructure in the Indian Ocean.

India should see China's role as a lasting reality in the region. By delivering reliably on projects that benefit local communities, India can build a reputation as a trustworthy partner, offering choices without creating dependency.

3. Developmental Diplomacy and Cooperation

A forward-looking partnership should use developmental diplomacy to address shared challenges. India's grant-based projects in housing, health, education, and infrastructure—especially in conflict-affected areas—have created goodwill (Melegoda, 2018). Expanding into renewable energy, digital connectivity, and skills training can deepen this impact.

The fishermen dispute shows how a problem can become an opportunity for cooperation. Humanitarian handling of detained fishermen, joint fisheries management, and livelihood programs can ease tensions and build cooperation habits in the Palk Bay region (Sultana, 2019). Sri Lanka's needs in marine management and the blue economy also open doors for Indian training and joint research.

Maritime collaboration beyond bilateral issues is equally important. Joint exercises, patrols, and disaster response build trust and show India as a security partner in the Indian Ocean (Chaturvedy, 2017). Engaging through IORA and BIMSTEC helps anchor cooperation in regional frameworks.

India's balanced stance on human rights resolutions—supporting accountability while respecting Sri Lankan processes—shows its effort to blend values with stability concerns (Gokhale, 2019). Together, these steps present India as a reliable neighbour invested in regional stability.

4. New Avenues: Climate, Digital, and Sub-Regional Ties

Climate change and digital transformation offer fresh avenues for collaboration. Joint efforts in early warning systems, coastal management, and green infrastructure can tackle shared environmental risks while offering an alternative to high-debt projects (Rithmire & Li, 2022). India's digital success in fintech and e-governance can assist Sri Lanka's post-crisis recovery, improving services and inclusion (Singh, 2017). Student exchanges and tech partnerships can strengthen people-to-people ties.

At the sub-regional level, boosting connectivity between Tamil Nadu and northern Sri Lanka through ferry links, economic corridors, and cultural exchanges can build local trust and prosperity (Chandran, 2019). Non-state actors like diaspora groups, businesses, and civil society can also play a constructive role in building bridges (Colombage, 2019).

Conclusion

India–Sri Lanka relations are shaped by history, domestic politics, and strategic competition. While geography and culture connect the two, trust must be built through consistent, respectful engagement.

This article has highlighted three key areas: reconciliation, China's role, and developmental diplomacy. On the Tamil issue, India must navigate domestic and nationalist pressures while supporting lasting peace. With China, India should focus on transparency and reliability rather than competing financially. Through development projects and maritime cooperation, India can position itself as a partner of choice.

Moving ahead, India should combine strategic clarity with empathy—acknowledging China's presence but offering better alternatives, quietly advocating devolution, and working within regional frameworks. If Delhi shifts from reactive diplomacy to steady, institution-based engagement, India–Sri Lanka ties can become a foundation for a more stable and autonomous Indian Ocean order.

References

1. Bandarage, A. (2008). The separatist conflict in Sri Lanka. Routledge.
2. Chandran, D. S. (2019). India and Sri Lanka: Two countries, four verticals. Indian Foreign Affairs Journal, 14(1), 37–43.
3. Chaturvedy, R. R. (2017). The Indian Ocean policy of the Modi government. In S. Singh (Ed.), Modi and the world (pp. 217–231). World Scientific.
4. Colombage, J. (2019). India-Sri Lanka relations: A view from Sri Lanka. Indian Foreign Affairs Journal, 14(1), 52–57.
5. Gokhale, N. A. (2019). India and Sri Lanka need to do 'much more'. Indian Foreign Affairs Journal, 14(1), 24–29.
6. Keethaponcalan, S. I. (2019). Post-war dilemmas of Sri Lanka. Routledge.
7. Melegoda, N. (2018). India Sri Lanka relations since 2009. In Josukutty & Prabhash (Eds.), India's bilateral relations (pp. 1–27). New Century.
8. Pattanaik, S. S. (2012). Sri Lanka: Challenges and opportunities for India. In Dahiya & Behuria (Eds.), India's neighbourhood (pp. 191–216). IDSA.
9. Phadnis, U., & Ganguly, R. (2001). Ethnicity and nation-building in South Asia. SAGE.
10. Rithmire, M., & Li, Y. (2022). Chinese infrastructure investments in Sri Lanka. Harvard Business School.
11. Roy-Chaudhury, S. (2023). The China factor. Routledge.
12. Sahadevan, P. (2019). India's changing relations with Sri Lanka. Indian Foreign Affairs Journal, 14(1), 9–16.
13. Sánchez-Cacicedo, A. (2014). Building states, building peace. Palgrave Macmillan.

14. Singh, S. (Ed.). (2017). Modi and the world. World Scientific.
15. Sultana, G. (2019). India-Sri Lanka relations: New issues, novel perspective. Indian Foreign Affairs Journal, 14(1), 44–51.
16. Tharoor, S. (2016). The domestic elements. In Bhatnagar & Passi (Eds.), Neighbourhood First (pp. 210–215). ORF.
anwithgkumar@gmail.com

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course